DHRAM DOOT 1953 G.K.V.

धर्मदूत
महाबोधि सभा सारनाथ
का
मुखपत्र
जुलाई अगस्त
१९५३

विषय-सूची

धर्मदूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादक:—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १८ | सारनाथ, जुलाई-अगस्त | बु० सं० २४९७ / ई० सं० १९५३ | अङ्क ३-४

बुद्ध-वचनामृत

'जो धर्म को देखता है वह मुझे देखता है'

एक समय भगवान् राजगृह में वेलुवन कलन्दकनिवाप में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् वक्कलि एक कुम्हार के घर में रोगी, दुःखी और बड़े बीमार पड़े थे।...भगवान् पात्र-चीवर ले जहाँ आयुष्मान् वक्कलि थे, वहाँ गए और बोले, वक्कलि! कहो तबीयत कैसी है, बीमारी घट तो रही है न?

"भन्ते! मेरी तबीयत अच्छी नहीं है, बड़ी पीड़ा हो रही है, बीमारी बढ़ती ही मालूम होती है।"

"वक्कलि! तुम्हें कोई मलाल या पछतावा तो नहीं रह गया है?"

"भन्ते मुझे बहुत मलाल और पछतावा हो रहा है।"

"क्या तुम्हें शील नहीं पालन करने का पश्चात्ताप है?"

"नहीं भन्ते! मुझे यह पश्चात्ताप नहीं है।"

"वक्कलि! जब तुम्हें शील नहीं पालन करने का पश्चात्ताप नहीं है तो तुम्हें किस बात का मलाल और पछतावा हो रहा है?"

"भन्ते! बहुत दिनों से भगवान् के दर्शन करने को आने की इच्छा थी, किन्तु शरीर में इतना बल ही नहीं था कि आ सकता।"

"वक्कलि! अरे, इस गन्दगी से भरे शरीर के दर्शन से क्या होगा? वक्कलि! जो धर्म को देखता है वह मुझे देखता है; जो मुझे देखता है वह धर्म को देखता है।"

—संयुत्त निकाय २१. २. ४. ५

बुद्ध-पूजा

भिक्षु धर्मरक्षित

बौद्धधर्म बाह्य कर्म-काण्ड एवं पूजा-पाठ में विश्वास न रखते हुए आन्तरिक शुद्धि पर जोर देता है। पूजा-पाठ से राग, द्वेष, मोह को नष्ट नहीं किया जा सकता, यह आध्यात्मिक पारिशुद्धि से ही सम्भव है। अज्ञ-जन अपनी स्वार्थ-सिद्धि अथवा किसी प्रकार से उत्पन्न विघ्न-बाधाओं से मुक्ति पाने के लिए वन, पर्वत, उद्यान, वृक्ष, चैत्य आदि को देवता मानकर उनकी शरण जाते हैं और मंगल की कामना करते हैं, किन्तु इससे उनका हित नहीं होता। शुद्धि-अशुद्धि, पुण्य-पाप, मुक्ति-बन्धन आदि सब आत्म-उद्भूत हैं, इन्हें किसी अन्य व्यक्ति-विशेष, देवी-देवता, चैत्य, वन, पर्वत या मूर्ति की आराधनावश नहीं प्राप्त किया जा सकता। व्यक्ति अपना निर्माण स्वयं करता है, वह आत्म-निर्माता एवं आत्मजनक है। वह कलुषित प्रवृत्तियों में संलग्न होकर आत्मविध्वंस भी कर डालता है तथा कुशल-चेतना द्वारा उपार्जित शक्ति से अमृत-तत्त्व को प्राप्त कर लेता है।

बुद्धपूजा का प्रारम्भ

बुद्धकाल में चैत्य आदि की पूजा प्रचलित थी, किन्तु तथागत ने अपने शिष्यों का ध्यान उधर न जाने दिया था, उन्होंने स्वयं अपनी पूजा का भी विरोध किया था। भगवान् के महापरिनिर्वाण के कुछ ही घण्टे पूर्व आयुष्मान् आनन्द ने जब उनसे पूछा था "भन्ते, तथागत के शरीर को कैसा करेंगे?" तब तथागत ने भिक्षुओं के लिए बुद्धपूजा का विरोध करते हुए कहा था—"आनन्द! तथागत की शरीर-पूजा से तुम निश्चिन्त रहो। तुम सत् की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना, सत् की सिद्धि के लिए उद्योग करना। सत् की सिद्धि के लिए अप्रमादी, उद्योगी, आत्म-संयमी होकर विहरना। तथागत के प्रति श्रद्धा रखनेवाले गृहस्थ हैं, वे तथागत की शरीर-पूजा करेंगे।" आयुष्मान् बक्कलि को भी समझाते हुए तथागत ने कहा था—"बक्कलि! इस अपवित्र शरीर को देखने से क्या लाभ? बक्कलि! जो धर्म को देखता है वह मुझे देखता है, और जो मुझे देखता है, वह धर्म को देखता है।"

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि भगवान् ने आत्मपूजन का सर्वथा विरोध किया था। किन्तु, वे यह भी जानते थे कि गृहस्थों को ऐसा करने से नहीं रोका जा सकता है, उन्हें मना करने पर भी वे तथागत की पूजा करेंगे ही।

तथागत के जीवन-काल में ही नित्य प्रातः सायं धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए आते समय श्रद्धालु भक्त-गण पुष्प, माला, गन्ध आदि हाथों में लिए हुए तथागत के पास आते थे और उनके श्रीचरणों पर रखकर अभिवादन एवं प्रदक्षिणा कर एक ओर बैठ जाते थे, प्रति दिन एकत्र हुए पुष्पों की एक बड़ी राशि हो जाती थी, जिसे तथागत की कुटी के पास ही थोड़ी दूर पर फेंक दिया जाता था, जिससे वह कुटी सदा सुवासित रहती थी, इसी हेतु तथागत की कुटी 'गन्ध कुटी' कहलाती थी। और गन्धकुटी भी केवल श्रावस्ती में ही नहीं, प्रत्युत राजगृह, ऋषिपतन मृगदाय आदि में जहाँ-जहाँ तथागत ने वास किया था, वहाँ-वहाँ थी। बुद्धकाल में तथागत की पूजा बस, यहीं तक परिसीमित थी, वह भी पूजा के रूप में नहीं। अपनी परिशुद्ध श्रद्धा को प्रकट करने के साधन के रूप में; भक्ति, गौरव भक्ति, गौरव एवं कृतज्ञता प्रकट करने के आकार में; तथा अपने शास्ता (= गुरु) को श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने के भव्य, निर्मल और शुद्ध भावना को प्रकट करने की मुद्रा में।

स्तूपों के रूप में

तथागत के जीवन-काल में श्रद्धा, सम्मान एवं भक्ति प्रदर्शित करने के लिए अर्हत् भिक्षुओं के परिनिर्वाण के उपरान्त उनकी अस्थियों पर स्तूप बनने लगे थे। सारिपुत्र, मौद्गल्यायन, बाहिय-दारुचीरिय आदि स्थविरों के स्तूपों को तथागत ने स्वयं निर्मित कराया था तथा उनके

गुणों की प्रशंसा करते हुए अन्य भिक्षुओं द्वारा सम्मान करवाया था। तथागत ने अपने परिनिर्वाण से पूर्व ही बतलाया भी था कि तथागत, प्रत्येक बुद्ध, तथागत का श्रावक और चक्रवर्ती राजा—इन चार प्रकार के व्यक्तियों की अस्थियों को निधान करके स्तूप बनाना चाहिए, क्योंकि इनके गुणों का स्मरण कर जो लोग अपना मन परिशुद्ध करेंगे, या पुष्प आदि ले श्रद्धा प्रकट करेंगे, वह उनके लिए कल्याणकारी होगा। अतः तथागत के परिनिर्वाण के पश्चात् उनकी पवित्र अस्थियों पर अनेक स्तूप बने, जो अशोक के समय में महावंश के आधार पर चौरासी हजार हो गये थे।

बुद्धमूर्ति का निर्माण

भगवान् बुद्ध की मूर्ति का उल्लेख प्राचीन पालिग्रंथों में उपलब्ध नहीं है। केवल यमक प्रातिहार्य के पश्चात् तावतिंस-भवन में वर्षावास करते समय 'निर्मित बुद्ध' का वर्णन मिलता है। तथागत के परिनिर्वाण के समय से कनिष्क काल से पूर्व तक अस्ति, स्तूप, त्रिरत्न, धर्मचक्र आदि के रूप में ही तथागत के गुणों को स्मरण करते हुए अपनी श्रद्धा और भक्ति प्रगट की जाती थी। संस्कृत-महायान-ग्रन्थों में तथागत के चित्र का भी उल्लेख है। उनके आधार पर कहा जाता है कि परम्परा से तथागत के चित्र बनते चले आ रहे थे। किन्तु कनिष्क के समय में तथागत की बत्तीस महापुरुष लक्षणों एवं अस्सी अनुव्यञ्जनों से युक्त, प्रभा-मण्डल सहित बुद्धमूर्ति का भी निर्माण प्रारम्भ हुआ, जिसका धीरे-धीरे प्रचार होने लगा, यद्यपि प्रारम्भ में श्रद्धालु भक्तगण बुद्ध प्रतिमा को निर्मित करने में पाप समझते थे, सर्वाङ्ग परिपूर्ण बुद्ध को पत्थर, काष्ठ, या मिट्टी की प्रतिमा के रूप में प्रस्तुत करने का उन्हें साहस न होता था। किन्तु यह सब भावनायें धीरे-धीरे विलुप्त-प्राय हो गईं और मूर्ति-निर्माण की भावना यथार्थतः मूर्ति-पूजा न होते हुए भी मूर्ति-पूजा के रूप में परिणत हो गई। भिक्षु-गृहस्थ सब बुद्ध-पूजा में संलग्न हो गए। सम्प्रति सभी देशों के बौद्ध किसी-न-किसी रूप में मूर्ति-पूजा करते हैं, यद्यपि उनकी मूर्ति-पूजा की भावना अन्य धर्मावलम्बियों की पूजा-भावना से सर्वथा भिन्न है, क्योंकि बौद्ध धर्म कर्मकाण्ड एवं पूजा-पाठ की प्राक्-पद्धति में विश्वास नहीं रखता। इसका अनीश्वर तथा अनात्मवाद भी एक प्रधान कारण है।

प्रचलित बुद्धपूजा की भावना

धीरे-धीरे बौद्ध-धर्म में पूजा-भावना प्रबल होने लगी, और उसे शास्त्र-अनुमोदित करने के लिए मूर्ति-निर्माण सम्बन्धी ग्रन्थों के साथ पूजा-प्रयोजन को स्पष्ट करने के लिए प्रमाणों की भी सृष्टि हो गई। वर्तमान प्रचलित बौद्ध पूजा-भावना मिलिन्द पञ्ह नामक ग्रन्थ में आए हुए राजा मिलिन्द और आयुष्मान् नागसेन के प्रश्नोत्तर से स्पष्ट हो जाती है। राजा मिलिन्द ने भदन्त नागसेन से बुद्ध-पूजा के सम्बन्ध में प्रश्न करते हुए पूछा—"भन्ते! दूसरे मत-वाले कहते हैं कि यदि बुद्ध अपनी पूजा स्वीकार करते हैं तो उन्होंने निर्वाण नहीं पाया। अभी भी अवश्य वे इस संसार में रहते होंगे और उनकी स्थिति इस संसार में कहीं-न-कहीं होगी ही। यदि ऐसी बात है तो वे एक केवल साधारण जीव हुए और उनके प्रति की गई पूजा व्यर्थ है। यदि वे परिनिर्वाण पा चुके हैं, संसार से बिल्कुल छूट गए हैं और सारी स्थितियों से मुक्त हो गए हैं, तब उनकी पूजा करना व्यर्थ है क्योंकि जब वे हैं ही नहीं, तो पूजा किसकी? इस प्रकार दोनों दशा में चाहे बुद्ध परि-निर्वाण पा चुके हैं या नहीं, उनकी पूजा करने का कोई अर्थ ही नहीं।" स्थविर ने उत्तर देते हुए कहाः—

"महाराज! भगवान् परिनिर्वाण पा चुके हैं। भग-वान् किसी पूजा को स्वीकार या अस्वीकार नहीं करते। बोधिवृक्ष के नीचे ही भगवान् बुद्ध इस प्रश्न के परे हो गये थे। अब संसार से बिल्कुल छूट निर्वाण पा लेने पर तो कहना ही क्या है! महाराज! धर्मसेनापति सारिपुत्र ने भी कहा है—"वे अतुल बुद्ध देवता और मनुष्य दोनों से पूजा पाकर भी न उसे स्वीकार करते हैं और न अस्वी-कार करते हैं। बुद्धों की ऐसी ही बात है।"

"भन्ते! यदि पुत्र पिता की या पिता पुत्र की बड़ाई करे तो यह कोई दलील नहीं कही जा सकती। यह तो उनके अपने अपने मन की केवल उमंग है। हाँ, अब आप झूठे मतों के भ्रम को दूर करने तथा अपने सच्चे धर्म को प्रकाश में लाने के लिए इसे ठीक-ठीक समझावें।"

"महाराज! भगवान् तो मुक्त हो चुके हैं। वे अब

किसी की पूजा को कैसे स्वीकार या अस्वीकार करेंगे! देवता और मनुष्य भगवान् के शरीर-भस्म रूपी रत्न की पूजा करते हुए तथा उनके बताए ज्ञान-रत्न के अनुकूल आचरण करते हुए तीनों समापत्तियाँ प्राप्त करते हैं।''

बुद्धपूजा का अचूक फल

''महाराज! कोई बड़ी आग जलाकर पीछे बुझा दिये जाने पर क्या वह सूखी घास, लकड़ी या और कोई ईंधन स्वीकार करेगी?''

''नहीं भन्ते! जलती रहने पर भी क्या वह अचेतन आग घास या लकड़ी थोड़े ही स्वीकार करती है! बुझकर ठण्ढी हो जाने पर तो कहना ही क्या है!''

''महाराज! उस बड़ी आग के बुझ जाने पर क्या संसार आग से खाली हो जाता है?''

''नहीं भन्ते! आग तो सूखी लकड़ियों में रहती है। कोई आदमी जो आग उत्पन्न करना चाहता है, अरणि को बल से मथ कर उसे उत्पन्न कर सकता है। उस आग से अपना कोई भी काम चला सकता है।''

''महाराज! तो दूसरे मतवालों की यह दलील व्यर्थ है कि स्वीकार न करनेवालों के प्रति किए गए व्यवहारों का कोई अर्थ नहीं निकलता।''

''महाराज! जैसे वह बड़ी आग जलाई गई, वैसे ही भगवान् अपने बुद्ध-तेज से दस हजार लोकों में जलते रहे। जैसे वह आग बुझ कर ठण्ढी हो गई, वैसे ही भगवान् निर्वाण प्राप्त कर संसार से बिल्कुल छूट गए। जैसे आग बुझकर ठण्ढी हो जाने पर कोई घास या लकड़ी नहीं ग्रहण करती, वैसे ही संसार के उपकार करनेवाले भगवान् भी स्वीकार और अस्वीकार करने के प्रश्न से मुक्त हो गए हैं। जैसे आग बुझ जाने के पश्चात् कोई व्यक्ति जो आग उत्पन्न करना चाहता है, अरणि को अपने बल से मथ कर उसे उत्पन्न कर सकता है। वैसे ही देवता और मनुष्य उन भगवान् के शरीर-भस्म रूपी रत्न की पूजा करते हुए तथा उनके बताए हुए ज्ञान-रत्न के अनुकूल आचरण करते हुए तीनों समापत्तियाँ प्राप्त कर सकते हैं। महाराज! इस कारण से भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण पा लेने पर भी उनके प्रति की गई पूजा अचूक और सफल होती है।

महाराज! भगवान् ने भविष्य में होनेवाली इस बात को पहले ही देख लिया था। उन्होंने कहा और समझाया भी था—''आनन्द! तुम लोगों में से किसी को ऐसा विचार उत्पन्न हो सकता है 'शास्ता चले गए। अब हम लोगों को मार्ग बतानेवाला कोई नहीं है।' किन्तु ऐसी बात नहीं है। आनन्द! इस प्रकार पश्चात्ताप करने का कोई कारण नहीं। मेरे उपदेश दिये गये जो धर्म और विनय हैं, वे ही मेरे पीछे तुम्हें मार्ग दिखायेंगे।''

इसलिए कि भगवान् परिनिर्वाण पा लिए और अब नहीं रहे, उनके प्रति की गई पूजायें व्यर्थ नहीं हो सकतीं। विपक्ष वालों का ऐसा कहना झूठा, अनुचित, अयथार्थ और विरुद्ध है। इससे सिद्ध होता है कि भगवान् के परिनिर्वाण पाकर संसार से बिल्कुल छूट जाने पर भी और उनके न स्वीकार करने पर भी उनके प्रति किए गये व्यवहार अचूक और अवश्य ही फल देनेवाले होते हैं।''

विभिन्न देशों की पूजा-पद्धतियाँ

यथोक्त विश्वास के साथ संसार के प्रायः सभी बौद्ध बुद्ध-पूजा करते हैं और उसे चित्त को परिशुद्ध करने का साधन समझते हैं।

तिब्बती बौद्ध बुद्ध-पूजा में विशेष श्रद्धा रखते हैं। वे मन्दिरों में पूजा करने के साथ ही अपने पास भी बुद्ध-मूर्ति रखते हैं, जिसे एक सुन्दर मंजूषा में कमर पर लटकाए रहते हैं और जहाँ कहीं भी जाते हैं साथ लिए जाते हैं। ''मानी'' भी पूजा का ही एक अंग है, जिसके द्वारा ''ओम् मणि पद्मे हुँ'' का जप किया करते हैं। तिब्बती बौद्धों में अपनी विशेष पूजा पद्धति है किन्तु वे बुद्धमूर्ति के पास घी के प्रदीप ही अधिक जलाते हैं। तिब्बत के बड़े-बड़े मन्दिरों में रातों-दिन ऐसे प्रदीप जला करते हैं।

नेपाली बौद्ध अक्षत, पैसा, जल आदि से पूजा करते हैं। लंका के बौद्ध प्रदीप, पुष्प, धूप और बौद्ध झंडियों से पूजा करते हैं। बर्मी लोग बुद्ध मूर्ति पर सोना लगाने में अधिक पुण्य मानते हैं। चीनी लोग रात में काफी देर तक बुद्ध-पूजा करते हैं। प्रातः भी भोर में ही पूजा में जुट जाते हैं। वे एक विशेष घण्टी के साथ सूत्रों का पाठ विशेष रूप से करते हैं। जापानी बौद्ध डमरू जैसे वाद्य-विशेष द्वारा पूजा करते हैं। इसी प्रकार कोरिया, मंगो-

लिया, खम्, लद्दाख, लाहुल, चटगाँव आदि देशों के बौद्धों की अपनी-अपनी पूजा पद्धतियाँ हैं। किन्तु सभी बौद्ध पुष्प, धूप, दीप से पूजा करने में विशेष पुण्य मानते हैं और चाहे जिस किसी भाषा में हो, इसी भाव से पूजा करते हैं—

वन्दामि चेतियं सब्बं, सब्ब-ठानेसु पतिट्ठितं।
सारीरिक-धातु महाबोधिं, बुद्ध-रूपं सकलं सदा॥

मैं सब स्थानों में प्रतिष्ठित सारे चैत्य, शारीरिक धातु (= अस्थि), महाबोधि और सम्पूर्ण बुद्ध-मूर्ति को सदा नमस्कार करता हूँ।

कल्याण-मार्ग

श्री हरिशंकर श्रीवास्तव "शलभ"

तुम अनन्त आकाश बनो
जिसमें आयें तारे-गण,
प्राण प्राण पर डाल सको तुम
ऐक्य साम्य का बन्धन,

तभी सफलता तुम पाओगे
जीतो अपने मन को,
आसानी से जीत सकोगे
दुनिया को जन-जन को,

कभी कष्ट देने से तन को
मुक्ति नहीं मिलती है,
जीव-जन्तु को बलि देने से
भक्ति नहीं मिलती है,

केवल भरा दुःख से है यह
जग का कोना-कोना,
अगर चाहते हो कि तुम्हारा
नश्वर तन हो सोना,

सभी वासनाओं का तुमसे
जब तक अन्त न होगा,
तब तक कभी तुम्हारे मनमें
मधुर बसन्त न होगा,

होता यह सब जनपर निर्भर
फल पायेगा वैसा,
विश्व-क्षेत्र का कर्मबीज है
वह बोयेगा जैसा,

वैसी श्रेणी में होगा जो
जैसा कर्म करेगा,
सत्कर्मी औ' सुविचारी को
ही निर्वाण वरेगा,

यदि रोपोगे तरु करील का
आम न फल सकता है,
सुविचारी जग के पावक में
कभी न जल सकता है,

धीर तपस्वी काँटों के
क्रोड़ों में पल सकता है,
मृदुभाषी पर जग का टोना
कभी न चल सकता है,

जो कुछ स्वेच्छा से करता नर
वह न कभी भी डर से,
जो कुछ शान्ति-प्रेम से होता
वह न कभी संगर से,

महानाश की इस ज्वाला में
मत ढूँढ़ो अपना शव,
तुम्हें जानना है मनुष्य यह
कितना क्षणभंगुर भव,

सम्यक स्मृति, सत्कर्म शुचिर
सम्यक समाधि यह प्रतिक्षण
दृढ़ संकल्प, सत्य मृदु भाषण
सद्विचार सद् जीवन,

यह सम्यक् व्यायाम कह रहा
तुम मुझको अपनाओ,
पुनः मुक्ति पाने का जग से
तुम भागी हो जाओ,
जाओ भिक्षु! सप्रेम धरा पर
करो निरन्तर विचरण,

दो न रहो तुम रहो अकेले
अपने पथ पर प्रतिक्षण
दो मत जाना एक साथ तुम
रहना सदा अकेला,
प्रतिपल जिससे बने तुम्हारे
लिए चिन्तना वेला।*

बुद्धगया मन्दिर और उसका हस्तान्तरण

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद

यह हमारे लिए बड़ी प्रसन्नता का विषय है कि आज की पुण्य तिथि पर हम एक ऐसा काम करने जा रहे हैं जो प्रायः ६० वर्षों के प्रयत्न का एक सुन्दर फल है। यह जगत विख्यात बात है कि इस पावन स्थान पर ही भगवान् बुद्ध हुए और उस दिन से आज तक यह स्थान केवल बौद्धों के लिए ही नहीं बल्कि दूसरों के लिए भी एक पवित्र तीर्थ-स्थान बना रहा है। भगवान् बुद्ध के जीवन से सम्बद्ध चार मुख्य स्थान हुए हैं, लुम्बिनी-जहाँ उनका अवतरण हुआ,बोधगया—जहाँ उन्होंने अपनी तपस्या के फलस्वरूप ज्ञान प्राप्त किया, इसिपतन—जहाँ उन्होंने धर्मचक्र प्रवर्तित किया और कुशीनारा—जहाँ उन्होंने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया। इन चारों में बोधगया सब से पवित्र माना गया है और यही समझ कर आज से २२ सौ वर्ष पूर्व अशोक राजा ने इस स्थान पर इस मन्दिर की स्थापना की थी। कई सौ वर्षों के बाद मन्दिर की पुनर्स्थापना आज से कोई १७ सौ वर्ष पहले हुई और विद्वानों का विचार है कि जो मन्दिर आज से १७०० वर्ष पहले बना था यह वही मन्दिर है जिसका हम अपनी आँखों से दर्शन कर सकते हैं क्योंकि उसका जो विवरण हुए-न-संग ने आज से प्रायः १२०० वर्ष पहले किया था वह इस मन्दिर से अक्षरशः मिल जाता है बौद्ध धर्मावलम्बी देश विदेश से उन दिनों से ही दर्शनार्थ और पूजनार्थ यहाँ आते रहे हैं और जब तक मुसलमानों का राज्य यहाँ नहीं हुआ, बौद्ध यहाँ रहते रहे और मन्दिर की देखभाल और प्रबन्ध करते रहे। उन दिनों की गड़बड़ी में वे यहाँ से छोड़ कर चले गये और उसके बाद का तीन-चार सौ वर्षों का इतिहास केवल इतना ही बतलाता है कि जब-तब विदेशी यात्री आये और मन्दिर जंगल-झाड़ के भीतर छिपा रहा। आज से प्रायः चार सौ वर्ष पहले एक संन्यासी ने इस स्थान को अपने साधन और तप के लिए शान्त और सुयोग्य समझ कर यहाँ रहना आरम्भ किया और बोधगया मठ की स्थापना की। इस मठ के पीछे आनेवाले मठाधीशों ने आस-पास में बहुत सम्पत्ति भी कर ली और यह मन्दिर भी उनके कब्जे में हो गया। दिल्ली के मोहम्मदशाह बादशाह ने महन्थ को दो गाँव दिये और दूसरी सम्पत्ति जो मठ के हाथ में समय-समय पर आती गयी वह एक बड़ी सम्पत्ति हो गई, जिससे महन्थ इस मठ में आनेवाले साधु-सन्तों की सेवा करते रहे और दूसरे प्रकार से जैसे और मठ धार्मिक कृतियाँ किया करते हैं, करते आये। पर यद्यपि यह मन्दिर उनके कब्जे में था उन्होंने कभी भी बौद्ध यात्रियों को यहाँ आने-जाने में तथा पूजा पाठ में रुकावट नहीं डाली, बल्कि सहायता देते गये। सिंहल और बर्मा के राजाओं ने इस मन्दिर की मरम्मत में समय-समय पर खर्च किया और उसमें भी महन्थ की सहायता और अनुमति रही। यह विदित है कि हिन्दुओं ने भगवान् बुद्ध को विष्णु का अवतार मान लिया है और यद्यपि उनकी पूजा और अवतारों की तरह नहीं होती है, यह एक प्रचलित लोक धारणा है कि जगन्नाथपुरी में बुद्धावतार की मूर्ति है। जो हो, इसमें कोई शक नहीं है कि जितना महत्व,

* अप्रकाशित 'आनन्द' नामक काव्य से।

प्रतिष्ठा और गौरव बौद्ध धर्मावलम्बी ऐसे स्थान को हमेशा से देते आये हैं हिन्दुओं ने वैसा नहीं दिया। पर साथ ही यह भी सत्य है कि कभी हिन्दुओं की ओर से बौद्धों की पूजा-उपासना में छेड़ छाड़ नहीं किया गया।

अनागारिक धर्मपाल जब यहाँ दर्शनार्थ सिंहल से आये तो उनकी यह भावना हुई कि मन्दिर का प्रबन्ध जैसा चाहिये और जैसा बौद्ध धर्मावलम्बी चाहते हैं और कर सकते हैं वैसा नहीं है और महन्थ कर भी नहीं सकते। इसलिये उन्होंने महाबोधि सोसाइटी की स्थापना की और यह बात उठायी कि इस मन्दिर का प्रबन्ध बौद्धों के हाथ में आ जाये। उन्होंने बौद्धों और हिन्दुओं के बीच जनमत जागृत किया। इसमें उनके एक बड़े सहायक सर एडविन आर्नोल्ड, लाइट आफ एशिया के रचयिता हुए और उन्होंने इङ्गलैण्ड और भारत में केवल सरकारों से ही नहीं, जनता से भी आग्रह किया कि इस पुण्य स्थान का सुन्दर प्रबन्ध होना चाहिये। अनागारिक धर्मपाल और तात्कालिक महन्थ के बीच में फौजदारी और दीवानी मुकदमे भी चले जिसमें वह असफल रहे पर उन्होंने प्रयत्न छोड़ा नहीं। जब गया में १९२२ के दिसम्बर महीने में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, बर्मा से प्रायः १०० फुङ्गी (=भिक्षु) ऊ उत्तमा के नेतृत्व में यहाँ आये और उन्होंने कांग्रेस के सामने बोधगया के मन्दिर की माँग रखी। कमेटी ने इस विषय को जाँच के लिये मुझे नियुक्त किया। पर यह काम और कारणों से उस समय नहीं किया जा सका। फिर कोकानाडा कांग्रेस में भी बौद्धों का एक मंडल आया और जब बेलगाँव में महात्मा गांधी कांग्रेस के सभापति हुए तो फिर एक मण्डल सिंहलद्वीप से और दूसरे बौद्ध देशों से आया। महात्मा जी की प्रेरणा से जो काम गया-कांग्रेस के बाद ही सोचा गया था, हाथ में लिया गया और सब बातों की जाँच और अनुसन्धान के बाद यह निश्चय हुआ कि बौद्धों की माँग न्याय्य है, पर चूँकि मन्दिर के हाते के अन्दर हिन्दू भी कुछ धार्मिक कृतियाँ किया करते हैं और भगवान् बुद्ध को हिन्दू भी विष्णु का अवतार मानते हैं इसलिये उचित होगा कि मन्दिर का प्रबन्ध एक समिति के हाथ में दिया जाये जिसमें सरकारी कर्मचारी के अलावा हिन्दू और बौद्ध दोनों शरीक हों। इस बात का प्रयत्न किया गया कि तात्कालिक महन्थ महाशय इस पर राजी हो जायँ और उनकी रजामन्दी से ऐसी समिति बनायी जाये, पर यह प्रयत्न असफल रहा और कांग्रेस जैसी किसी भी गैर-सरकारी संस्था के लिए सम्भव नहीं था कि वह सरकार की ओर से कानून बनवा कर इस काम को पूरा करा दे। इसलिए यह बात फिर पड़ी रह गयी। उस समय की हिन्दू महासभा ने भी इस प्रकार की कमेटी के हाथ में प्रबन्ध देने के प्रस्ताव का समर्थन किया। तोभी अधिकार हाथ में नहीं होने के कारण उस समय कुछ नहीं किया गया और बात पड़ी रह गई। जब १९३७ में पहले-पहल जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में कुछ अधिकार आया तो फिर बौद्ध-मण्डल ने याद दिलायी और आग्रह किया कि कानून बनाकर मन्दिर का प्रबन्ध कमेटी के प्रस्तावानुसार किया जाये। पर इस समय मन्त्रिमण्डल थोड़े ही समय तक टिका और कानून बनाने के पहले ही अन्य कारणों से उसने इस्तीफा दे दिया। १९३९ से १९४६ तक बात फिर टँगी रह गयी और फिर जब १९४७ में भारतीय लोगों के हाथ में पूर्ण अधिकार आया तो कानून बनाने का काम आरम्भ किया गया और १९४९ में कानून पास हो गया। फिर भी अदालती कारवाई की वजह से उस कानून के अनुसार प्रबन्ध कमेटी के हाथ में नहीं आ सका। आज बड़े हर्ष का विषय है कि सब अड़चनें दूर हो गईं और महन्थ हरिहर गिरि जो बोधगया में आज महन्थ हैं, मन्दिर का प्रबन्ध कमेटी को सुपुर्द करने जा रहे हैं। मैं इसको एक बड़ा धार्मिक कृत्य मानता हूँ और इससे बड़ी-बड़ी आशाएँ रखता हूँ। यह कार्य अनागारिक धर्मपाल के ६०-६२ वर्षों के प्रयत्न के फलस्वरूप सम्पन्न होने जा रहा है। मैं इसके लिए बौद्धों को बधाई देना चाहता हूँ, साथ ही हिन्दुओं, महन्थ हरिहर गिरि को भी बधाई देना चाहता हूँ।

हिन्दू धर्म और बौद्धधर्म में किसी प्रकार के अनबन का कारण नहीं है और इतिहास भी इसका साक्षी है कि दोनों इस देश में जब तक प्रचलित रहे मिल-जुल कर ही असंख्य लोगों को सांत्वना और सद्गति देते रहे।

आज भारतवर्ष से बौद्ध-धर्म प्रायः लुप्तप्राय है और कई शताब्दियों से ऐसा ही रहा है। पर इसका कारण यह नहीं है कि हिन्दुओं ने उनके सिद्धान्तों और विचारों को अपना लिया और दोनों घुलमिल कर एक हो गये। इसलिए आज इस पुण्य स्थान की सेवा और प्रबन्ध दोनों मिलजुल कर करने के लिए तत्पर हुए हैं और उसका फल सुन्दर ही होनेवाला है। इधर कुछ दिनों से बौद्ध-धर्म और सांस्कृतिक विचारों की ओर भारतीय लोगों की अभिरुचि होती जा रही है और बौद्ध ग्रन्थों के अध्ययन-अध्यापन के लिए सुविधायें भी बढ़ती जा रही है। भारतीय प्रजातन्त्र ने बौद्ध-धर्माव-लम्बी अशोकराज के सिंह और धार्मिक चक्र को भी राज्य का निशान मान लिया है और यहाँ बिहार राज्य में जिसका नाम ही बौद्ध विहारों के नाम पर पड़ा है, नालन्दा में जहाँ बौद्ध विद्यापीठ प्रायः एक हजार वर्षों तक हजारों-हजार लोगों से बौद्ध ग्रन्थों के केवल अध्ययन में ही नहीं बल्कि रचना में भी भाग लिवाता रहा और जो बौद्ध-धर्म के प्रचार का एक बड़ा केन्द्र विदेशों के लिए बना रहा, पालि भाषा के जिनमें मुख्य बौद्धग्रन्थ लिखे गए हैं और इतिहास के अध्ययन के लिए एक अनुसंधान केन्द्र अभी हाल में ही कायम किया गया है। मैं आशा करता हूँ कि बोधगया दिन-प्रति-दिन तीर्थ स्थान के रूप में उन्नत होता जायगा जहाँ विदेशों के धार्मिक स्त्री-पुरुष प्रेरणा के लिए श्रद्धापूर्वक आते रहेंगे और जहाँ से धार्मिक रश्मियाँ देश विदेशों में फैलेंगी और नालन्दा फिर भी उस आदर्श और अध्ययन का जैसा वह पहले था, एक बड़ा केन्द्र हो जायगा। मैं आशा करता हूँ कि इन दोनों स्थानों की उन्नति के लिये हिन्दू और बौद्ध और सरकारें सभी उत्सुक और तत्पर रहेंगे और सब प्रकार की सहायता देकर अपने को धन्य मानेंगे। *

सम्बोधि की पावन भूमि में

श्री जितेन्द्र सिंह

'भारत में बौद्ध संस्कृति का नया अभ्युदय हो रहा है—यह एशिया के उज्ज्वल भविष्य का प्रतीक है'।—तथागत की पावन सम्बोधि भूमि में वैशाख-पूर्णिमा के शुभ अवसर पर बर्मा के राजदूत यू क्यिन के ये उद्गार भारत ही नहीं समस्त एशिया के लिये विशेष महत्व रखते हैं। विराट महाबोधि मन्दिर के शिखर पर, जिसके पुनः निर्माण एवं विकास में ब्रह्मदेश के नरेशों एवं कलाकारों का बहुत बड़ा हाथ रहा है, प्रातःकाल की किरणों का मुकुट जगमगा रहा था, जब बर्मा के राजदूत ने ये उद्गार व्यक्त किये। उस समय बिहार सरकार के अतिथि-भवन में; जहाँ श्री क्यिन ठहरे थे, भिक्षु जगदीश काश्यप (नालन्दा), भिक्षु संघरत्न (सारनाथ), भिक्षु श्रद्धा तिस्स (सिंहल) एवं भिक्षु सोमानन्द थेर (बोधगया) भी उप-स्थित थे, भिक्षु जगदीश काश्यप तथा भिक्षु संघरत्न जिन्होंने अग्र श्रावक 'सारिपुत्त' एवं 'मोग्गलान' के पवित्र फूलों के साथ भारत के उत्तर एवं दक्षिण-पूर्व के अनेक देशों की यात्रा की है, एशिया में बौद्ध संस्कृति के पुनर्जा-गरण की शक्ति से परिचित थे।

बर्मा के राजदूत ने गर्व के साथ कहा—'मैं लुम्बिनी एवं कुशीनगर से आ रहा हूँ। मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि तथागत के जीवन एवं 'धम्म' से सम्ब-न्धित इन स्थानों में एक नया उत्साह लहरा रहा है। तथागत की सम्बोधि-भूमि बोधगया में महाबोधि मन्दिर के हस्तान्तरण का यह पुण्य पर्व इस सांस्कृतिक जागरण का महत्वपूर्ण चरण है।'

निस्सन्देह बोधगया में गत वैशाख-पूर्णिमा को आयो-जित महाबोधि–मन्दिर हस्तान्तरण–समारोह उगते हुए एशिया एवं जागते हुये विश्व के एक नये सबेरे का द्योतक था। बर्मा, सिंहल, स्याम, नेपाल, तिब्बत, कम्बोडिया, जापान एवं पाकिस्तान के भिक्षु एवं उपासक-गण जिस उत्साह के साथ इस पावन अवसर पर तथा-गत के सम्बोधि-स्थल को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित

---

* २८ मई को बुद्ध गया में पढ़ा गया संदेश। *

करने के लिये एकत्र हुये वह अत्यन्त प्रेरक था। भारतीय बौद्ध भिक्षुओं एवं उपासकों की श्रद्धा असीम थी। शताब्दियों से उपेक्षित महाबोधि मन्दिर का प्रबन्ध प्रथम बार ऐसी लोकप्रिय समिति के हाथ में आया था, जिसमें हिन्दू भाइयों के साथ बौद्ध मतानुयायियों का समान प्रतिनिधित्व था। यह भारतीय तथा एशियायी सभी बौद्धों के लिए गौरव एवं हर्ष का विषय था। २१ जनवरी १८९१ को भारतीय महाबोधि सोसाइटी के संस्थापक अनागारिक धर्मपाल ने बोधगया के पुनरुद्धार का जो संकल्प किया था और जिसके लिये कांग्रेस तथा देश की अन्य प्रगतिशील शक्तियों को संघर्ष करना पड़ा था, उसकी पूर्ति के प्रथम चरण पर किस को प्रसन्नता न होती? इस वर्ष के बोधगया के अन्तर्राष्ट्रीय मेले की सफलता का यही रहस्य है।

कहा जाता है राजकुमार सिद्धार्थ ही नहीं, सभी बोधिसत्वों की सम्बोधि-भूमि यही पावन स्थल रहा है। किन्तु ६ वर्षों तक उरुवेला के विस्तृत कानन में तपस्या-रत सिद्धार्थ की सम्बोधि-प्राप्ति बोधिसत्वों की साधना में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। विलास एवं तप की अतियों से पृथक् एक नवीन मध्यम मार्ग की खोज में प्रवृत्त सिद्धार्थ ने जब सुजाता द्वारा समर्पित 'पायस' को ग्रहण किया तथा आगे बढ़ने पर जब एक साधारण घसियारे ने उन्हें तृण अर्पित किया तो उरुवेला कान्तार की भूमि ने ही दो रूपों में उस महामानव का अभिनन्दन किया। 'निरंजरा' के शान्त पुलिन पर स्थित बोधिवृक्ष की छाया में वज्रासन पर तृण की शैया पर समाधिस्थ उस 'महामानव' की मूर्ति आज भी भावुक एवं श्रद्धालु दर्शक के मन पर कौंध जाती है। पूर्णिमा का चाँद 'सम्बोधि' की पूर्ण ज्योति का शाश्वत प्रतीक बन आज के मानव को उस 'महासाधक' की शान्त, स्निग्ध एवं शीतल शक्ति का स्मरण दिलाता है, जिसने सागर की गहराई, रेगिस्तान के विस्तार एवं हिमालय एवं मध्य एशिया के पहाड़ों की ऊँचाई को पार कर विश्व के एक विशाल भूखण्ड को अपने प्रकाश से आलोकित किया। बोधिवृक्ष की छाया में वज्रासन पर अवस्थित तथागत की भूमिस्पर्श मुद्रा 'मार-विजय' के प्रतीक के साथ बोधगया की भूमि की आध्यात्मिक शक्ति भी बन गई।

इतिहास की कहानी है कि जहाँ आज महाबोधि मन्दिर है वहीं सम्राट् अशोक ने सम्बोधि-स्थल की यात्रा की स्मृति में प्रथम बौद्ध विहार बनवाया था। चीनी पर्यटक हुएनसांग ने इस जनश्रुति का उल्लेख किया है। आज अशोककालीन विहार का कोई स्वरूप इतिहास के विद्यार्थियों के सम्मुख स्पष्ट नहीं है। पर अशोक द्वारा सिंहल भेजी हुई बोधिवृक्ष की शाखा विश्व में प्राचीनतम एवं प्रामाणिक बोधिवृक्ष के स्मारक के रूप में आज भी सुरक्षित है। आज भी प्रचलित है देश-विदेश में अशोक की पुत्री संघमित्रा की सिंहल-यात्रा की यशगाथाएं। यदि अशोक की अहिंसा की ओर प्रवृत्ति कलिंग के रणक्षेत्र में हुई तो उन्हें 'धम्म विजय' के अभियानों को सफल बनाने की शक्ति तथागत की सम्बोधि-भूमि से मिली। सिंहल में 'धम्म' के जिस सन्देश का प्रसार संघमित्रा ने किया, उसी के परिणाम स्वरूप सिंहल-नरेश श्री मेघवर्ण के समय में वहाँ तथागत की सम्बोधि-भूमि के प्रति इतना अनुराग प्रस्फुटित हुआ। दिग्वजयी समुद्रगुप्त की आज्ञा एवं सहानुभूति से सिंहल-नरेश मेघवर्ण ने बोधगया में सिंहल के यात्रियों के लिए एक विहार का निर्माण कराया। सिंहल ही नहीं, बर्मा के नरेशों ने भी बोधगया में विहार-निर्माण कार्य एवं मरम्मत इत्यादि में रुचि ली है। प्रायः सभी बौद्ध देशों के यात्रियों एवं धार्मिक व्यक्तियों ने महाबोधि मन्दिर के प्रांगण में स्तूप, मूर्तियां या स्तम्भ इत्यादि निर्मित कराकर तथागत के प्रति अपनी श्रद्धाभावना व्यक्त की है। बौद्ध नरेशों के अतिरिक्त ब्राह्मण नरेशों ने भी बौद्ध-कला एवं संस्कृति को कितना प्रोत्साहन दिया, यह महाबोधि मन्दिर के चतुर्दिक स्थापित कलात्मक 'रेलिंग' से स्पष्ट है। इसके स्तम्भों पर अंकित बोधिवृक्ष एवं उपासक, कमल एवं गज अपनी स्थूलता में भी अत्यन्त सजीव हैं।

बोधि वृक्ष के नीचे वज्रासन पर बिछे हुए कमल के अरुण पुष्प तथा उनके बीच स्वर्ण-किरणों-सी खिली हुई तथागत की दो मूर्तियाँ गर्वोन्नत मन्दिर एवं हरित शाखाओं की पृष्ठभूमि में एक अनोखा रंग भर रहीं थीं। सिंहल तथा अन्य बौद्ध देशों से प्रेषित अलंकरण की सामग्री से बोधिवृक्ष एवं वज्रासन के साथ लगभग मन्दिर का सारा प्रांगण जीवन्त हो उठा था।

वैशाख-पूर्णिमा की उषःकालीन बुद्धपूजा के लिए भिक्षुओं के सूत्रोच्चार से वातावरण में एक आध्यात्मिक लहर दौड़ गई। पर मध्याह्न में श्वेतवसनधारी उपासकों के साथ पीतवसन प्रमुख भिक्षुओं की बुद्धपूजा धूप में चमकते हुए ध्वजों, एवं अन्य रंगीन अलंकरणों की छाया में बौद्धयुग के पावन वातावरण की याद दिलाती थी। अत्यन्त गौरव की बात थी कि मध्याह्न की पूजा में भारतीय महाबोधि सभा के सहायक मन्त्री भिक्षु संघरत्न जी एवं भिक्षु सोमानन्द थेर के साथ अनागारिक धर्मपाल के पौत्र श्री गामिनि जयसूर्य एवं सिंहल महाबोधि सोसाइटी के मंत्री की दानशीला उदारमना पत्नी श्रीमती नलिन मुनसिंह भी सम्मिलित थीं। तथागत की सम्बोधि-भूमि को विद्युत से आलोकित करने के संकल्प की घोषणा कर श्रीमती मुनसिंह ने बौद्ध जगत ही नहीं वरन समस्त मानव जगत के सम्मुख सांस्कृतिक उदारशीलता का उज्ज्वल आदर्श उपस्थित किया। वेषभूषा एवं स्वभाव की सादगी में आदर्श सिंहली महिला श्रीमती मुनसिंह के सम्पर्क में आना, एशियाई नारी की उदात्त एवं निःस्वार्थ सेवाभावना से परिचय प्राप्त करना है। बर्मा के माननीय राजदूत के सांकेतिक मुद्रा दान और इस आदर्श महिला के 'आलोक दान' से यह आशा होती है कि शीघ्र ही सारा बौद्ध जगत अपने महान तीर्थ के पुनरुद्धार के लिए आगे बढ़ेगा और बिहार सरकार द्वारा नियुक्त नयी प्रबन्ध समिति को इस सम्बन्ध में पूरी सहायता एवं सद्भावना प्रदान करेगा।

महाबोधि मन्दिर के अन्दर स्थापित तथागत की प्रतिमा को कमल के फूलों एवं मोमबत्तियों का समर्पण प्रातःकाल से सायंकाल चलता रहा। बोधिवृक्ष एवं वज्रासन की पूजा के पश्चात् महाबोधि मन्दिर की परिक्रमा के साथ बुद्धपूजा में रत पुरुष-स्त्री, आबाल-वृद्ध उपासकों की पंक्ति उत्साह एवं भक्ति की धारा-सी प्रतीत होती थी। अपनी भूली हुई सांस्कृतिक शक्ति के प्रति इतनी श्रद्धा, इतनी भक्ति हममें जागृत हो रही है, यह हमारे सुनहरे भविष्य का द्योतक है। दुःख की बात है कि यद्यपि सिंहल एवं सुवर्ण भूमि के नरेश, एवं दूर देश के विदेशी शासक इस मन्दिर की रक्षा एवं इस क्षेत्र के विकास की ओर ध्यान देते रहे हैं, पर हम भगवान् तथागत के जीवन्त सन्देशों से विमुख होते हुए अपनी संस्कृति की इस कलात्मक एवं आध्यात्मिक विरासत की समुचित रक्षा की ओर ध्यान न दे सके।

सायंकाल महाबोधि मन्दिर के जिस प्रमुख द्वार से मन्दिर हस्तान्तरण समारोह की शोभायात्रा आरम्भ हुई वहाँ पर अंकित सादी किन्तु कलात्मक अल्पना के मध्य में चित्रित बोधिवृक्ष का एक 'पत्ता' यह शुभ संकेत देता था कि अब वह दिन दूर नहीं है जब हम सांस्कृतिक एवं धार्मिक तीर्थों में बिखरी हुई कलात्मक विरासत की रक्षा ही नहीं, उसके पुनरुद्धार में संलग्न होंगे। यह ऐतिहासिक शोभायात्रा ऐसे स्थान से प्रारम्भ हुई जिसके दायें पार्श्व में पावन 'अनिमेषलोचन स्तूप' एवं बाएं पार्श्व से महाबोधि मन्दिर के प्रवेश द्वार पर अभय-दान एवं भूमि-स्पर्श मुद्राओं में अंकित तथागत सांध्यरश्मियों से अनुरंजित मंगल कुंकुम की वृष्टि कर रहे थे। प्राचीन स्तूपों एवं मूर्तियों एवं आधुनिक बन्दनवार एवं फूलों की क्यारियों के बीच से तिब्बती मंगलवाद्य ध्वनि के साथ अग्रसर होते हुए इस शोभायात्रा में बिहार के राज्यपाल श्री आर० आर० दिवाकर एवं नवीन बोधगया प्रबन्ध समिति के सदस्यों के साथ प्रमुख बौद्ध भिक्षु एवं बर्मा के राजदूत एवं उनकी धर्मपत्नी भी सम्मिलित थीं—यह गौरव की बात थी। चीनी दूतावास के तरुण सचिव की उपस्थिति तथा सिंहल, बर्मा, कम्बोडिया, नेपाल, एवं पाकिस्तान के प्रतिनिधित्व से उस अन्तर्राष्ट्रीय शोभायात्रा का ऐतिहासिक महत्व स्पष्ट था।

शोभायात्रा महोत्सव के ऐसे रंगमंच के पास समाप्त हुई जो प्राचीन बौद्ध-कला के आधार पर किन्तु साधारण उपकरणों से अत्यन्त आकर्षक रूप में निर्मित किया गया था। पृष्ठभूमि में था महाबोधि सभा का विश्रामगृह एवं सम्मुख बोधि वृक्ष की छांह में से उन्नत महाबोधि मन्दिर के ऊपर उगता हुआ वैशाख पूर्णिमा का चांद, जनता का अपार सागर और उसमें श्रद्धा की असीम लहरें।

बिहार की सांस्कृतिक जागृति के प्रमुख सूत्रधार श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने तथागत की सम्बोधि की ओर जनता एवं विशिष्ट अतिथियों का ध्यान आकृष्ट करते हुए

'लाइट आफ एशिया' से उसके प्रणेता श्रीएडविन एर्नोल्ड के कुछ अमर छन्द सुनाकर महोत्सव की वास्तविक महत्ता पर प्रकाश डाला। माथुर साहब जिन्होंने लगभग पाँच वर्ष पहले गया के जिलाधीश के रूप में बोधगया में बुद्ध-जयन्ती का समारोह प्रारम्भ किया था, इस वर्ष की बुद्ध जयन्ती के ऐतिहासिक समारोह को देखकर स्वभावतः हर्षोत्फुल्ल थे। श्री उपेन्द्र महारथी भी, जिन्होंने अपनी कला से बिहार में एक नई सांस्कृतिक चेतना उत्पन्न की है, बोधगया के पुनरुद्धार यज्ञ में अपना कला दान दे रहे हैं। बोधगया की भीषण गर्मी में तपते हुए उस तरुण तपस्वी कलाकार की लगन देखते ही बनती थी। बांस, तृण एवं खजूर के पत्तों से तोरण का निर्माण कर तथा मिट्टी के रंगमंच को अल्पना एवं सादे मंगलघटों से अलंकृत कर उन्होंने जन-रंगमंच के विकास को एक नया पथ दिया है।

× × ×

वैशाख पूर्णिमाके खुले नीले आसमान के नीचे विशाल रंगमंच पर आसीन सपत्नीक बर्मा के राजदूत, बिहार के राज्यपाल श्री दिवाकर, मुख्य मन्त्री श्री बाबू, नई प्रबन्ध समिति के सदस्य, भिक्षु जगदीश काश्यप, भिक्षु संघरत्न एवं भिक्षु सद्धातिस्स एक विशाल बन्धुत्व के अंग जान पड़ते थे, जिसके प्रकाश में दक्षिणी-पूर्वी एशिया का भूला हुआ परिवार एक सांस्कृतिक सूत्र में आबद्ध हो रहा है। प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू एवं राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद के सन्देशों के अतिरिक्त सिंहल एवं बर्मा के माननीय प्रधान मन्त्रियों के सन्देशों का विशेष महत्त्व इस पृष्ठभूमि में स्पष्ट है।

यह सौभाग्य की बात है कि गत ३० वर्षों से आदरणीय राजेन्द्र बाबू ने बोधगया मन्दिर के प्रबन्ध में हिन्दू और बौद्ध प्रतिनिधियों की समानता का जो स्वप्न देखा था वह गत २८ मई (वैशाख-पूर्णिमा) को पूर्ण हो गया। बोधगया के महंथ श्री हरिहर गिरि ने शान्ति एवं सौहार्द से मन्दिर का संरक्षण एवं प्रबन्ध बिहार सरकार द्वारा नियुक्त नई समिति को सौंप कर अनुकरणीय त्याग का परिचय ही नहीं दिया है वरन् तथागत की सम्बोधि–भूमि को पुनः एशियाई एकता एवं विश्वबन्धुत्व का आलोक-केन्द्र बनाने का मार्ग प्रशस्त किया है।

× × ×

आशा है, राष्ट्रपति के शब्दों में 'बोध गया दिन प्रति दिन तीर्थस्थान के रूप में उन्नत होता जायगा, जहाँ विदेशों के धार्मिक स्त्री-पुरुष प्रेरणा के लिए श्रद्धापूर्वक आते रहेंगे और जहाँ से धार्मिक रश्मियाँ देश-विदेशों में फैलेंगी।'

बर्मा के विद्वान राजदूत ने भारत के साथ बर्मा के प्राचीन सांस्कृतिक सम्बन्धों का उल्लेख करते हुए भल्लिक एवं तपुस्स नामक उन दो सौभाग्यशाली बर्मी व्यापारियों की कहानी का भी उल्लेख किया जो 'सम्बोधिप्राप्ति' के सात सप्ताह पश्चात् उरुवेला कानन से अपने पण्य के साथ जा रहे थे, और जिन्हें सम्बोधिप्राप्ति के पचासवें दिन समाधिस्थ तथागत के दर्शन का ही नहीं वरन् उन्हें उस लंबी ध्यान-साधना के पश्चात प्रथम अन्न-भेंट भी समर्पित करने का सौभाग्य मिला था। २५०० वर्षों में असंख्य बर्मी यात्रियों ने तथागत की सम्बोधि-भूमि को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करना अपना सौभाग्य माना है। ग्यारहवीं शताब्दि से १९ वीं शताब्दि तक बर्मा के नरेशों ने महाबोधिमन्दिर के संरक्षण एवं विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। २० वीं सदी में स्वतंत्र बर्मी गणराज्य के प्रधान मंत्री थाकिन नू ने दो बार संबोधि-भूमि की यात्रा ही नहीं की है वरन् उसके विकास में पर्याप्त रुचि दिखाई है। बोधगया के पुनरुद्धार के लिए बर्मा की सरकार एवं जनता की ओर से समस्त भौतिक, नैतिक एवं आर्थिक सहयोग प्रदान करने की बर्मी राजदूत की घोषणा का इसीलिए विशेष महत्त्व है।

तिब्बत, नेपाल, सिंहल, स्याम, जापान, चीन इत्यादि बौद्धदेशों के असंख्य यात्रियों ने बोधगया की यात्रा द्वारा 'सम्यक्सम्बुद्ध' भगवान तथागत की साधना-भूमि का दर्शन कर अपने जीवन को सफल बनाया है। पर अब नए लोकप्रिय प्रबंध के साथ यात्रियों की संख्या में वृद्धि ही नहीं होगी वरन् बौद्ध देशों की सरकारें तथा जनता तथागत की संबोधिभूमि के अतीत गौरवको पुनरुज्जीवित करने में आशातीत सहायता देगी। मन्दिर-हस्तान्तरण समारोह के अवसर पर 'थाईलैंड' के एक मान्य भिक्षु की ओर से नई प्रबंध समिति को प्रदत्त तथागत की रजत प्रतिमा इसी भावना का प्रतीक थी। 'सैकड़ों वर्षों से उपेक्षित

सम्बोधि-भूमि को बौद्धजगत् स्वर्ण से ढक सकता है'–इन शब्दों में आदरणीय भिक्षु जगदीश काश्यप ने ऐतिहासिक तथ्य को ही व्यक्त किया।

आशा है नई प्रबंध समिति बौद्ध जगत् की उदार दानशीलता का सदुपयोग बोधगया को एक धार्मिक ही नहीं सांस्कृतिक तीर्थ बनाने में करेगी। गया नागरिक संघ ने वहाँ एक सांस्कृतिक अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय स्थापित करने की योजना प्रस्तुत की है। अभी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय न स्थापित हो सके तो भी बौद्ध साहित्य एवं संस्कृति के वैज्ञानिक अध्ययन की पूरी सुविधाएं होनी चाहिएँ और वहाँ से पूर्ण दीक्षा के पश्चात् विदेशों में बौद्धसंस्कृति के प्रचार एवं प्रसार के लिए योग्य विद्वानों को भेजने का समीचीन प्रयत्न होना चाहिए। भारत सरकार एवं जानता का भी यह कर्तव्य है कि बौद्ध तीर्थों को सांस्कृतिक पुनर्जागरण का जीवन्त केन्द्र बनाने में पूर्ण सहायक हो। आज के विश्व में शांति एवं सद्भावना का उदय तथागत की देन-'मैत्री', 'करुणा' एवं 'अहिंसा'–के प्रसार से ही हो सकता है।

भगवान् ने भिक्षुओं को 'बहुजन-हिताय', 'बहुजन सुखाय' मानव सेवा का सच्चा व्रत लेने की प्रेरणा दी थी। 'चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थायहिताय सुखाय देवमनुस्सानं'—महावग्ग के ये शब्द मानव के उच्चतम आदर्श की ओर आज भी हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। मानव यदि सच्चा मानव है तो मानव ही नहीं देवत्व को भी वह उपकृत कर सकता है। आशा है, तथागत की सम्बोधि-भूमि का नव जागरण हमें पुनः इस आदर्श से अनुप्राणित करेगा।

हाँ, इतिहास के एक साधारण विद्यार्थी के रूप में महाबोधि मन्दिर के प्रांगण में तथा उसके आस-पास बिखरी हुई कलात्मक संपत्ति की विशालता से मैं जितना प्रभावित हुआ उतना ही अभी तक अधिकारियों द्वारा अपेक्षाकृत उसकी उपेक्षा से दुःखी भी हुआ। बोधगया की धरती के कण-कण में हमारी प्राचीन कला का शताब्दियों का इतिहास निहित है। महाबोधि मन्दिर तथा उसके 'आंगन' में संजोई हुई बौद्ध संस्कृति की विरासत हमारी ही नहीं सारे विश्व की है। इस विशाल संपत्ति की रक्षा का उत्तरदायित्व बोधगया प्रबंध समिति ही नहीं भारतीय पुरातत्व विभाग पर भी है। भारतीय पुरातत्व विभाग का यह कर्तव्य है कि वह इस कलात्मक राशि के उचित संरक्षण का प्रबंध करे और ऐतिहासिक मन्दिरों, स्तूपों, मूर्तियों तथा अन्य स्मारकों की मौलिक कला की रक्षा का ध्यान रखे। इतिहास एवं संस्कृति के विद्यार्थियों के लिए बोधगया की बहुमूल्य मौलिक सामग्री विलुप्त-सी हो चली है। यदि भारतीय पुरातत्व विभाग ने इस ओर समुचित ध्यान दिया होता तो ऐसा न होता। आज भी महाबोधि मन्दिर के आसपास अनेक कलात्मक मूर्तियाँ या मूर्तिखण्ड बिखरे पड़े हैं। कुछ अत्यन्त आकर्षक प्राचीन कला-कृतियाँ पास के घरों की दीवालों तथा चौखटों तक में निर्दयता के साथ प्रयुक्त दिखाई पड़ती हैं। महाबोधि मन्दिर के उत्तर की ओर एक छोटे-'शेड' के अन्दर मूर्तियों, मूर्तिखण्डों तथा अन्य कलात्मक कृतियों का जो ढेर लगा है, वह दर्शकों तथा इतिहास के विद्यार्थियों के लिए व्यर्थ सा है। आवश्यकता इस बात की है कि बोधगया में सारनाथ एवं नालन्दा की तरह एक उच्च कोटि का संग्रहालय स्थापित किया जाय, जिसमें इस समय संगृहीत मूर्तियाँ तथा कला-कृतियाँ ही नहीं वरन् आगे भी इस क्षेत्र से प्राप्त कला-कृतियाँ सुरक्षित एवं व्यवस्थित रूप से रखी जा सकें।

बिहार सरकार द्वारा निर्मित नई लोकप्रिय प्रबन्ध समिति भारतीय पुरातत्व विभाग के इस प्रयास में पूर्ण सहायक होगी, इसमें सन्देह नहीं।

× × ×

अभी तक ऐतिहासिक बोधि-वृक्ष एवं वज्रासन की जो अवस्था रही है, उससे प्रत्येक भावुक एवं श्रद्धालु हृदय को ठेस पहुँचती रही है। वैशाख-पूर्णिमा की पावन तिथि को भी वज्रासन के ऊपर महाबोधि मन्दिर की दीवाल पर भूमि-स्पर्श मुद्रा में अंकित तथागत की मनोरम मूर्तियों पर से झाल पूर्णतया साफ नहीं किए जा सके थे, यह देखकर मेरा मस्तक लज्जा से झुक गया। बोधिवृक्ष को नाना वर्ण के बौद्ध झण्डों, झण्डियों एवं अलंकारों से सजा कर विदेशी बौद्ध उपासकों ने हमारी उपेक्षा-बुद्धि को एक चुनौती दी थी। हम भगवान बुद्ध की देन के बल

पर सांस्कृतिक क्षेत्र में राष्ट्रीय गर्व का अनुभव करते हैं पर अपने बौद्ध तीर्थों को उचित रूप में नहीं रख पाते, यह हम सभी के लिए लज्जा की बात है। आशा है बोधगया की लोकप्रिय प्रबन्ध समिति बोधिवृक्ष एवं वज्रासन ही नहीं वरन् महाबोधि मन्दिर एवं उसके सभी खण्डों को भारतीय संस्कृति के उज्ज्वलतम प्रतीक के रूप में रखकर अतीत की उपेक्षा का परिमार्जन करेगी।

अत्यन्त हर्ष की बात है कि बिहार सरकार आगामी १९५६ ई० में तथागत की सम्बोधि-भूमि में बुद्ध संवत्सर की पचीस शताब्दियों की समाप्ति पर एक अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन का आयोजन कर रही है। आगामी वर्ष बर्मा की सरकार इसी पावन अवसर की पूर्वपीठिका स्वरूप रंगून में षष्ठम बौद्ध परिषद् का आयोजन कर रही है। प्रथम तीन बौद्ध परिषदें क्रमशः राजगृह, वैशाली एवं पाटलिपुत्र में हुई थीं। चौथी परिषद् सिंहल में और पाँचवीं परिषद् बर्मा में ही मांडले में हुई थी। इस बार की बर्मा की परिषद् के सम्मुख मुख्य कार्य पालि त्रिपिटक का बर्मी, अंग्रेजी और हिन्दी भाषाओं में प्रामाणिक अनुवाद तथा सर्वजनसुलभ त्रिपिटक सार का निर्माण करना है। आशा है बिहार सरकार भी उस अवसर पर इस प्रकार का कोई ठोस कार्य कर अपनी सांस्कृतिक परम्परा का आदर करेगी। बर्मा ने हिन्दी को जो महत्व दिया है वह हमारी अपनी सरकारों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बनेगा, इसमें सन्देह नहीं। नालन्दा में भिक्षु जगदीश काश्यप के सुयोग्य संचालन में पालि अनुसन्धान केन्द्र स्थापित कर बिहार सरकार ने दूरदर्शिता का परिचय दिया है। आशा है बौद्ध साहित्य को हिन्दी में प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करने के महासंकल्प को भी कार्य रूप में परिणत कर बिहार सरकार भारत एवं एशिया के सांस्कृतिक पुनर्जागरण में अपना और महत्वपूर्ण योग दान देगी।

\+ \+ \+

दुःख की बात है कि अभी तक बोधगया का प्रामाणिक इतिहास भी हिन्दी में नहीं है। बोधिवृक्ष जिसकी छाया में सिद्धार्थ ने सम्बोधि प्राप्त की, वज्रासन जिसके ऊपर ज्ञानरत होकर उन्होंने 'मार-विजय' प्राप्त कर सम्बोधि के प्रकाश को ग्रहण किया, 'अनिमेषलोचन' स्तूप का पावन स्थल, जहाँ से अनिमेष दृष्टि से 'तथागत' बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् एक सप्ताह तक 'बोधिवृक्ष' की ओर श्रद्धा के भाव से देखते रहे, 'रतनघर' जहाँ वे सात दिन तक समाधिस्थ रहे, 'चंक्रमण' जहाँ कठोर किन्तु शाश्वत पत्थर पर अंकित मूक 'कमल' आज भी उनके संचरण की कोमल स्मृति संजोए हैं, समीचीन एवं सरल बोधगया सम्बन्धी साहित्य के अभाव में साधारण दर्शकों के लिए वस्तुतः निरर्थक से लगते हैं। 'अजपाल-न्यग्रोध' वृक्ष जहाँ सुजाता ने भगवान को 'पायस' अर्पित किया 'मुचलिंद झील' तथा 'राजायतन' वृक्ष, जहाँ भगवान ने सात-सात दिन तक ध्यान साधना की अखण्ड ज्योति जलाई थी, आज तक इतिहास के विद्यार्थियों के लिए भी अज्ञात-से हैं। नई प्रबन्ध समिति तथा बिहार सरकार का कर्तव्य है कि विद्वानों के सहयोग से हिन्दी में बोधगया सम्बन्धी लोकप्रिय एवं खोजपूर्ण साहित्य शीघ्र से शीघ्र प्रकाशित करें।

शताब्दियों पूर्व अग्रश्रावक 'सारिपुत्त' ने कहा था—'विसोक्खन्तिकमेतं बुद्धानं भगवन्तानं बोधियामूलं सह सब्बञ्ञुतञ्ञाणस्स पटिलाभा सच्छिका पञ्ञत्ति यदिदं बुद्धो' ति। सम्बोधि की पावन भूमि में आज भी साधनारत तथागत 'मुक्ति' का मूक आलोक विकीर्ण करते जान पड़ते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम उस आलोक में अपने दुःख का रहस्य समझें और 'आत्ममुक्ति' से 'मानवमुक्ति' की ओर अग्रसर हों।

तथागत के चरणों में श्रद्धाञ्जलि

श्री ताराशंकर 'नाशाद'

क़हक़हे हमने सुने दुनिया में और फ़रियाद भी,
एक ही रस्ते से गुज़रे, शाद भी नाशाद भी।
हमने इस दुनिया में देखे मुन्सिफ़ व बेदाद[1] भी,
हमने इस गुलशन[2] को देखा उजड़ा और आबाद भी।
हँसते-हँसते खा गई कितने जवानों को ज़मीं,
फूल गुलशन में खिले कितने हुये बरबाद भी।
कितने हिटलर और तोज़ो नज़रों से गुज़रे यहाँ,
उनमें से आती नहीं हमको किसी की याद भी।
याद सिद्धारथ दिलों से,
तेरी जा सकती नहीं॥

एक ज़र्रा भी चमकता है ज़मीं पर जब तलक़,
एक जुगनूँ भी चमकता है ज़मीं पर जब तलक़।
सब्ज़ा गुलशन में लहकता है ज़मीं पर जब तलक़,
फूल गुलशन में महकता है ज़मीं पर जब तलक़।
सागरे-ईमाँ[3] छलकता है ज़मीं पर जब तलक़,
झूठ-सच इन्साँ समझता है ज़मीं पर जब तलक़।
खूँ शहीदों का टपकता है ज़मीं पर जब तलक़,
एक भी 'इन्सान' रहता है ज़मीं पर जब तलक़।
याद सिद्धारथ दिलों से,
तेरी जा सकती नहीं॥

तूने दुनिया को सिखाया था शराफ़त का चलन,
जगमगायी थी दिलों में तूने उल्फ़त[4] की किरन।
थी अहिंसा तुझको प्यारी, सत्य था तेरा मिशन,
तेरी खुशबू से महक उट्ठा था यह सारा चमन।
यास[5] की तारीकियों[6] में आस की फूटी किरन,
मोक्ष के फाटक खुले, टूटे गुलामी के रसन।
शान्ति-सुख की लहर दौड़ी, मिट गया रंजोमहन,
फिर गले मिलने लगे सब चाण्डाल और ब्रह्मन।
याद सिद्धारथ दिलों से,
तेरी जा सकती नहीं॥*

---

१. अन्यायी, २. फुलवारी, ३. प्याला, ४. प्रेम, ५. निराशा, ६. अन्धकार।

* बस्ती में वैशाख-पूर्णिमा के अवसर पर पढ़ी गयी।

शील-समाधि-प्रज्ञा

अनागारिका अनुला

मुझे शरण दीजिये भन्ते ! यह संसार जल रहा है। ममता, मोह, काम, तृष्णा की भट्ठी में जल रहा है। इस भट्ठी में पड़े-पड़े मैं झुलस गई हूँ। भन्ते ! इस भट्ठी से निकाल मुझे अपनी शरण में लीजिये। मुझे वह मार्ग दिखाइये जहाँ इन सब की गन्ध नहीं आती और एक अलौकिक सुख का अनुभव होता है।

तुम्हारा कल्याण हो। अपने अन्दर शील धारण करो उपासिके ! समाधि और प्रज्ञा धारण करो। शान्ति मिलेगी।

शील ! समाधि ! प्रज्ञा ! आपकी यह भाषा मेरी समझ में नहीं आई भन्ते ! ये तीनों क्या हैं ? शील क्या है ? समाधि क्या है ? प्रज्ञा से आप का क्या अभिप्राय है ? इन्हें कृपया स्पष्ट करें।

शील—सब अच्छे धर्मों का स्तम्भ शील है उपासिके ! शील पर स्थिर कोई भी अच्छा धर्म नहीं डिगता। यही शील की पहचान है। शील पर दृढ़ हो जो मनुष्य इन पाँच इन्द्रियों—१. श्रद्धेन्द्रिय २. वीर्येन्द्रिय ३. स्मृतीन्द्रिय ४. समाधीन्द्रिय ५. प्रज्ञेन्द्रिय की भावना करता है वह योगी है। जो इनकी भावना करता है वह संयमी मनुष्य ममता, मोह, काम, तृष्णा आदि से ऊपर उठ जाता है। जो इनका अभ्यास करता है—ममता, मोह, काम, तृष्णा की आग की लपटें उसे अपने में नहीं लपेट सकतीं। अतः इनका अभ्यास कर अपने अन्दर शील धारण करो।

किन्तु शील को धारण करने के लिये सबसे पहले अपने अन्दर श्रद्धा को लाना होगा। बिना श्रद्धा के मानव कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकता। जिस प्रकार बिना नींव के कोई मकान नहीं टिक सकता, वैसे ही बिना श्रद्धा के किसी प्रकार की भावना भी नहीं की जा सकती। इसलिये सबसे पहले अपने अन्दर श्रद्धा पैदा करो। श्रद्धा द्वारा अपने मन को स्वच्छ, प्रसन्न तथा निर्मल बनाओ। तत्पश्चात् भावना का अभ्यास करो। इस प्रकार प्रतिदिन के अभ्यास से तुम्हें अपने अन्दर शील धारण करने में सहायता मिलेगी। जिसके पास शील जैसी अमूल्य निधि है उसे फिर इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं।

समाधि—स्थिर चित्त हो अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होना ही समाधि की पहचान है। समाधिस्थ होने से पुण्य-धर्म वरदानस्वरूप मिलते हैं। सभी पुण्य धर्म इसी में आकर अवस्थित होते हैं। जैसे नदी अपने सम्मुख एक लक्ष्य लिये हुए समुद्र की ओर बही चली जाती है और वहीं जाकर समुद्र में मिल कर अन्त हो जाती है उसी प्रकार जितने पुण्य धर्म हैं सभी समाधिस्थ होने से होते हैं। इसी ओर झुकते हैं और इसी में आकर अवस्थित होते हैं। इसलिये समाधि का अभ्यास भी बहुत आवश्यक है। समाधि लग जाने से सच्चा ज्ञान होता है। पावर-हाउस की तरह तेज़ प्रकाश सम्मुख दिखाई देने लगता है और एक अलौकिक आनन्द का अनुभव होता है जिसका वर्णन शब्दों में करना कठिन है उपासिके ! यह सुख तो वही जान सकता है जिसने इसका अनुभव किया है। समाधि लग जाने से ममता, मोह, काम, तृष्णा आदि सब भस्म हो जाते हैं और सत्वगुण ऊपर उठ आते हैं। इसलिये उपासिके ! चाहे पाँच मिनट के लिये ही प्रतिदिन समाधि का अभ्यास किया करो। आत्मज्ञान मिलेगा। सच्ची शान्ति प्राप्त होगी।

प्रज्ञा—'ठीक से समझ लेना' प्रज्ञा की पहचान है। ठीक से समझ लेने पर तर्क-वितर्क की शक्ति बढ़ती है और तर्क-वितर्क से ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञान उत्पन्न होने से अविद्या रूपी अन्धकार दूर हो जाता है और विद्या रूपी प्रकाश पैदा होता है। जिसके अन्दर विद्या रूपी प्रकाश पैदा हो जाता है उसे चारों आर्य-सत्य स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। जो योगी इनका स्पष्ट दर्शन कर लेता है, वह अनित्य, दुःख और अनात्म को भली-भाँति

ज्ञान द्वारा जान लेता है। ममता, मोह, काम, तृष्णा के मायाजाल में वह नहीं फँसता, उनसे निर्लिप्त हो जाता है। प्रज्ञावान् मनुष्य ज्ञान रूपी जलता हुआ चिराग़ अपने साथ लेकर चलता है। इसलिये उसका अन्तरतम प्रकाश से भरा रहता है। वह सांसारिक सुख, दुःख को भली-भाँति पहचानता है। हर परिस्थिति में सन्तुष्ट रहता है। अपनी विपरीत परिस्थितियों को भी भली प्रकार समझते हुए प्रज्ञा द्वारा उन्हें अपने अनुकूल बना लेता है। वह ठीक और ग़लत को जानता है। पाप और पुण्य की परिभाषा को समझता है। ऐसे प्रज्ञावान मनुष्य के चित्त में क्लेश पैदा नहीं होते। ममता, मोह, काम, तृष्णा के भाव उसे नहीं सताते। वह योगी सदा शान्त और प्रसन्न रहता है। शील, समाधि, प्रज्ञा जो इन तीनों रत्नों को पा लेता है उसे अमृत-पद प्राप्त होता है। यही भगवान् बुद्ध का उपदेश है। इसका अनुसरण करो। भवतु सब्ब मंगलं।

पालिवाङ्मय का संक्षिप्त परिचय

श्री सुमन वात्स्यायन

[१]

पालि भाषा कभी सारे उत्तर भारत की राष्ट्रभाषा थी। आज की तरह ढाई हजार वर्ष पूर्व भी उत्तर भारत में अनेक स्थानीय भाषाएँ थीं, पर अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिये कभी पालि भाषा का ही उपयोग होता था। मगध, अंग, वैशाली, काशी, कोशल आदि जनपदों की बोल-चाल की भाषा निश्चय ही पृथक् रही होगी, किन्तु पालि-भाषा मगध की भाषा थी जो राजनैतिक दृष्टि से प्राचीन भारतीय इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती थी इसलिये पालि का यथार्थ और प्राचीन नाम मागधी ही है। मगध के राजनैतिक प्रभुत्व के साथ-साथ मगध का भी प्रसार होना स्वाभाविक ही था।

कुछ लोग संस्कृत नाटकों में शूद्र, स्त्री आदि तथा-कथित नीच पात्रों के मुख से अर्ध-मागधी या प्राकृत का उपयोग देखकर अनुमान लगाते हैं कि कभी संस्कृत जन-भाषा थी और प्राकृत 'छोटे लोग' बोलते थे। पर यह अनुमान ठीक नहीं प्रतीत होता। भाषाशास्त्र और संसार की भाषा परम्परा के अनुसार तो यह तर्क और भी निःसार जान पड़ता है। हमारी स्वराज्य सरकार की मुहर लगने के पहले भी हिन्दी अन्तर्प्रान्तीय व्यव-हार की भाषा रही, किन्तु देश में हिन्दी से पुरानी, उन्नत और अधिक सुसंस्कृत अनेक प्रान्तीय भाषाएँ मौजूद हैं। लेकिन कुलियों की भाषा कही जानेवाली हिन्दी ही आज राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन हो सकी। हिन्दी को यह पद इसलिये मिला कि उसके बोलने और समझने वालों की संख्या और भाषाओं की अपेक्षा अधिक थी; साहित्यिक गुणों के कारण नहीं। आर्य लोग भारत में, अनेक दलों में, अनेक रास्तों से आये। उनकी भाषा 'वैदिक संस्कृत' से मिलती-जुलती ही थी। यहाँ बस जाने पर अभिजात वर्ग को अपनी वाणी की कुशलता दिखाने के लिये स्वाभाविक भाषा प्रवाह को काट-छाँट कर विशेष रूप देना पड़ा। उच्च वर्ग के लिये भाषा का यही 'विशेष रूप' अच्छी तरह सज-धज कर संस्कृत कहलाया। सारांश यह कि संस्कृत कभी जनभाषा नहीं रही। जनता से संस्कृत का कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा। सदा से यह देवभाषा ही रही, इसीलिये मनुष्य होकर भी शूद्र, स्त्री और जनसाधारण (जिनकी संख्या तीन चौथाई से अधिक ही रही होगी) इसे नहीं बोल सके।

आर्य लोगों के उत्तर में बस जाने के बाद उनकी भाषा और रहन-सहन में परिवर्तन होता गया। अनेक दलों में यहाँ आने तथा स्थानीय परिवर्तनों के कारण उनकी भाषा के रूप में भी अदल बदल होता रहा। बाद में उसी परिवर्तन को देखकर पाणिनि ने कहा, 'बहुलं छन्दसि'। ठीक ही था। वैदिक भाषा जन-भाषा थी, इसीलिये उसमें बहुत उलट-फेर विद्वानों को दिखाई ही देता। वैदिक-भाषा में भवति, भवाति, भवत्, भवात्, भवते,

भवाते, भविषति, भाविषति, भविषत् , भाविषत् , भविषाति, भाविषाति आदि सब रूप चलते थे, किन्तु अल्पसंख्यक उच्च वर्ग के शिक्षित समुदाय द्वारा संस्कार की हुई भाषा में यह बहुरूपता नहीं मिल सकती। आज भी कुछ लोग संस्कृत को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का स्वप्न देखते हैं। इस तरह के लोगों को जान लेना चाहिये कि संस्कृत कभी भी न तो राष्ट्रभाषा रही, न आगे कभी उसे वह आसन प्राप्त होने की सम्भावना है। किसी भाषा को राष्ट्रभाषा होने के लिये जन-भाषा का रूप ग्रहण करना परमावश्यक है और यह क्षमता संस्कृत में न कभी रही, न आज है।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से कभी कोई भाषा किसी भाषा से 'निकली हुई' या 'पैदा हुई' नहीं हुआ करती। प्रत्येक भाषा स्वतः स्वतंत्र होती है। फिर भी समानता, परम्परा और देश-काल को देखते हुए हम वैदिक भाषा की उत्तराधिकारिणी पालि या मागधी को ही मान सकते हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से जहाँ यह सत्य है वहाँ तात्विक दृष्टि से भी यही ठीक प्रतीत होता है। पतंजलि ने लाचार हो घुमा-फिराकर इसे ही स्वीकार किया है; तभी तो उन्होंने लिखा कि पाणिनि के समय 'वट्टति' 'वड्ढयाति' 'बडढयति', 'कसि', 'दासि' आदि रूप प्रयुक्त होते थे। पालि भाषा में इन शब्दों के ये रूप प्रचलित हैं। वेद में किसी वर्ण के स्थान में कभी-कभी कोई दूसरा वर्ण चला आता है, जैसे शुभितम्–शुधितम् इति प्राप्ते; तमसो गा अदुन्तत्–अधुक्षत् इति प्राप्ते; गृभाय–गृहाण इति प्राप्ते इत्यादि। पालि में भी वेद के समान ही वर्गों का उलट-फेर (व्यत्यय) हो जाता है; जैसे बुद्धेभि = बुद्धेहि; दुक्कटं = दुक्कतं; जाणं = ञाणं; पलिघो = परिघो इत्यादि।[१]

वैदिक भाषा और पालि भाषा में यह रूप-परिवर्तन इसलिये हुआ कि दोनों ही जन-भाषाएँ थीं। विभिन्न प्रदेशों की साधारण जनता भी इनका प्रयोग करती थी, इसलिये एक ही अर्थ के अनेक मिलते-जुलते शब्द उसमें आते गये। देव-भाषा संस्कृत, एक सीमेंट कंकरीट से चारों ओर से बँधे तालाब के समान, सुरक्षित रखी गयी पर वैदिक भाषा और उसकी उत्तराधिकारिणी पालि एवं प्राकृत उन्मुक्त समुद्र के समान रहीं—अनेक छोटी-बड़ी नदियाँ इसमें मिलकर अपना अस्तित्व खोती रहीं।

ऊपर हम कह आये हैं कि पालि का असली नाम मागधी है। आर्यों के उत्तर भारत में अच्छी तरह जमने के बाद, जहाँ सुसंगठित राज्यों का सबसे पहले विकास हुआ वह प्रदेश मगध ही था। बाद में भी शताब्दियों तक भारतीय राजनैतिक जीवन का केन्द्र मगध ही रहा। पहले-पहल मगध ने ही सारे देश को एक साम्राज्य में लाने का प्रयत्न किया और उसे ही इसमें सफलता भी मिली। इसीलिये मगध की भाषा ही देश की राज्य-भाषा रही हो तो कोई आश्चर्य नहीं। भाषा होने के कारण मागधी के रूप में अनेक परिवर्तन होते रहे। प्रादेशिक बोलियों ने जहाँ मागधी से बहुत कुछ लिया वहाँ उसे बहुत कुछ दिया भी। इसलिये पालि या मागधी में एक ही शब्द के अनेक रूप पाये जाते हैं। हिन्दी अभी इस ग्रहण भावना से वंचित है और इसीलिये भारत के विभिन्न प्रान्तों में अब तक यह एक 'परदेशी' भाषा बनी है। किसी भाषा को जनता से छीन कर अनन्तकाल तक बन्दी बनाकर रखने का काम सदा से वैयाकरण लोग करते आये हैं। नियम और सीमित प्रयोगों का निर्देश करके वे भाषा को जिन्दा ही दफना देते हैं। इसलिये वैयाकरणों का सब से कम दबाव भाषा पर पड़ना ही कल्याणकारक है।

मागधी का 'पालि' नाम कैसे पड़ा, इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग इसे पाटलिपुत्र की भाषा होने के कारण प्रथम 'पाटलि' और फिर उससे बिगड़ कर 'पालि' रूप में आयी हुई बताते हैं। कुछ इसे ग्रामीणों की भाषा जानकर इसकी उत्पत्ति 'पल्लि' से करते हैं। त्रिपिटक में भाषा के अर्थ में, 'पालि' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने लिखा है "आचार्य बुद्धघोष के समय तक अर्थात् चौथी-पाँचवीं शताब्दी ई० में इन सब ग्रन्थों अथवा इन ग्रन्थों में से लिये गये उद्धरणों के लिये 'पालि' शब्द व्यवहृत होता था। आचार्य बुद्धघोष ने इन (त्रिपिटक) ग्रथों में से जहाँ कहीं कोई उद्धरण

१. ज. काश्यप।

लिया है वहाँ 'अयमेत्थपालि' (यहाँ यह पालि है) वा 'पालियं वुत्तं' (पालि में कहा गया है) का प्रयोग किया है। जिस प्रकार पाणिनि ने 'छन्दसि' शब्द से वेदों का तथा 'भाषायाम्' से तत्कालीन प्रचलित संस्कृत का उल्लेख किया है, उसी प्रकार आचार्य बुद्धघोष ने 'पालियं' से तिपिटक वा मूलवचन को तथा 'अट्ठकथायं' से उनके समय में सिंहल दीप में विद्यमान सिंहल अट्ठकथाओं को याद किया है।"

कुछ विद्वानों की राय में पालि का अर्थ 'मूलग्रन्थ की पंक्ति' है। अट्ठकथा से भिन्न मूल त्रिपिटक के लिये ही इसका प्रयोग हुआ है। जैसे 'पालिमेव इध आनीतं नत्थि अट्ठकथा इध' (यहाँ सिर्फ पालि लायी गयी है, अर्थकथा नहीं); 'नेव पालियं न अट्ठकथायं दिस्सति' (न तो पालि में और न अट्ठकथा में ही दिखाई देता है)। ग्रन्थों के नाम के साथ प्रायः पालि शब्द का प्रयोग होता है, जैसे 'पाचित्तिय पालि' 'जातक पालि' आदि। वैयाकरणों ने पा = रक्खणे धातु से इसका अर्थ निकाला—पा-पालेति रक्खतीत पालि = पंक्ति। कतिपय विद्वानों ने इसकी उत्पत्ति परियाय शब्द से मानी है, जैसे 'इमं धम्म परियाय अत्थ जालन्ति पि नं धारेहि' (इस धर्म परियाय—उपदेश को अर्थजाल भी समझो); 'को नु खो अयं भन्ते ! धम्म परियायो ति ?' (भन्ते,इस धर्मपरियाय-धर्मोपदेश—का क्या नाम है ?) इसी तरह के प्रयोग 'परियाय' शब्द के हुए हैं। अशोक के शिला लेख में 'परियाय शब्द का पालियाय' रूप व्यवहृत हुआ है, जैसे 'इमानि-भन्ते धम्म-पलियायानि' (भन्ते, ये धम्म-पलियाय हैं)। इसी तरह 'पलियाय' शब्द का रूप धीरे-धीरे 'पालियाय' हो गया। बाद में इसी शब्द का लघु रूप 'पालि' रह गया और इसका अर्थ हुआ 'बुद्ध वचन'[२] कुछ विद्वानों ने 'पालियाय' का अनुवाद 'ग्रन्थ' किया है[१]। पर यह अर्थ खींच-तान कर किया गया मालूम पड़ता है। पालि असल में किसी भाषा का नाम नहीं रहा है। भाषा का नाम तो रहा है मागधी। पालि तो केवल 'मूल वचन' का पर्यायवाची शब्द रहा है[३]।

ऊपर हम कह आये हैं कि जन-भाषा होने के कारण पालि में एक ही शब्द के मिलते-जुलते अनेक रूप पाये जाते हैं। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जाकर इसके रूप में अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। देश और काल का प्रभाव जीवित भाषा पर पड़ता ही है। चौरासी सिद्धों और पृथ्वीराज रासो, लल्लूलाल जी और सदासुखलाल जी, भारतेन्दु और प्रेमचन्द जी तक हम हिन्दी के कितने ही रूप देखते हैं। उसी तरह त्रिपिटक की पालि और अशोक के समय की पालि में काफी अन्तर पड़ गया है। फिर भी है दोनों पालि ही। जिन्हें पहचानने में कोई विशेष दिक्कत भी नहीं। नमूने के लिये एक उदाहरण त्रिपिटक से और एक अशोक के शिलालेख से ले लें :—

रञ्ञो आनन्द ! चक्कवत्तिस्स सरीरं अहतेन वत्थेन वेठेन्ति। अहतेन वत्थेन वेठेत्वा विहतेन कप्पासेन वेठेन्ति, विहतेन कप्पासेन वेठेत्वा अहतेन वत्थेन वेठेन्ति[४]।

(अर्थात्, आनन्द ! राजा चक्रवर्ती के शरीर को नये वस्त्र से लपेटते हैं। धुनी हुई रूई से लपेट कर नये वस्त्र से लपेटते हैं।)

अब अशोक के एक शिला लेख की भाषा देखिये:—

पुरा महानसम्हि देवानं प्रियस प्रियदसिनो राजा अनुदिवसं बहुनि प्राणसत सहस्रानि आरभिसु सुपाथाय। से अज यदा अयं धमं लिपि लिखता[५]...॥

(अर्थात् पहले देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के रसोई घर में बहुत सैकड़ों, सहस्रों, प्राणी शोरबे के लिये मारे जाते थे, सो आज जब यह धर्मलिपि लिखी गयी...।)

इन उदाहरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि त्रिपिटक की पालि और अशोक के शिला लेखों की पालि में सैकड़ों वर्ष के अन्तर के कारण ही फर्क पड़ा है।

यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है कि अशोक के विभिन्न शिलालेखों में एक ही घोषणा की भाषा में भी अन्तर पड़ गया है। जिसका कारण यह मालूम पड़ता है कि जिस प्रदेश में वह लेख खोदा गया उस प्रदेश में उस शब्द का जो रूप प्रचलित होगा वही उत्कीर्ण किया गया। उदाहरण के लिये इसे भी देखते चलें :—

१. ज. काश्यप। २. ज. भट्ट। ३. आ. कौसल्यायन।

४. महापरिनिब्बाणसुत्तं ५. गौ. ही. ओझा द्वारा सम्पादित

स्थान	भाषा का रूप	स्थान	भाषा का रूप
कालसी	देवानं पिये पियेदसि लाजा-आहा	जौगड़	देवानं पिये पियदसी लाजा········
गिरनार	देवानं पियो प्रियदसि राजा एवं आह	शहबाजगढ़ी	देवनं प्रियो प्रियदशि रय एवं अहति
धौली	देवानं पिये पियदसी लाजा हेवं आहा	मानसेरा	देवन प्रिये प्रियद्रशि रज एवं अह[1]

(शेष अगले अंक में)

बौद्धधर्म क्या है ?

भदन्त आर्यवंश स्थविर

१--बौद्धधर्म एक धर्म है, दर्शन है, जीवन की विशिष्ट पद्धति है और पूर्व मानव संस्कृति भी ।

२--बौद्धधर्म का आधार तथागत की बोधि है, जो एक ऐतिहासिक घटना है । प्रत्येक बौद्ध स्मरण करता है कि वे भगवान् मुक्त पुरुष, पूर्व ज्ञानी, विद्य और आचरण से युक्त, सुन्दर गति वाले, लोकविद्, पुरुषों को संयमी बनाने के लिए अद्वितीय सारथी-स्वरूप और देवताओं और मनुष्यों के शास्ता हैं ।

३--बौद्धधर्म के अनेक स्वरूप हैं। वह विश्व कल्पना के समान महान् और जीवन की भाँति विशाल है। उसके सब रूप बिना किसी अपवाद के भगवान् बुद्ध के जीवन और उपदेशों पर आधारित हैं।

४--बौद्धधर्म का प्राण है मध्यम मार्ग। वह अतिवैयक्तिकता और अति सामाजिकता के रोग से पीड़ित आधुनिक समाज के लिए चिकित्सा शास्त्र का काम दे सकता है ।

५--बौद्धधर्म आत्म संस्कार का धर्म है। बुद्ध केवल शास्ता हैं, मार्ग दर्शक हैं । मनुष्य की अपनी मुक्ति स्वयं खोजनी है, उसे 'आत्म-दीप' बनाना है ।

६--बौद्धधर्म विरति और विवेक पर खड़ा है, वह बौद्धिक स्थान का धर्म है। सत्य और काम एक हैं, इसलिए अंधविश्वास और बौद्धिक मोह को यहाँ कोई स्थान नहीं है ।

७--बौद्धधर्म शताब्दियों से मानवता का एक महान आश्वासन रहा है । विश्व की पंचमांश जनता आज भी अपनी शान्ति के लिए उसकी ओर देखती है । बौद्धधर्म का अध्ययन मानव-विज्ञान का अध्ययन है ।

८--बौद्धधर्म के नाम पर उसके विशाल इतिहास में एक भी प्राणी को पीड़ित नहीं किया गया । बौद्धधर्म उदारता, सहिष्णुता और विश्व प्रेम का धर्म है ।

९--मुक्ति का आश्वासन बौद्धधर्म में एक ऐतिहासिक तथ्य तथागत की बोधि-प्राप्ति पर आधारित है । यह विशेषता उसे विश्व की अन्य सब धर्म-साधनाओं से अलग कर देती है। बौद्धधर्म अद्वितीय आश्वासन-युक्त धर्म है ।

१०--सामाजिक निर्माण में सभ्यता का प्रचार सर्वप्रथम बौद्धधर्म ने ही किया है। उसके निर्भय बुद्धिवाद ने समाज सुधारकों को प्रेरणा दी है और भारतीय इतिहास में प्रथम बार मानवतावादी युग लाने का श्रेय तथागत की 'आतुर्कर्णी' को ही है ।

११--राजनीतिक क्षेत्र में बौद्धधर्म ने अशोक और शौतोकु जैसे शासकों को पैदा किया है । बुद्ध के नाम पर आजतक किसी का आर्थिक या राजनीतिक शोषण नहीं किया गया है ।

१२--दर्शन साहित्य और कला के क्षेत्र में बौद्धधर्म की अभूतपूर्व देन है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि जबसे बौद्धधर्म गया, भारत में दार्शनिक विकास भी अवरुद्ध हो गया ।

१३--बौद्धधर्म ही एकमात्र ऐसा भारतीय धर्म है जिसने विश्व की जनता को इतने बड़े पैमाने पर प्रभावित

---

१. गौ. ही. ओझा द्वारा संपादित

किया है। सच्चे अर्थों में उसने सभ्यता का प्रसार किया है और उसने बर्बर लोगों को साधु और भिक्षु बनाया है।

१४—बौद्धधर्म मनुष्य की उच्चतम नैतिक चेतना का प्रतीक है और उसमें मानव जीवन की गहन समस्याओं का समाधान विद्यमान है।

१५—आज जब कि वरुण और इन्द्र बहुत पूर्व ही निष्प्राण हो चुके हैं, पौराणिक अवतारी पुरुष भी वैज्ञानिक अन्वेषण के सामने निष्प्रभ होकर अस्तित्व प्रायः खो चुके हैं ऐतिहासिक बुद्ध ही भावी भारतीय साधना के आश्वासन बनेंगे इसमें कोई संदेह नहीं

अत्तदीपो भव

श्री विजय श्रीवास्तव

ज्ञान के प्रथम प्रकाश में मानव ने प्रेरणा पाई। अन्धकार से उजाले की ओर, उजाले से अन्धकार की ओर, अन्धेरे में प्रकाश की ज्योति और प्रकाश में अन्धेरे की छाया। तम का आलोक और आलोक का तम··· और उसने गाया—"तमसो मा ज्योतिर्गमय" का गान।

वह जड़वत् अपने स्थान पर खड़े-खड़े आकाश के विशाल प्रस्तर के शनैः शनैः बदलते हुये रंगों को देखने लगा। सूर्य की ढलती हुई ज्वाला अपनी उष्णता खोने लगी, वृक्षों की पत्तियों के बीच से होकर आती हुई प्रकाश की महीन लीकें इस ओर संकेत करने लगीं कि अब सन्ध्या के आगमन में देर नहीं और वह शीघ्र ही अपने रक्तिम होते हुये वस्त्रों को उतार जगमगाते हुये तारों से मण्डित काली साड़ी पहन लेगी। रवि ने शीघ्रगामी सन्ध्या से सामना करने के लिये उल्लसित हो केसरिया बाना पहना पर शीघ्र ही निजशक्ति पर विश्वास खोकर विरक्ति में चीवर धारण कर संसार से संन्यास ले लिया। सन्ध्या भी हँस पड़ी पर उसकी भी विजयोल्लास-भावना अधिक स्थाई न रह सकी और अपने प्रियतम प्रभाकर के वियोग में व्याकुल हो श्याम वस्त्र धारण कर लिये और उसके अन्तर का शोक प्रकृति का सान्ध्य संगीत बनकर उमड़ पड़ा जिसके करुण स्वर में वह स्वयं भी खो-सी गई। विहंगों ने भी अपने-अपने पंख समेट लिये। शान्त कलरव करती हुई स्पन्दनहीन हो अब कोलाहलहीन और शान्त हो गई।

अकेला ही वह अभी तक यथास्थान मूर्तिवत् खड़ा ही रहा। दिवस का अवसान उसने देखा, रात्रि के आगमन का भी उसने स्वागत किया। पथ विस्तृत जिसका न कोई आरम्भ और न कोई अन्त। अवलम्ब उसके अपने दो पैरों को छोड़ और कुछ भी नहीं···प्रकाश भी न था उसके पास और न ही कोई सहारा। पर उसके मुख पर विषाद के चिह्न न थे, चिन्ता की रेखायें न थीं, आँखों में उत्साह की ज्योति भी नहीं, अवसाद के आँसू भी नहीं। क्या उसने अपनी मंजिल पार कर ली थी या आगे बढ़ने की इच्छा ही नहीं हो रही थी उसकी, कुछ स्पष्ट निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता।

अपनी जीवन-यात्रा के पथ पर पथिक निश्चल भाव से खड़ा था—अदृष्ट के हाथ का एक मासूम खिलौना मात्र।

निकट के वृक्षों की भाँति अचल, गतिहीन वह यूँ ही खड़ा रहा। समय उसका साथ देने को तैयार न था—हृदयहीन जो ठहरा वह—क्रूर, कठोर निर्दयी। दूर पर स्थित स्तूपों के अवशेष काली अँधियारी में और भी निकट प्रतीत होते थे—लगता था जैसे वे उस पथिक के ऊपर छा जायँगे। उसे अपने भीतर समेट लेंगे। वहीं निकटस्थ पड़े हुये खंडहर जो दिन के समय उल्लसित हो हँस रहे थे, अपनी खोखली हँसी, इस समय मौन समाधि में लीन हो गये। इस जगत् के प्राणियों से उन्हें तनिक ममता-मोह नहीं, लगाव अथवा बिलगाव भी नहीं, स्नेह और द्वेष भी नहीं। निर्लिप्त भावना में वे जैसे मस्त सो रहे थे। देखते हुये भी देखते नहीं, स्पर्श में भी उनके शीतलता थी। न ही किसी प्रकार का आकर्षण किसी के प्रति और न विराग। जिनसे कुछ भी मोह-माया रही हो वे अब न जाने कितनी दूर थे; जिनको वे जानते भी न थे, वे अब कितने निकट थे। ये ध्वंसावशेष किसी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की करुण कहानियाँ सुना रहे हैं;

जिनका अन्त हो चुका था तथा देवताओं की सृष्टि-पुस्तक के नूतन अध्याय का प्रारम्भ भी उसी अन्त स्थल से ही उसी के मध्य होने वाला था। अन्त और आदि, आदि और अन्त का मिलन-स्थल था यहाँ पर। विगत एवं नवीन प्रकरण में किसी प्रकार की समता नहीं—दोनों ही न थे। उनका कथानक और उनके पात्र सर्वथा नवीन। हो सकता है कभी परिचित भी रहे हों?

मानव सृष्टि आरम्भ होने के पूर्व के निविड़ अन्धकार के मध्य अदृष्ट की ओर दृष्टि किये हुये खड़ा है—आदि, अन्त, अनन्त के संगम पर।

उसके पैर उठे और वह मार्ग के मोड़ से घूमकर सामने की ओर चल पड़ा। लगता था कि मार्ग एकदम सीधा होगा क्योंकि अंधेरे के कारण ठीक-ठीक निष्कर्ष पर पहुँचना भी सरल न था। नक्षत्रों की प्रकाश-किरणें विटप-समूह की पत्तियों के ऊपर-ही-ऊपर संतरण कर रही थीं। इस कारण दूरी और निकटता का भेद और अभेद्य था; वहाँ तो केवल एक ही वस्तु उसके सामने खड़ी थी—निविड़ अन्धकार। सन्नाटे में अकेले पथिक के पैर धीरे-धीरे बढ़ते जा रहे थे, कभी-कभी डगमगा जाते थे अवश्य, मार्ग का सही ज्ञान न होने के कारण। निशासुन्दरी से पुष्प-पत्तियों की धीमी-धीमी बातें, पथिक के पगद्वय की आहट, उसके हृदय की हल्की-हल्की ध्वनि, श्वाँसों के स्वर, पवन के साँसों के साथ मिलकर सन्नाटे को और भी विकराल बना रहे थे। कुछ दूर चलने पर एकाएक वह रुक गया। वहाँ एक मोड़ था··· और फिर आगे की ओर।

शीतल वायु का सुखद स्पर्श आनन्ददायी था। कुछ आश्वस्त हो उसने इधर-उधर देखने का प्रयत्न किया। पेड़ की डालियों और पत्तियों के पीछे से निरंतर एकटक झाँकने वाले नक्षत्र मंडल उसकी ओर देखकर कभी-कभी हँस देते थे। अंधकार अब उतना अंधकारमय नहीं लगता था। यहाँ भूमि पर वह अकेला और वहाँ आकाश के अनन्त पथ पर वे अकेले—एकाकीपन दोनों के ही जीवन में था और दोनों ही थे अपने-अपने मार्ग के पथिक। दोनों ही की यात्रा का कोई छोर नहीं, कोई अन्त नहीं। आदि-अनन्त की ओर दोनों ही अग्रसर थे।

मोड़-पर-मोड़ आते गये और न-जाने कितने आगे छिपे पड़े थे रहस्य के गर्भ में। जहाँ कहीं भी मन में उदासीनता का कुहासा घनीभूत होने लगा, एकरसता की नीरसता का भास होने लगा वहीं वह निश्चेष्ट होने लगता और अपनी थकान उसे याद हो आती। जैसे ही वह सोचने लगता कि अब ध्येय पर पहुँचे, एक मोड़ सामने आ जाता। हतोत्साह होने पर भी उत्साह की हिलोरें उठने लगतीं। और अब तो उसके कष्ट निवारणार्थ अधिक-से-अधिक उपालंब मिलते जाते—पानी के झरने, पुष्पों की भीनी-भीनी महक, फल इत्यादि। इस कारण ऐसा भी होता कि मानव किसी-किसी स्थान पर विश्राम करने में अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाता। अन्त तो किसी भी वस्तु का नहीं। हाँ, स्थाई ध्येय अवश्य होता है जहाँ पहुँच कर मानव को तनिक उत्साह-बल मिल जाता है, जिससे उसे आगे के मार्ग पर अग्रसर होने की नवीन प्रेरणा मिलती रहती है। स्थानीय ध्येय का निमित्त उसे एक नूतन शक्ति और जागृति की चेतना प्रदान करता है जिससे वह अपने कर्त्तव्यों के प्रति एक बार फिर चैतन्य हो जाता है।

चैतन्यता आने से ही मानव-मस्तिष्क में एक प्रकार की स्फूर्तिमय-परिवर्तन की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ने लगती है। उसमें एक प्रकार के आन्तरिक असंतोष की सृष्टि होती है। उसे अब उन महकदार पुष्पों से, सुगन्ध-युक्त एवं मादक बयार से, वृक्षों की छाया से विरक्ति-सी होने लगती है और उसका मन ऊब-सा जाता है। इन लुभानेवाली वस्तुओं से उसे एक प्रकार की विरक्ति-सी हो जाती है। पानी की प्यास अब पानी से बुझती नहीं फिर क्या करे वह, कहाँ जाय?

कबतक वह मोड़ पर मोड़ यूँ ही घूमता रहेगा? क्या कोई सीधा मार्ग नहीं जो उसे इस निरन्तर भटकते रहने की विडम्बना से मुक्ति दिला दे, जिससे इसका लक्ष्य आसान हो जाय! मानव अन्धकार से आगे को बढ़ा और गया भी तो अन्धकार ही की ओर। आलोक अभी कितनी दूर था पता नहीं। वह रुक गया; उसके मन ने विद्रोह किया; इन पेंचदार घुमावों में भुलभुलैया का चक्कर काटते रहने के पश्चात् उसका अन्तर चेतनाशून्य-सा होने लगा। मानव घबरा गया, नेत्रद्वार उसके बन्द से हो गये। क्या

करे वह, किधर जाय? क्या पुनः वह पीछे घूम कर जहाँ से चला था वहीं जाय अथवा आगे की ओर ? पता नहीं कब-तक वह उसी प्रकार चुपचाप खड़ा रहा। धीरे से सँभलते सँभलते उसने आँखें खोली और विस्मित-सा इधर-उधर आँखें गड़ाकर देखने लगा......। वही अन्धकार, वही स्थान जहाँ से प्रथम उसने यात्रा आरंभ की थी। उसका धैर्य अब टूटने ही वाला था—संभवतः उसमें प्रयास करने का साहस शेष न रहा। किंकर्त्तव्य विमूढ़ावस्था में वह सिर थाम कर बैठ गया। अब वह उन्मुक्त होना चाहता था जो!

बेचारे मानव को यह क्या मालूम कि जिस पथ पर अबतक चक्कर काट रहा था वह अनन्त चक्करोंवाला पथ था जिसका निकास कहीं नहीं। घूमकर फिर अपने स्थान पर पहुँच जाना ही इस पथ का धर्म है।

हृदय का स्पन्दन पथिक को पुनः आगे बढ़ने को कह रहा था। कुछ ठीक नहीं कर पा रहा था वह कि इतने में ही कुछ अन्य आकृतियाँ भी उस अँधियारी की कालिमा में हिलती-डुलती-सी प्रतीत हुईं। धीरे-धीरे वे सम्मुख आईं जिनकी चेष्टाओं से लगता था कि वे अब बिल्कुल ही प्राणहीन हो गये हैं, शक्ति का ह्रास हो चुका है, शरीर की पूर्ण दुर्दशा हो चुकी है, आँखें कुछ पहचानतीं नहीं। थकान—युगों की यात्रा की थकान इतनी अधिक थी कि मनःशक्ति का इतना ह्रास हो चुका था कि स्वयं वे निज को ही भूल गये थे।

तनिक जागरूक होने से ही मानव ने अपना कर्त्तव्य निश्चित किया। पर वह अन्य मार्ग कहाँ था जिसपर उसे चलना है? खोई हुई मनःशक्ति लौट आई और कुछ ध्यान से देखते ही उसे वहीं निकट ही एक अन्य मार्ग का चिह्न दिखाई पड़ा। वह एकदम उस ओर दौड़ पड़ा पर कुछ ही क्षणों पश्चात् लौट आया—मार्ग अवरुद्ध था। किन्तु जब तक वह कुछ और भटकता, एक और भी मार्ग का क्षीण आभास-सा लगा और वह चल पड़ा उस ओर नव उद्बोधन के वशीभूत होकर।

थोड़ी ही दूर जाने पर उसके विचार डगमगाने लगे। पथ का अन्धकार पूर्व से भी भयंकर और प्रलयकारी, हाथ को हाथ न सूझते थे। कंकड़-पत्थरों से परिपूर्ण यह मार्ग तो अत्यन्त ही दुरूह था। वृक्षों की टहनियाँ एक दूसरे से बिल्कुल उलझी पड़ी थीं और कहीं-कहीं तो मार्ग एकदम ही अवरुद्ध था। न पृथ्वी का पता और न ही आकाश की स्थिति का। केवल निज चक्षुओं के सीमित प्रकाश में जितना वह देख पाता।

कुछ काल व्यतीत हो गया। सुगन्धि का तनिक आभास सा लगा। उसने समझा कि पास ही पुष्प होंगे। तोड़ने को हाथ बढ़ाया ही था कि एक चीख के साथ उसने अपने हाथों को खींच लिया—गया था फूलों को लेने और मिला काँटों का उपहार, मानव की आशा और आंकाक्षाओं का अंचल काँटों से बिंध गये। पुनः मादकता का खिंचाव और उत्कण्ठा का आवेग परन्तु काँटों का जो भय था। हाथ बढ़े पुष्पचयन के हेतु और पुनः वही हाल!

दोनों पग मार्ग की कठोरता एवं विषमताओं के निष्ठुर भार से आहत आगे बढ़ने से हिचकने लगे। शारीरिक कष्टों से मर्माहत हो मानव विचलित हो रहा था, अब क्योंकि इस मार्ग में जलस्रोत नहीं, समतल भूमि नहीं। तमाम काँटे ही काँटे। आकाश नहीं, आलोक नहीं। भीषण परिस्थितियों ने मानव शरीर रूपी ढाल को छिन्न-भिन्न कर दिया था, उसकी सहिष्णुता और साहस की दीवार अब ढहनेवाली थी—विषमताओं के धक्के खाकर जर्जरित नींव अब डगमगा उठी।

मानव के उद्विग्न हृदय को यह भी अनुमान न हो सका कि उसे अभी अधिक विलम्ब नहीं हुआ था अपनी यात्रारम्भ किये हुए और न ही कोई मोड़ ही घूमना पड़ा उसे। शारीरिक एवं मानसिक कष्ट ने उसे मर्माहत कर दिया था और वह अब अपने को इतना अशक्त अनुभव करने लगा कि किसी ऐसी शक्ति का आह्वान हुआ जिसे वह स्वयं ही न जान पाया। उसे ऐसा लगा कि बिना शक्ति के वह कुछ नहीं कर सकेगा। परन्तु उस शक्ति की उपस्थिति का ज्ञान मानव को हुआ ही कैसे?

शीतल, मन्द सुगन्ध वायु के एक ही झोंके ने मानव की तन्द्रा भंग कर दी। आँखें खोली उसने और उसके विस्मय का ठिकाना न रहा। वह उठ पड़ा और चकाचौंध हो चहुँ ओर दृष्टिपात करने लगा। कहाँ गया वह अंधकार, कहाँ विलीन हो गया वह पथरीला पथ और कहाँ गई वह व्यूहमयी डालियाँ।

प्रातः सूर्य की अरुण आभा ने आकाश भर में अबीर खिड़वा दिया। कुछ ही क्षणों पश्चात् स्वयं बालरवि उस बिखरी लाली के मध्य से हँसते हुए प्रकट हुए। मानव-पथिक की युग-युग की थकान, तन्द्रा और श्रान्ति क्षणों में ही दूर हो गयी। उसके ज्ञान का प्रकाश अब उसके समक्ष प्राची में उदित जगमग करते हुए गोले के रूप में चमक रहा था। अनादिकाल की कठिन एवं दुर्गम यात्रा के दूसरे छोर पर पहुँचकर मानव के हृदय का रक्त उमड़ पड़ा जिसकी रक्तिम लालिमा ने सूर्य की रश्मियाँ, प्रतिबिम्बित और आलोड़ित होकर, विशाल आकाश के असीम वृत्त को परिपूर्ण कर दिया।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का गान 'अत्तदीपो भव' का सुर पाकर समस्त विश्व में झंकरित हो उठा।

आषाढ़ी पूर्णिमा

भिक्षु प्रज्ञानन्द

इस जगत् में मनुष्य जीवन दुर्लभ है। मनुष्य-जीवन पाकर मानुषिक दोषों से मुक्त और अंग-प्रत्यंगों से सम्यक् रूप से युक्त शरीर पाना दुर्लभ है। बुद्धों के धर्म श्रवण का अवसर प्राप्त होना दुर्लभ है। सतत कल्याण चाहने वाले मित्र का लाभ भी दुर्लभ है। इसी प्रकार (बौद्ध साहित्य के अनुसार) इस जगत् में बुद्धों का उत्पन्न होना निश्चय ही और दुर्लभ है। उनका इस पृथ्वी पर आना महासमुद्र के जल से कच्छप का सिर उठाकर प्रकाश का दर्शन करना और फिर अनन्तकाल के लिये जलधि के अन्तराल में समा जाने के सदृश है।

धन्य हैं वे जिन्होंने साक्षात बुद्ध का दर्शन किया, और भगवान् के मुख से धर्म श्रवण कर विभिन्न दिव्य लोकों को प्राप्त किया। अब वह अहोभाग्य, बीसवीं शती के हम लोगों के लिये कहाँ लभ्य है! क्या अब हम एक जीवित बुद्ध के दर्शन का फल प्राप्त कर सकते हैं? हाँ, अवश्य प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि बौद्ध आचार्यगण दृढ़ता पूर्वक कहते हैं—

तिष्ठतम् पूजयेद् यस तु यश्च चापि परिनिवृतम्।
समचित्त प्रसादेन नास्ति पुण्यविशेषता॥

चित्त की पवित्रता के कारण जीवित बुद्ध के प्रति की गई पूजा और परिनिर्वाण प्राप्त बुद्ध के प्रति की गई पूजा के पुण्य में निस्संदेह कोई अन्तर नहीं है।

वर्ष में बारह पूर्णिमाएँ अपने क्रम से सदा से निरन्तर आती हैं और अपनी छाप छोड़कर चली जाती हैं। इसी प्रकार वैशाख पूर्णिमा के बाद यह आषाढ़ की पूर्णिमा को ब्राह्मण धर्मवादियों की भाँति ही बौद्ध जगत् में चार विशिष्ट कारणों से महत्त्वपूर्ण और अति पवित्र माना जाता है। आज वही ढाई हजार वर्ष पूर्व की पूर्णिमा है जिस दिन कि संसार की श्रेष्ठतम ज्योति भगवान् बुद्ध ने तृष्णान्धकार में डूबे मानव के कल्याण के लिये सारनाथ की सुरम्य भूमि में बैठकर पंचवर्गीय भिक्षुओं के सम्मुख कार्यकारण पर आधारित धर्मचक्र चलाकर लगातार तीन मास के परिश्रम के पश्चात् आपने शिष्यों को यह आदेश दिया है कि "हे भिक्षुओ बहुजन हित-सुख और लोक पर अनुकम्पा और सुख के लिये विचरण करो"।

इसी पूर्णिमा को बोधिसत्व ने महामाया के गर्भ में प्रवेश किया था, इसी प्रकार एक दिन बोधिसत्व ने महाभिनिष्क्रमण किया था और वैसे ही भिक्षुओं को तीन मास का वर्षा के लिए व्रत रखने का विधान किया था। इन्हीं चार कारणों से आषाढ़ी पूर्णिमा का बौद्ध जगत् में अति आदर है। जिन भगवान् बुद्ध ने अपनी अमृतमयी वाणी से सबको समान रूप से बिना भेद-भाव के उपदेशामृत को पान कराया, उनके प्रति श्रद्धा स्वरूप इस पूर्णिमोत्सव को हम सब लोग श्रद्धावनत होकर समारोह करें।

आज भगवान् बुद्ध अपने भौतिक शरीर से इस संसार में हम लोगों के बीच नहीं हैं। किन्तु वे धर्म और विनय के रूप में हमारे सम्मुख आज भी उपस्थित हैं। क्योंकि उन्होंने कहा था, "आनन्द! शायद तुमको ऐसा

हो कि अतीत-शास्ता (= चले गये गुरु) का यह वचन (उपदेश) है। अब हमारा शास्ता नहीं है। आनन्द! इसे ऐसा मत समझना। मैंने जो धर्म और विनय उपदेश किये हैं, प्रज्ञप्त किये हैं, मेरे बाद वही तुम्हारा शास्ता है।" अतः यदि हमें सचमुच भगवान् बुद्ध का सच्चे रूप में आदर करना है तो उनके प्रदर्शित धर्म और विनय का सही अनुसरण करें। क्योंकि धर्म से विनय और विनय से वास्तविक धर्म की प्राप्ति होती है। धर्म ही विनय का पूरक है।

संसार में सभी प्राणियों की प्रकृति भिन्न-भिन्न हुआ करती है। मनुष्यों की प्रकृति में अन्तर होता है। इसी का ध्यान रख कर विभिन्न विचारों के पुरुषों को भगवान् ने धर्म और विनय का बहुत प्रकार और अनेक बार उपदेश किया। और कभी-कभी तो केवल एक ही विषय पर बहुत जोर दिया जो हमारे जीवन में प्रतिदिन घटा करते हैं।

यद्यपि पञ्चशील निश्चय रूप से विनय का सार है। किन्तु व्यवहार में देखा गया है कि अतिपरिचय से उपेक्षा की भावना उत्पन्न होती है। यही कारण है कि हम सब बोलते और लिखते समय उसे उतना महत्त्व नहीं देते जितना वस्तुतः देना चाहिये। हम बिना दृढ़तापूर्व शील का पालन किये, लौकिक या पारलौकिक जीवन की गति में प्रगति या उन्नति नहीं ला सकते। क्योंकि शील ही जीवन की प्रगति की नींव या शिलान्यास है। क्या शील का अर्थ आत्म-त्याग करना है? नहीं। शील पाँच बातों की प्रतिज्ञा कराता है। उसका जीवन में प्रयोग हो, जिससे मानसिक विकास में वृद्धि हो। उदाहरण स्वरूप किसी को गृह-निर्माण करना है। उसके लिये उन्हें बहुत प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। और इस प्रकार प्रत्येक की पूर्ति के बिना सफलता, गृहनिर्माण कार्य, सम्भव नहीं है। लेकिन शील के पालन के लिये हमें बाहरी किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती। और न ही किसी प्रकार का बाहरी परिश्रम ही करना पड़ता है।

दूरङ्गमं एकचरं असरीरं गुहासयं।
ये चित्तं सञ्जमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबन्धना॥

दूरगामी अकेला विचरनेवाले, निराकार, गुहाशायी इस चित्त का जो संयम करेंगे, वही मार के बन्धन से मुक्त होंगे। और भी कहा गया है कि जितनी भलाई न माता-पिता कर सकते हैं, न दूसरे भाई बन्धु; उससे अधिक उसकी भलाई ठीक मार्ग पर लगा हुआ अर्थात् 'मार-विजयी' चित्त करता है।

मनुष्य की इच्छाओं की कोई सीमा नहीं है। मनुष्य अपने जीवन की इच्छापूर्ति के लिये नाना प्रकार के सु और कु कृत्य करता है। मनुष्य अपनी इच्छा की पूर्ति को सुख और अपूर्ति को दुःख समझता है। पर क्या मनुष्य अपने थोड़े से जीवन में अपनी सारी इच्छाओं की पूर्ति कर लेता है। उत्तर है, नहीं प्राप्त कर पाता है। अनुभव से सिद्ध है कि ज्यों-ज्यों इच्छा बढ़ती जाती है त्यों-त्यों सुख की अपेक्षा दुःख ही बढ़ता जाता है। इसी विषय-ज्वाला के अग्नि से शान्ति पाने के लिये भगवान् ने मार-विजय करके अर्थात् तृष्णा पर नियंत्रण पाकर सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त किया। बिना तृष्णा या इच्छा पर नियंत्रण पाये आत्म-जागृति संदेहात्मक है। जब तक हम तृष्णा का भलीभाँति उच्छेद नहीं कर पाते तब तक जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त नहीं हो सकते। इसी तृष्णाक्षय में निर्वाण की प्राप्ति है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि इच्छा उत्पन्न न हो तो दुःख या श्रेष्ठपद की अनुभूति न हो। पर क्या यह सम्भव है मनुष्य बिना इच्छा किये रह जाय! कदापि नहीं। तब तृष्णा के क्षय की बात कैसे? कुछ विशेष प्रकार की इच्छाओं से तात्पर्य है, 'ऐसा समझा जाय? ऐसी धारणा की पुष्टि में भी कुछ साहित्य मिलेंगे'। यह हम नहीं कह सकते कि बुद्ध ने कभी कहा हो कि कुछ विशिष्ट इच्छाओं से दूर रहना चाहिये। तब यहाँ इच्छा से क्या अभिप्राय है? इस पर प्रकाश डालना आवश्यक है। 'काम' से दूर रहना चाहिये। अब यहाँ काम का अर्थ इच्छा ही है, इसमें कोई संदेह नहीं। पर 'राग' या 'तृष्णा' जैसे शब्दों के संयोग में आने पर अर्थ होता है--महान् तृष्णा, लगाव, बन्धन। इसका यह तात्पर्य नहीं कि जो व्यक्ति लगावों से दूर है, वह किसी प्रकार की इच्छा ही नहीं करेगा। करेगा और हमेशा करता रहेगा। किन्तु उन दो महान् व्यक्तियों में एक

महान् अन्तर रहेगा। एक वह जो 'सराग' या राग-युक्त है और दूसरा वह जो 'वीतराग' या रागों से मुक्त है। इस विभेद का मिलिन्द प्रश्न में सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है--

राजा (मिलिन्द) बोला--भन्ते! रागवाले और बिना राग वाले चित्तों में क्या भेद है?

(भदन्त नागसेन)—महाराज! उनमें एक तो तृष्णा में डूबा है और दूसरा नहीं।

भन्ते! इसके क्या माने हैं?

महाराज! उनमें एक को चाह लगी है और दूसरे को नहीं।

भन्ते! मैं तो देखता हूँ कि रागवाले और बिना रागवाले दोनों एक ही तरह खाने की अच्छी चीजों को चाहते हैं कोई बुरी को नहीं!

महाराज! रागवाले पुरुष भोजन के स्वाद को लेते हैं और उसमें राग भी करते हैं; बिना रागवाले पुरुष भोजन के स्वाद को लेते हैं सही किन्तु उसमें राग नहीं करते।"

क्या हमें अपने जीवन में केवल अकेले अपने ही बल पर संघर्ष करते रहना पड़ेगा? नहीं। भगवान् की पुण्य स्मृति हमारे सामने है और स्मृति ही सहायक है। त्रिविध रूप से प्रणीत इस आषाढ़ी पूर्णिमा के अवसर पर किये गये भगवान् के प्रशंसनीय कार्यों तथा हमारे पूर्वगामी उनके अनुचरों की सफलता का ध्यान करके हमें भी चाहिये कि आगे आनेवाली इस शुभ तिथि को स्वयं वैसा कार्य करने का दृढ़ अधिष्ठान करें और अपने जीवन को भी उन्हीं के जैसा बनावें। क्योंकि भगवान का अन्तिम वाक्य यही है, "अप्पमादेन सम्पादेथ" अर्थात् 'प्रमाद रहित होकर अपना कार्य करो और सतत प्रयत्न द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त करो।

प्राचीन बौद्धनगर अहिच्छत्रा

श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, एम० ए०

उत्तर प्रदेश भारतीय संस्कृति के प्रारम्भिक विकास का क्षेत्र रहा है। पंचनद देश से आगे चलने के बाद आर्यों ने हस्तिनापुर, अहिच्छत्रा, कम्पिल, मथुरा, श्रावस्ती, अयोध्या, कौशाम्बी आदि अनेक स्थानों को केन्द्र बनाया। ये केन्द्र धीरे-धीरे बड़े नगरों का रूप ग्रहण करते गये, जिनमें राजनीति, धर्म, दर्शन, कला और साहित्य का विकास हुआ। इन नगरों में भारतीय इतिहास की कितनी ही गाथायें संजोयी हुई हैं। इन प्राचीन स्थानों का हाल जानना हमारे लिये जरूरी है। सबसे पहले हम यहाँ अहिच्छत्रा का परिचय देते हैं।

अहिच्छत्रा नगर के अवशेष वर्तमान बरेली जिले में रामनगर नामक गाँव के समीप टीलों के रूप में बिखरे पड़े हैं। यहाँ पहुँचने के लिये पहले बरेली से आँवला नामक रेलवे स्टेशन जाते हैं। आँवला से मोटर या ताँगे द्वारा लगभग १० मील उत्तर की ओर चलकर पहुँचते हैं। इस पुरानी नगरी के ढूह कई वर्ग मील के विस्तार में फैले हैं। रामनगर से लगभग डेढ़ मील आगे पुराने किले के अवशेष हैं, जो आजकल 'आदिकोट' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस कोट के विषय में अनुश्रुति है कि उसे राजा आदि ने बनवाया। कहते हैं कि यह राजा अहीर था। एक दिन वह किले की भूमि पर सोया हुआ था और उसके ऊपर एक नाग ने छाया कर दी थी। पाण्डवों के गुरु द्रोणाचार्य ने उसे इस प्रकार सोते देखकर भविष्य-वाणी की कि वह किसी दिन उस प्रदेश का राजा बनेगा। कहते हैं यह भविष्यवाणी सच निकली। इस कोट का घेरा लगभग साढ़े तीन मील है। कोट के चारों तरफ एक चौड़ी खाई थी, जिसमें पानी भरा रहता था। यह खाई अब भी दिखाई पड़ती है। इस कोट के अलावा अनेक टीले आस-पास फैले हुये हैं जहाँ पुराने समय में स्तूप, मंदिर तथा अन्य इमारतें बनी थीं। यह बात बड़े महत्व की है कि यहाँ जैन, बौद्ध और हिन्दू इन तीनों धर्मों का विकास हुआ।

वैदिक साहित्य में इस नगर का प्राचीन नाम 'परि-चक्रा' मिलता है। शायद उस समय इस नगर का स्वरूप

चक्राकार या गोलाकार था। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत काल से परिचक्रा के स्थान में इस नगर का नाम 'अहिच्छत्रा' हो गया। जिस जनपद या राज्य की यह राजधानी थी उसका नाम 'पंचाल' और 'अहिच्छत्रा' दोनों मिलते हैं। जनपद का पंचाल नाम पड़ने का कारण यह मालूम पड़ता है कि यहाँ के एक राजा भृम्यश्व (जो अजानीढ़ की छठी पीढ़ी में थे) के पाँच लड़के थे। इन पाँचों में इस राज्य को बाँटा गया। इसी कारण राज्य की 'पंचाल' संज्ञा हुई। इनमें से सबसे बड़े लड़के मुगल के परनाती दिवोदास के समय इस राज्य की बड़ी उन्नति हुई। विद्वानों का अनुमान है कि ये वही दिवोदास थे जिनके वंशज सुदास ने दस राजाओं की प्रसिद्ध लड़ाई में भाग लिया और पौरव वंशी राजा संवरण को उसके सहायकों सहित परास्त कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया।

महाभारत के युद्ध के पहले पंचाल का राजा उग्रायुध था। इसे शांतनु के पुत्र भीष्म ने परास्त कर पृषत नामक राजा को गद्दी पर बैठाया। पृषत की मृत्यु के बाद द्रुपद पंचाल के राजा हुए। द्रुपद ने अपने सहपाठी द्रोणाचार्य का अपमान किया। इसका बदला द्रोण ने अपने शिष्यों की सहायता से लिया और द्रुपद के पास केवल दक्षिण का मार्ग रहने दिया। उत्तर वाले मार्ग की राजधानी अहिच्छत्रा रही और दक्षिण वाले की कांपिल्य, जिसे अब 'कंपिल' कहते हैं।

दक्षिण पंचाल में द्रुपद के बाद अनेक शासक हुए। इनमें से एक ब्रह्मदत्त भी थे, जिनकी पुराणों में बड़ी प्रशंसा की गई है। पुराणों के अनुसार इस राजा ने ऋग्वेद और अथर्ववेद का क्रमपाठ निश्चित किया और उसके मंत्री कंडरीक ने सामवेद का। ब्रह्मदत्त का प्रपौत्र जनमेजय दुर्बुद्धि हुआ। यह इस वंश का अन्तिम शासक था और बड़ा अत्याचारी था। इसे द्विमीढ़ उग्रायुध ने मार डाला और तब से इस वंश का अन्त हो गया।

पुराणों में भारत युद्ध से लेकर नंदवंशी महापद्मनंद तक २७ पंचाल राजाओं के होने का उल्लेख मिलता है, पर इनके नामों का पता नहीं चलता। नन्दों के पहले महाजनपद काल में भारत के मुख्य सोलह जनपदों में पंचाल का नाम भी आता है जिसकी राजधानी अहिच्छत्रा मिलती है। भगवान् बुद्ध के बाद लगभग एक शताब्दी तक पंचाल एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में रहा। चौथी शताब्दी ईसवी पूर्व में महापद्मनन्द ने उसे अपने साम्राज्य में मिलाया। नन्दों के बाद पंचाल मौर्य और शुंग शासन के अन्तर्गत रहा। शुंगकालीन जिन शासकों के सिक्के इस प्रदेश से प्राप्त हुए हैं उनके नाम अग्निमित्र, भानुमित्र, भद्रघोष, जेठमित्र, भूमिमित्र आदि थे। ईसवी सन् के आरम्भ में उधर पंचाल का राजा आषाढ़सेन था, जिसके समय के दो लेख इलाहाबाद जिले में कौशाम्बी के पास पभोसा में मिले हैं। एक लेख में आषाढ़सेन को राजा बृहस्पतिमित्र का मामा लिखा है।

मित्रवंशी शासकों के बाद अच्युत नाम के राजा का पता चलता है। इसके सिक्के अहिच्छत्रा तथा रुहेलखण्ड के अन्य स्थानों से बहुत मिले हैं। यही वह राजा था जिसे गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने परास्त करके पंचाल राज्य को जीत लिया और तब से पंचाल गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया। ईसवी सातवीं शताब्दी में जब चीनी यात्री हुएनसांग अहिच्छत्रा आया तब उसने उसका इस प्रकार वर्णन किया है—

"ओही चीटालो प्रदेश ३००० ली (लगभग ६०० वर्गमील) के घेरे में है और राजधानी का क्षेत्रफल १७ या १८ ली (लगभग ३ वर्गमील) है। पहाड़ी चट्टान के किनारे होने के कारण यह प्रान्त प्रकृतितः सुरक्षित है। यहाँ पर गेहूँ उत्पन्न होता है तथा जंगल और नदियाँ बहुत हैं। जलवायु उत्तम तथा मनुष्य सत्यनिष्ठ हैं। धर्म और विद्याभ्यास से लोगों को बहुत प्रेम है। सब लोग चतुर तथा विज्ञ हैं। कोई दस संघाराम और १००० भिक्षु सम्मतीय निकाय के हीनयान सम्प्रदायी हैं। ९ देवमंदिर हैं, जिनमें पशुपात सम्प्रदायी ३०० साधु रहते हैं। ये लोग ईश्वर के निमित्त बलि प्रदान किया करते हैं। नगर के बाहर एक नाग झील है, जिसके किनारे एक स्तूप अशोक राजा का बनवाया हुआ है। यहाँ पर तथागत भगवान् ने नाग राजा को सात दिन तक धर्मोपदेश दिया था। इसके निकट ही चार स्तूप और हैं, जहाँ पर गत बुद्ध बैठते थे और घूमा-फिरा करते थे।"

अहिच्छत्रा में भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा हाल में जो खुदाई की गई, उसमें पत्थर और मिट्टी की मूर्तियाँ तथा सिक्कों के रूप में मूल्यवान ऐतिहासिक और कलात्मक सामग्री प्राप्त हुई है। गुप्तकालीन कुछ मृण्मूर्तियाँ तो अत्यन्त सुन्दर हैं। इनमें पार्वती का आकर्षक केशविन्यास युक्त मस्तक, शिव का सिर, किन्नर-मिथुन, तथा किरातार्जुनीय मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। शुंग एवं कुषाण काल की कुछ स्त्री-पुरुषों, तथा देवताओं की मूर्तियाँ भी कला की मूल्यवान कृतियाँ हैं। इस खुदाई के द्वारा ईसवी पूर्व ३०० से भी पहले से लेकर ई० ११०० तक का इतिहास बहुत-कुछ प्रकाश में आ गया है। आदि कोट तथा अन्य टीलों की खुदाई से अभी बहुत महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

प्राचीन नगरी के भग्नावशेष कई मीलों में दबे पड़े हैं। उनका जीर्णोद्धार इस विस्तृत नगरी तथा पंचाल देश की इतिहास शृङ्खला को जोड़ने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीन जैन एवं वैदिक साहित्य में अहिच्छत्रा के सम्बन्ध में जो अनेक अनुश्रुतियाँ मिलती हैं उनकी भी पूरी छान-बीन अपेक्षित है।

हाल ही में मुझे रामनगर में एक अभिलिखित यक्ष प्रतिमा प्राप्त हुई, जो वहाँ के एक खेत से मिली बताई गई। मूर्ति को देखने पर पता लगता है कि बहुत समय तक उससे मसाला बँटने की सिलवट का काम लिया जाता रहा। मूर्ति लाल पत्थर की है; इसपर एक बड़े तोंदवाला बौना यक्ष बना है। वह दोनों हाथों से अपना मुँह खोल कर दाँत दिखा रहा है। उसके गले पर भारी भरकम माला दर्शनीय है, मूर्ति के अगल-बगल मकर मुख तथा बेलें सुन्दरता से उत्कीर्ण हैं। यक्ष के सिर के ऊपर ई० दूसरी शती के प्रारम्भ का एक लेख खुदा है। यह लेख ब्राह्मी लिपि तथा मिश्रित संस्कृत भाषा में है और इस प्रकार है—

'भिक्षुस्य धर्मघोषस्य फरगुल
विहारा अहिच्छत्राया।'

(अर्थात् अहिच्छत्रा के फरगुल विहार में धर्मघोष नामक भिक्षु का दान।)

यह लेख कई दृष्टि से महत्व का है। उपलब्ध शिलालेखों में यह सबसे प्राचीन है, जिस पर 'अहिच्छत्रा' रूप मिलता है। 'फरगुल' विहार नाम भी उल्लेखनीय है। यह उस मुख्य बौद्धविहार का नाम रहा होगा जो प्रारम्भिक कुषाण काल में अहिच्छत्रा में विद्यमान था। 'फरगुल' नाम विदेशी-सा लगता है—जैसे मणिगुल, मिहिरगुल आदि नाम। यह मूर्ति इस समय लखनऊ के प्रादेशिक संग्रहालय में सुरक्षित है।

जैसी करनी वैसी भरनी

भिक्षुओ! पूर्वकाल में कुछ शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषि समुद्र-तट पर पर्णकुटी बनाकर रहते थे। भिक्षुओ! उस समय देवासुर-संग्राम छिड़ा हुआ था। भिक्षुओ! तब उन शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषियों के मन में यह हुआ—देव धार्मिक हैं, असुर अधार्मिक हैं। असुरों से हम लोगों को भी भय हो सकता है। तो हम लोग असुरेन्द्र सम्बर के पास चलकर अभयवर माँग लें।

भिक्षुओ! तब वे ऋषि जैसे कोई बलवान् पुरुष समेटी बाँह को पसार दे और पसारी बाँह को समेट ले वैसे समुद्र के तटपर उन पर्णकुटिओं में अन्तर्धान हो असुरेन्द्र सम्बर के सामने प्रकट हुए। भिक्षुओ! तब उन ऋषियों ने असुरेन्द्र सम्बर को गाथा में कहा—

ऋषि लोग सम्बर के पास आए हैं,
अभय-दक्षिणा की याचना करते हैं,
जैसी इच्छा वैसा दो, अभय या भय॥

सम्बर—

ऋषियों को अभय नहीं है,
जिन दुष्टों की सेवा शक्र किया करता है,
अभय वर माँगनेवाले आप लोगों को मैं भय ही देता हूँ॥

ऋषि—

अभय वर माँगने वाले हमको भय ही दे रहे हो,
तुम्हारे इस दिये को हम स्वीकार करते हैं,
तुम्हारा भय कभी न मिटे॥
जैसा बीज रोपता है, वैसा ही फल पाता है,
पुण्य करनेवालों का कल्याण और पाप करनेवालों का अकल्याण होता है,
जैसा बीज बो रहे हो, फल भी वैसा ही पाओगे॥

भिक्षुओ! तब वे शीलवन्त और सुधार्मिक ऋषि असुरेन्द्र सम्बर को शाप दे, अन्तर्धान हो समुद्र के तट पर पर्णकुटियों में प्रकट हुए। भिक्षुओ! उन ऋषियों के शाप से असुरेन्द्र सम्बर रात में तीन बार चौंक-चौंक कर उठता है।

—संयुत्त निकाय ११.१.१०

बौद्ध-जगत्

धर्मचक्र प्रवर्त्तन दिवस राष्ट्रीय पर्व घोषित हो

२५ जुलाई, शनिवार को सायंकाल ४ बजे सारनाथ के मूलगन्ध कुटी विहार में श्री जगदीश प्रसाद सिंह के सभापतित्व में धर्मचक्र प्रवर्त्तन दिवस मनाया गया। महाबोधि सभा के मन्त्री भिक्षु संघरत्न के स्वागत-भाषण के पश्चात् मंगलाचरण एवं भिक्षुओं द्वारा धर्मचक्र प्रवर्त्तन-सूत्र का पाठ हुआ। तत्पश्चात् त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित, श्री भास्करनाथ मिश्र, प्रोफेसर जगन्नाथ उपाध्याय और श्री अनन्त शास्त्री फड़के के भाषण हुए।

भिक्षु धर्मरक्षित ने कहा कि इसी दिन तथागत ने सारनाथ में सर्वप्रथम करुणा, मैत्री, मुदिता एवं अहिंसा का निर्मल तथा पवित्र स्रोत बहाया था जो विश्व के कोने-कोने में बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय प्रवाहमान हुआ और आज भी लंका, बर्मा, स्याम, चीन आदि समीपवर्ती देशों में व्याप्त है। यह पवित्र पर्व इन देशों में राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाया जा रहा है। हमारी सरकार ने धर्मचक्र के प्रतीक को राष्ट्रीय पताके में स्थान देकर धर्मचक्र का ही महत्त्व नहीं बढ़ाया है, प्रत्युत समीपवर्ती देशों के लिए मैत्री का एक अनुपम सूत्र निर्मित किया है। भारत सरकार को चाहिए कि इस दिवस को राष्ट्रीय पर्व का दिवस घोषित करे, ताकि हमारी प्राचीन संस्कृति की अमूल्य मणि पुनः चमक उठे और सभी लोग धर्मचक्र एवं धर्मचक्र प्रवर्त्तन दिवस के महत्त्व को समझ सकें।

श्री भास्करनाथ ने भगवान् बुद्ध की जीवनी पर प्रकाश डालते हुए सारनाथ के ऐतिहासिक महत्त्व को बतलाया एवं धर्मचक्र मुद्रा की व्याख्या की।

श्री जगन्नाथ उपाध्याय ने अपने ओजस्वी भाषण में कहा कि आज के संसार को बुद्ध की आवश्यकता है। हमें संकीर्ण मनोवृत्ति एवं साम्प्रदायिक भावना से निहित 'धर्म' नहीं चाहिए। हमें केवल व्यक्तित्व-रहित ज्ञान-स्वरूप बुद्ध की आवश्यकता है। समाज की सभी समस्यायें बुद्ध के अवलम्ब से ही सुलझ सकेंगी।

श्री अनन्त शास्त्री फड़के ने भाषण देते हुए कहा कि भगवान् बुद्ध विष्णु के अवतार थे। ब्राह्मणों ने सदा से ही उन्हें भगवान् का अवतार माना है और अब भी मानते तथा पूजते हैं। लोग कहते हैं कि बौद्धधर्म भारत से चला गया, वह इस समय बाह्य देशों में ही है, किन्तु यह सत्य नहीं है। भगवान् बुद्ध हमारे हृदय में भगवान् के अवतार के रूप में सदा विराजमान हैं। बौद्धधर्म के सुवास से आज भी सारा भारत सुवासित है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह फिर बौद्धजनों से परिपूर्ण होगा। श्री फड़के जी ने अष्टादश पुराणों में वर्णित भगवान् बुद्ध सम्बन्धी श्लोकों को सुनाकर समन्वयात्मक भाषण किया। श्रोतागण श्री फड़के जी के भाषण से विशेष प्रभावित हुए।

श्री जगदीशप्रसाद सिंह ने अध्यक्षपद से भाषण देते हुए कहा कि मैं भिक्षु धर्मरक्षित के इस सुझाव का स्वागत करता हूँ कि भारत में धर्मचक्र प्रवर्तन दिवस को राष्ट्रीय पर्व के तौर पर मनाया जाना चाहिए। ऐसे पर्वों के मनाने से सांस्कृतिक चेतना उत्पन्न होती है। हमें अपने अतीत गौरव, इतिहास एवं संस्कृति को जानने की प्रबल प्रेरणा जागृत होती है। हमें ऐसे पर्व पर जीवन के आदर्शों पर मनन करने का अवकाश मिलता है। नित्य प्रति के कार्यों से छुट्टी पाकर कम-से-कम एक दिन तो हम आत्मिक-चिन्तन कर सकते हैं। ऐसा राष्ट्रीय पर्व महाकल्याणकारी होगा। धर्मचक्र प्रवर्त्तन दिवस अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। हमें चाहिए कि इस दिन आध्यात्मिक चिन्तन करें और तथागत को अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करें, जिन्होंने कि सारे विश्व को अपने ज्ञान-प्रभा से आलोकित किया।

बौद्धधर्म सनातन धर्म की रीढ़ है

सभापति ने भाषण देते हुए आगे कहा कि वर्तमान् हिन्दूधर्म भी शंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित है। इसमें सभी भारतीय तत्वों एवं संस्कृतियों का सुन्दर समन्वय है। बौद्धधर्म की इसमें बड़ी ही सुन्दर पुट है। पुराण परम्परागत विचारों के संकलन हैं जिनमें से कुछ बड़े ही प्राचीन हैं। बौद्धधर्म उस सनातन धर्म की रीढ़ है जिसके कारण भारत विश्वगुरु बन सका। बौद्धधर्म की अमिट छाप हमारे दैनिक कार्यों से लेकर साहित्य, कला एवं समाज के प्रत्येक अंग पर पड़ी है। भारतीय संस्कृति गंगा के समान है, उसमें सभी विचारधाराओं को स्थान है। बौद्धधर्म ने उसे अत्यधिक शक्तिशाली बना दिया है।

भिक्षु सद्धातिस्स के धन्यवाद देने के बाद सभा समाप्त हुई। रात्रि में भिक्षुओं ने सूत्रपाठ किया तथा प्रदीप-पूजा हुई। दोपहर में सारनाथवासी सभी भिक्षु-संघ को भोजन-दान दिया गया।

कलकत्ता में धर्मचक्र प्रवर्तन दिवस—२५ जुलाई को कलकत्ता के धर्मराजिक विहार में महाबोधि सभा की ओर से धर्मचक्र प्रवर्तन दिवस मनाया गया। प्रातःकाल विहार के भिक्षुओं ने मन्दिर में पूजा की तथा सूत्रपाठ किया, जिसमें सभी देशों के भिक्षु एवं गृहस्थ सम्मिलित हुए थे।

सायं महाबोधि-भवन में श्री पी० आर० दास गुप्त की अध्यक्षता में सभा हुई। प्रारम्भ में भिक्षु जिनरत्न जी ने पंचशील प्रदान किया। नृत्य भारती के छात्रों ने स्वागत-गान गाया। तत्पश्चात् श्री के० सी० गुप्त ने स्वागत-भाषण किया। तदुपरान्त भिक्षु-शीलभद्र और श्री देवप्रिय वलिसिंह के भाषण हुए। सबने धर्मचक्र-प्रवर्तन दिवस के महत्व पर प्रकाश डाला। अन्त में महाबोधि सभा के प्रधान मंत्री श्री डी० वलिसिंह ने सभी व्याख्यानदाताओं एवं उपस्थित लोगों को धन्यवाद दिया।

सभा के बाद भिक्षुओं ने धर्मचक्र प्रवर्तक सूत्र का पाठ किया और 'शान्ति-वारि' का वितरण किया।

लखनऊ में आषाढ़ी पूर्णिमा—२५ जुलाई १९५३ को लखनऊ के रिसालदार पार्क स्थित बुद्ध विहार में धर्मचक्र प्रवर्तन दिवस मनाया गया।

लखनऊवासी सिंहलदेशीय विद्यार्थियों के विशेष उत्साह से उस दिन मध्याह्न समय भिक्षुओं को पिण्डदान देकर उपस्थित श्रद्धावान उपासकों समेत प्रीति-भोज किया गया। तदुपरान्त "सिंहल शिष्य संगम लखनऊ" के नाम से एक संस्था की स्थापना हुई।

संध्या समय ७ बजे लखनऊ बोधिसत्व विहार के अध्यक्ष भदन्त शान्त रक्षित की अध्यक्षता में आम सभा प्रारम्भ हुई, जिसमें स्थानीय विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ० गुन्थर, यू० पी० सरकार के विशेष कार्याधिकारी श्री जी० सी० लाल, श्री चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु और श्रीमती डॉ० एस० गुन्थर ने दिवस की महत्ता और बौद्ध दर्शन के विषय में सारगर्भित भाषण दिये। सभा में उपस्थित लोगों से सारा सभा-भवन भरा हुआ था। सभान्त में पंचशील ग्रहण एवं परित्राण पाठ हुए।

उज्जैन में धर्मचक्र प्रवर्तन-दिवस—गत २७ जुलाई को आषाढ़ पूर्णिमा के पुण्य पर्व पर चम्बल भारती की ओर से धर्मचक्रप्रवर्तन-दिवस मनाया गया। प्रभात-फेरी और बुद्ध-कीर्तन के बाद सारनाथ के बोधिवृक्ष से लाये हुए बोधि-पत्र की पूजा की गई। शिप्रा-तट स्थित वृद्धाश्रम में श्री नारायण प्रसाद 'भूषण' ने बौद्धधर्म पर प्रकाश डाला।

उस दिन जहाँगीरपुर, नागदा आदि ग्रामों में अहिंसा का प्रचार किया गया। सभी कसाईखाने बन्द रहे। मछलियाँ मारना भी बन्द करा दिया गया।

बुद्धपुरी में धर्मचक्र प्रवर्तन-दिवस—कानपुर के बुद्धपुरी आश्रम में श्री ललता प्रसाद सोनकर एम० एल० सी० की अध्यक्षता में धर्मचक्र प्रवर्तन दिवस मनाया गया। आचार्य मेधार्थी के सारगर्भित संक्षिप्त भाषण के बाद संगीताचार्य रामगोपाल चौहान ने हाथ, पैर, जीभ, कुहनी, पीठ आदि प्रत्येक अंग से गाने के साथ हारमोनियम बजाकर सबको चकित कर दिया। चारों ओर से हर्ष ध्वनि और पुरस्कार वृष्टि होने लगी। अन्त में स्वर्गीय श्यामाप्रसाद मुखर्जी के प्रति हार्दिक सम्मान प्रगट किया गया।

भदन्त बोधानन्द जी की वर्षी—गत ११ मई को लखनऊ के रिसालदार पार्क स्थित बुद्ध विहार में बाबू परमेश्वरी दास इञ्जीनियर के सभापतित्व में स्वर्गीय भदन्त बोधानन्द जी की वर्षी मनाई गई। उक्त अवसर पर श्री शिवदयाल सिंह चौरसिया एडवोकेट, श्री चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु, श्री गंगाचरण लाल (ओ० एस० डी० फार रेलवेज) और श्री छेदीलाल 'साथी' ने स्वर्गीय महा स्थाविर जी की जीवनी पर प्रकाश डाला। सभास्थल श्रद्धालु नर-नारियों से भरा हुआ था। प्रारम्भ में भिक्षु शान्तरक्षित ने पंचशील दिया। रात्रि में प्रदीप जलाये गए।

बस्ती में बुद्ध-जयन्ती—गत २७ मई की संध्या को स्थानीय राजकीय नॉर्मल स्कूल के मैदान में बस्ती के नागरिकों की ओर से श्रीमती दुर्गावती त्रिपाठी द्वारा संयोजित एक गोष्ठी में वैशाख-पूर्णिमा के पुण्य दिवस पर बुद्ध-जयन्ती मनाई गयी। गोष्ठी का कार्य बुद्ध-अर्चना से श्री मुहम्मद मुनव्वर, जिलाधीश, बस्ती की अध्यक्षता में आरम्भ हुआ। इसके उपरान्त सर्व श्री भगवतीप्रसाद मिश्र, राय जयनारायण, शिवहर्ष उपाध्याय एवम् चन्द्र-भाल त्रिपाठी के व्याख्यान तथा श्री ताराशंकर 'नाशाद' द्वारा कविता-पाठ हुआ, जिसमें श्री त्रिपाठी का व्याख्यान और 'नाशाद' जी की कविता विशेष उल्लेखयोग्य है। अध्यक्ष के भाषण के उपरान्त अन्त में श्रीमती त्रिपाठी ने सबको धन्यवाद दिया। सभी वक्ताओं ने बस्ती में सांस्कृतिक जागृति की आवश्यकता पर जोर देते हुये एक ऐसी समिति की आवश्यकता प्रकट की, जो जिले में सांस्कृतिक एवम् नैतिक नवचेतना को जागृत कर सके।

बुद्धपुरी में बुद्ध-जयन्ती—२७ मई को स्थानीय विश्वप्रेमी समाज के तत्वावधान में श्री आचार्य मेधार्थी एम. ए. की अध्यक्षता में महात्मा गाँधी उद्यान, छावनी में बुद्ध-जयन्ती समारोहपूर्वक मनायी गयी, जिसमें सर्व श्री भगवती प्रसाद आई० जी० एस० लेबर यूनियन के कार्यकर्त्ता, टी० डी० ई० एस० के० एच० एन० वर्मा, मरालगुप्त एवं श्यामविहारी लाल ने भगवान् बुद्ध को श्रद्धांजलि अर्पित की। इसके बाद श्री मधुकर मिश्र तथा श्री एम० एल० भटनागर ने भगवान् बुद्ध की जीवनी और उपदेशों पर बोलते हुए कहा कि बुद्ध के संघ में में सच्चा साम्यवाद स्थापित था। बिना शासन के ही सब लोग संघ में अनुशासन से जीवनयापन करते थे। आज जब युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं, हमें उनके चरण-चिन्हों पर चलकर शान्ति के लिए अपना सर्वस्व अर्पित करने को तैयार रहना चाहिए।

तत्पश्चात् बुद्धपुरी स्थित राष्ट्रपाल हायर सेकेन्ड्री स्कूल के विद्यार्थियों द्वारा 'बुद्ध हमको दो यह वरदान !' गाये जाने के बाद श्री आचार्य मेधार्थी जी ने बताया कि भगवान् बुद्ध के जीवन से हमें त्याग की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए तथा जीवन के प्रत्येक अंग में सम्यक् दृष्टि रखनी चाहिए। अन्त में बुद्ध जयन्ती के पुण्य अवसर पर एक प्रस्ताव द्वारा 'अपाहिजघर' की स्थापना में सर-कार और जनता के सहयोग की माँग की गयी। दूसरे प्रस्ताव द्वारा बुद्ध-जयन्ती के अवसर पर रक्षाविभाग में छुट्टी रखने के लिए सरकार की प्रशंसा की गयी तथा आशा की गयी कि अगले वर्ष औद्योगिक कर्मचारियों को को भी सवेतन छुट्टी दी जाया करेगी।

अजमेर में बुद्ध-जयन्ती—वैशाख पूर्णिमा के अव-सर पर गत २७ मई को कोलिय बौद्ध समिति अजमेर की ओर से स्थानीय टाउन हाल में नई दिल्ली स्थित बर्मी दूतावास के प्रधान सेक्रेटरी श्री ऊ पे की अध्यक्षता में बुद्ध-जयन्ती महोत्सव मनाया गया। सर्वप्रथम उपासकों द्वारा त्रिशरण-पंचशील ग्रहण किया गया। तत्पश्चात् श्री नवलसिंह गहलोत ने स्वागत-भाषण किया। श्री राहुल सुमन छावरा ने सन्देश पढ़कर सुनाया तथा माननीय सभापति को अभिनन्दन-पत्र भेंट किया। तदुपरान्त मुख्य मंत्री श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री मोहन कुमार नाथूसिंह तँवर और श्री नवल सिंह गहलोत के भाषण हुए।

मुख्य मंत्री ने भाषण देते हुए कहा कि भगवान् बुद्ध के आदर्श महान थे जिसके अनुसार चलने से विश्व में शान्ति एवं सुख का अनुभव होगा।

श्री तँवर जी ने अपने ओजस्वी एवं मार्मिक भाषण में बौद्धधर्म के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आज विश्व को भगवान् बुद्ध के उपदेश की अत्यधिक आवश्य-कता है। श्री गहलोत जी ने बुद्ध-पूर्णिमा के दिन सार्व-

नये प्रकाशन

पालि-साहित्य का इतिहास—लेखक—'श्रीभरत-सिंह उपाध्याय एम० ए० प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। पृष्ठ संख्या ७३३ मूल्य १०)

हिन्दी-साहित्य में तो मूल पालि के ग्रन्थ तथा उनके अनुवाद ही बहुत अल्प हैं फिर उसमें गवेषणात्मक ग्रंथों के विषय में क्या सोचा जाय। प्रस्तुत ग्रंथ का प्रकाशन हिन्दी-साहित्य के लिये अद्वितीय ग्रन्थ है। जिस विद्वता एवं गवेषणात्मक वृत्ति से इस ग्रंथ का अंकन हुआ है वैसा अब तक प्रकाशित किसी भी ग्रन्थ का नहीं हो सका है। 'पालि-साहित्य के इतिहास' के ग्रन्थ तो अंग्रेजी एवं जर्मन भाषाओं में भी, जहाँ इसका अध्ययन प्रायः एक शताब्दि से हो रहा है बहुत ही अल्प हैं; और जो हैं भी उन्हें विषय में पूर्ण नहीं कहा जा सकता है। श्री भरत-सिंह उपाध्याय एम० ए० रचित पालि साहित्य का इतिहास अनेक दृष्टियों से पूर्ण एवं संवर्धित है। अतः हिन्दी-साहित्य का एक गौरव-ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थ को मोटे तौर पर चार विभागों में बाँटा जा सकता है जिनके आधार पर ग्रन्थ की रूपरेखा तैयार की गई है। प्रथमतः पालि-साहित्य क्या है; दूसरा पिटक साहित्य; तीसरा अनुपिटक साहित्य और चौथा धर्मेतर साहित्य एवं अभिलेख। इन्हीं चार विभागों के आधार पर ग्रन्थ को दस अध्यायों में विभक्त किया गया है। पहला अध्याय है 'पालि-भाषा'। इस अध्याय में 'पालि' शब्दार्थ निर्णय, भारतीय भाषाओं में पालि का स्थान, पालि एवं संस्कृत का पारस्परिक सम्बन्ध, पालि भाषा का आदि स्थान, पालि भाषा के शब्द साधन एवं वाक्य विचार, पालि के ध्वनि समूह का परिचय—आदि वर्णित है। पालि भाषा के विषय में प्रचलित प्रायः सभी विचारों विवादों एवं प्रवादों का इस अध्याय में निर्देश है, साथ ही लेखक ने यथा स्थान अपने मौलिक विचारों का भी प्रतिपादन किया है।

ग्रन्थ का दूसरा अध्याय 'पालि-साहित्य का विस्तार,

जनिक छुट्टी घोषित करने के लिए भारत सरकार को धन्यवाद देते हुए खेद प्रगट किया कि अजमेर के कई हजार कोली राजपूत जो कि कई पिछले वर्षों से इस दिन छुट्टी माँग कर पर्व मनाते आए हैं, इस वर्ष भी उन्हें छुट्टी माँग कर ही यह दिवस मनाना पड़ा है। क्या भारत सरकार इस ओर ध्यान देगी? जिस नगर में हजारों की संख्या में बौद्ध रहें, वहाँ बुद्ध-पूर्णिमा सार्वजनिक अवकाश का दिन न घोषित हो—यह बड़े ही आश्चर्य की बात है!

अन्त में श्री ऊ पे ने अपने भाषण में बुद्ध-शिक्षा के पालन पर जोर दिया और कोलिय बौद्ध-समिति को प्रशंसनीय कार्यों के लिए धन्यवाद दिया।

आरम्भ में एक शानदार जुलूस निकाला गया था। बुद्ध-भजन, कीर्तन आदि का सुन्दर आयोजन था। लाखों की भीड़ के साथ सौराष्ट्र के बौद्ध श्री मोहनजी मानाजी सोलंकी द्वारा प्रदत्त बुद्ध-मूर्ति की शोभा-यात्रा दर्शनीय थी।

सारनाथ में भिक्षुओं का वर्षावास-ग्रहण—२६ जुलाई रविवार को रात्रि में सारनाथ के अन्तर्राष्ट्रीय भिक्षुओं ने विधिवत् वर्षावास ग्रहण किया। वर्षावास ग्रहण करने वालों में महाबोधि सभा के मंत्री भिक्षु संघरत्न, 'धर्मदूत' के सम्पादक भिक्षु धर्मरक्षित, सिंहली भाषा के सुप्रसिद्ध लेखक भिक्षु सद्धातिस्स, कम्बोडिया-संघराज के शिष्य भिक्षु फलाज्ञान, नेवारी भाषा के नवोदित लेखक भिक्षु अश्वघोष तथा लद्दाख के प्रधान लामा कुशोक बकुल के प्रमुख शिष्य भिक्षु सुमति (= लामा लोबजन चोस्पेल) के नाम उल्लेख्य हैं।

भगवान् बुद्ध ने धर्मचक्र प्रवर्तन कर श्रावण प्रतिपदा को पहला वर्षावास सारनाथ में ही किया था, अतः यहाँ वर्षावास करना बहुत ही महत्वपूर्ण समझा जाता है। वर्षावास करने वाले भिक्षु वर्षा के तीन मास एक ही स्थान पर रहते हैं। यदि बाहर जाते हैं तो एक सप्ताह के भीतर ही लौट आना पड़ता है। लंका, बर्मा, स्याम आदि देशों में वर्षावास-ग्रहण का दिन एक महान् पर्व माना जाता है।

वर्गीकरण और काल विभाग से सम्बद्ध है। इस अध्याय में पालि-साहित्य के उद्भव, विकास एवं विस्तार के साथ साथ उसके ग्रन्थों का कालक्रम निश्चित किया गया है। यह अध्याय इतिहास की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है; क्योंकि इसमें पालि-साहित्य के प्रत्येक ग्रन्थ का चाहे वह पिटक-साहित्य के अन्तर्गत हो अथवा अनुपिटक-साहित्य के कालक्रम विवेचनात्मक ढंग से निर्देशित किया गया है। लेखक ने सभी प्रचलित मतों एवं प्राप्य सामग्री का भरपूर उपयोग करके निष्कर्ष निकालने की चेष्टा की है।

अब पालि-साहित्य के ग्रन्थों का विस्तृत विवेचन प्रारम्भ होता है। तीसरा अध्याय है 'सुत्त-पिटक'। यह कहाँ तक 'बुद्ध वचन' है इस ओर संकेत कर देने के पश्चात् सुत्त-पिटक के अन्तर्गत ग्रन्थों के वस्तु-विधान, उनके साहित्यिक ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व का यथा स्थान विस्तृत वर्णन किया गया है। सुत्त-पिटक के अन्तर्गत दीघनिकाय मज्झिम निकाय, संयुत्त निकाय, अंगुत्तर निकाय, खुद्दक निकाय (उसके सभी १५ ग्रन्थ) का क्रमशः विवेचन है।

चौथा अध्याय 'विनय-पिटक' के विषय में है। इस अध्याय में विनय-पिटक का त्रिपिटक में स्थान, विनय के नियम-उपनियम, काल-निर्णय, तथा वस्तु-विधान का संक्षिप्त विवेचन कर देने के उपरान्त विनय-पिटक के अन्तर्गत सभी ग्रन्थों का काल-क्रम से विश्लेषणात्मक अध्ययन है।

अभिधम्म पिटक पाँचवें अध्याय से प्रारम्भ होता है। इसमें अभिधम्म पिटक का रचना-काल, वस्तु-विधान, शैली तथा मूलभूत विचारों के विवेचन के बाद सर्वास्तिवाद के अभिधर्म से तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। तदनन्तर अभिधम्म पिटक के प्रत्येक ग्रन्थों के वस्तु-विधान का संक्षिप्त परिचय कराया गया है। ग्रन्थों का विवेचन इस क्रम से हुआ है:—धम्मसंगिणी, विभंग, धातु कथा, पुग्गल पञ्ञत्ति, कथावत्थु, यमक, पट्ठान।

पिटक साहित्य के अध्ययन के उपरान्त छठवाँ अध्याय अनुपिटक साहित्य से प्रारम्भ होता है। छठवाँ अध्याय है 'पूर्व बुद्धघोष युग' (१०० ई० पू० से ४०० ई० तक)। इस अध्याय में अट्ठकथाचार्य बुद्धघोष (४०० ई०) के पूर्व के अनुपिटक साहित्य की समीक्षा की गई है। इस अध्याय के अन्तर्गत नेत्ति पकरण, पेटकोपदेस, मिलिन्द पञ्हो हैं। प्रत्येक ग्रन्थों के कालक्रम, वस्तु-विधान, शैली, साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व को विश्लेषणात्मक ढंग से व्यक्त किया गया है।

'बुद्धघोष युग' (४०० ई० से ११०० ई० तक) अर्थात् अट्ठकथा-साहित्य-युग का विवेचन सातवें अध्याय में हुआ है। इस अध्याय में अट्ठकथा साहित्य का स्वरूप, उद्भव, विकास, एवं संस्कृत साहित्य की टीकाओं के तुलनात्मक अध्ययन के अतिरिक्त उनके देश-विदेश में प्रसार की भी चर्चा की गई है। तदनन्तर, पालि त्रिपिटक के तीन महान् अट्ठकथाकार बुद्धदत्त, बुद्धघोष और धम्मपाल के जीवन चरित तथा उनकी कृतियों का क्रमशः वर्णन किया गया है। अन्त में महाथेर अनिरुद्ध रचित अभिधम्मत्थसंगहो की चर्चा की गई है। अभिधम्मत्थसंगहो के वस्तु-विधान का भी वर्णन है।

आठवें अध्याय में "बुद्धघोष की परम्परा अथवा टीकाओं का युग" (११०० ई० से वर्तमान तक) से सम्बन्धित है। इस अध्याय में सर्वप्रथम सिंहल के राजा पराक्रमबाहु प्रथम (११५३-११८६ ई०) के शासन का उल्लेख है जिसके समय में अट्ठकथाओं पर टीकायें लिखी गईं। इन टीकाओं के रचयिताओं में सर्व प्रमुख थे स्थविर सारिपुत्र। उनके द्वारा लिखी गई निम्नलिखित टीकायें हैं:—सारत्थ दीपनी, पठम सारत्थ मञ्जूसा, दुतिय सारत्थ मञ्जूसा, ततिय सारत्थ मञ्जूसा, चतुत्थ सारत्थ मञ्जूसा, पठम परमत्थपकासिनी, दुतिय परमत्थपकासिनी, ततिय परमत्थ पकासिनी। उक्त टीकाओं का संक्षिप्त विवरण तथा उनकी शैली की विवेचना की गई है। सारिपुत्र के अन्य शिष्यों (१) संघ रक्खित (२) बुद्ध नाग (३) वाचिस्सर (४) सुमंगल (५) सद्धम्म ज्योतिपाल (६) धम्मकित्ति, (७) बुद्धरक्खित, (८) मेधंकर की रचनाओं का संक्षिप्त विवरण तथा उनके जीवन चरित के विषय में थोड़ा बहुत कहा गया है। उक्त सारिपुत्र के शिष्यों के अतिरिक्त अनेक ऐसी रचनाओं का वर्णन है जो उनके शिष्यत्व में ही सम्पादित हुई थीं। तदनन्तर तेरहवीं शताब्दि से बीसवीं शताब्दि

तक जो अनेक पालि-ग्रंथ सिंहल आदि देशों में रचे गये हैं उनका संक्षिप्त परिचय कराया गया है। इस अध्याय में मुख्यतः अट्ठकथाओं के अतिरिक्त जो अनुपिटक साहित्य उपलब्ध है उसका भी अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है।

नवाँ अध्याय तो वास्तव में आठवें अध्याय ही का पूरक है। इसमें 'वंस साहित्य' के विषय में चर्चा हुई है। वंस शब्द की व्याख्या के उपरान्त दीपवंस, महावंस, चूलवंस, बुद्धघोसुप्पत्ति, सद्धम्मसंगह, महाबोधि वंस, थूपवंस, अत्तनगलु विहार वंस, दाठा वंस, छकेसधातु वंस, गन्थ वंस, सासन वंस ग्रन्थों का संक्षिप्त विवेचन, उनकी भाषा, वस्तु-विधान, कालक्रम; तथा उनके ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्वों की दृष्टि से किया गया है।

अन्तिम अध्याय में काव्य, व्याकरण, कोश, शास्त्र तथा पालि के अभिलेखों का उल्लेख है। काव्य साहित्य के अन्तर्गत अनागत वंस, तेल कटाह गाथा, जिनालंकार, जिन चरित; मजमधु, सद्धम्मोपायन, पञ्चगतिदीपन, लोकप्पदीपसार, रसवाहिनी, बुद्धालंकार, सहस्सवत्थुप्पकरण, तथा राजाधिराज विलासिनी ग्रन्थों का संक्षिप्त विवेचन है। व्याकरण साहित्य में कच्चान तथा मोग्गलान व्याकरणों की विवेचना के साथ ही उनके सहायक ग्रन्थों का भी वर्णन है। इनके अतिरिक्त अन्य पालि व्याकरण जैसे भिक्षु जगदीश काश्यपजी का हिन्दी में लिखित पालि महाव्याकरण का भी उल्लेख किया गया है। कोश में अभिधाप्पदीपिका अक्खर कोश तथा छन्द शास्त्र में वुत्तोदय आदि का वर्णन है। काव्य शास्त्र में सुबोधालंकार का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। पालि अभिलेखों में पालि-भाषा का क्या स्वरूप है इसका विवेचन तो है ही साथ ही उनकी लिपि, प्राप्ति स्थान तथा वस्तु का भी निर्देश किया गया है। अशोक के शिलालेख, कनिष्ककालीन लेख, बर्मा के मौगन के दो स्वर्णपत्र, तथा वोवोमी पैगोडा के शिलालेख, कल्याणी के शिलालेख, पेगन के १४४२ ई० के शिलालेख का सविस्तार विश्लेषण किया गया है। यह अध्याय पालि के विद्यार्थी के लिये तो उपयोगी है परन्तु विशुद्ध इतिहास के विद्यार्थी के लिये भी कम महत्त्व का नहीं है। बृहत्तर भारत के अध्ययन में भी यह अध्याय सहायक सिद्ध हो सकता है।

ग्रन्थ के अन्त में 'उपसंहार' है। भारतीय वाङ्मय में पालि-साहित्य का क्या स्थान है इसका विवेचन सारांश में बड़े ही विद्वत्तापूर्ण ढंग से किया गया है। अन्ततः नामानुक्रमणिका देकर ग्रन्थ की उपादेयता बढ़ा दी गई है। एक पृष्ठ का शुद्धिपत्र भी दिया गया है। पुस्तक की छपाई आदि सुन्दर है।

प्रस्तुत ग्रन्थ कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह ग्रन्थ स्वतः प्रत्येक दृष्टियों से पूर्ण है। पालि-साहित्य का प्रत्येक कक्ष इसमें निर्देशित है। क्या पिटक क्या अनुपिटक अथवा क्या पालि-साहित्य का छन्द-शास्त्र या अभिलेख सभी का यथा स्थान कालक्रम के अनुसार यथातथ्य विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया गया है। सभी पालि ग्रन्थों का विवेचन उनकी भाषा, शैली, महत्त्व तथा कालक्रम की दृष्टि से किया गया है। अति प्राचीन साहित्य से लेकर आधुनिक पालि-साहित्य की प्रगति का विश्लेषणात्मक अध्ययन इस ग्रन्थ में क्रमानुसार किया गया है। प्रत्येक ग्रन्थ की समीक्षा तो की गई है ही साथ ही ग्रन्थ का सारांश देकर इस ग्रन्थ की प्रौढ़ता और उपादेयता और बढ़ा दी गई है। पालि-साहित्य के किसी भी ग्रन्थ की मूलभूत बातों को जानने के लिये इस ग्रन्थ का पर्यवेक्षण सदैव लाभकारी होगा। इस प्रकार यह ग्रन्थ केवल साहित्यिकों अथवा विद्यार्थियों की ही वस्तु न रहकर साधारण पाठक के लिये भी रुचिकर एवं ज्ञान-वर्धक अवश्य सिद्ध होगा।

दो शब्द, इसकी भाषा की ओर भी संकेत कर देना आवश्यक है। ग्रन्थ की भाषा को जहाँ तक सम्भव हो सका है लेखक ने वैज्ञानिक रखने का प्रयत्न किया है परन्तु इस प्रयास में उसने कहीं भी दुरूहता नहीं आने दी है। यही विशेषता है। ग्रन्थ विद्वतापूर्ण तो है ही साथ ही इतनी श्रद्धा से लिखा गया है कि पाठक स्वयं लेखक को मुक्तकंठ से 'साधुवाद' दिये बिना नहीं रह सकता। हम लेखक की इस मौलिक रचना के निमित्त कितना ही 'साधुवाद' क्यों न दें अल्प ही है।

—प्रो० चन्द्रिका सिंह उपासक एम० ए०

रजिस्ट्री की संख्या ए ७९०

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)

मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

धर्मदूत
महा बोधि सभा सारनाथ
का
मुख पत्र
सितम्बर
१९५३

विषय-सूची

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १८	सारनाथ, सितम्बर	बु० सं० २४९७ ई० सं० १९५३	अङ्क ५

बुद्ध-वचनामृत

'जो जिसे प्रिय है वही उसे अच्छा है'

प्रसेनजित् के साथ पाँच प्रमुख राजाओं के बीच पाँच कामगुणों का भोग करते हुए यह बात चली—काम-भोगों में सबसे बढ़िया कौन है ? उनमें से एक ने कहा—रूप काम-भोगों में सबसे बढ़िया है। दूसरे ने कहा—शब्द काम-भोगों में सबसे बढ़िया है। ऐसे ही तीसरे, चौथे और पाँचवें ने कहा—गन्ध बढ़िया है, रस बढ़िया है, स्पर्श बढ़िया है। वे राजा एक दूसरे को समझा नहीं सके। तब वे परस्पर रायकर भगवान् बुद्ध के पास गये। और पूछा—आप बतावें कि काम-भोगों में सबसे बढ़िया कौन है ?

"महाराज ! मैं कहता हूँ कि पाँच काम-गुणों में जिसको जो अच्छा लगे उसके लिये वही बढ़िया है। महाराज ! जो रूप एक के लिये अत्यन्त प्रिय होता है, वही दूसरे के लिए अत्यन्त अप्रिय होता है। जिस रूपसे एक सन्तुष्ट हो जाता है और उसकी इच्छायें पूरी हो जाती हैं, उस रूप से कहीं बढ़-चढ़कर भी दूसरा रूप उसे नहीं भाता है। वही रूप उसके लिये सर्वोत्तम और अलौकिक होता है।"

"पण्डित लोग उसे दृढ़ बन्धन नहीं कहते, जो लोहा, लकड़ी या रस्सी का होता है। मणि और कुण्डलों में जो आरक्त हो जाना है, स्त्री और पुत्रों के प्रति जो अपेक्षा रहती है, इसी को पण्डितों ने दृढ़ बन्धन कहा है। घसीट कर ले जानेवाला, सूक्ष्म और जिसका खोलना कठिन है, इसे भी काटकर लोग प्रव्रजित हो जाते हैं, अपेक्षा-रहित हो काम-सुख को छोड़।"

—संयुक्त निकाय ३,१,१०

मनोविज्ञान और भगवान् बुद्ध की शिक्षा

प्रो० लालजीराम शुक्ल

मनोविज्ञान की सर्वोत्कृष्ट सेवा यही है कि वह मनुष्य के मस्तिष्क को अनेक प्रकार की मान्यताओं से मुक्त करके स्वतंत्र चिंतन की शक्ति उसे प्रदान करे। संसार के जितने महापुरुष हुए हैं, वे किसी-न-किसी प्रकार के मत का प्रवर्त्तन किये हैं, ये मत उस समय के लोगों के लिये उपयोगी थे, परन्तु कुछ समय के पश्चात् वे किसी प्रकार के 'वादों' के रूप में प्रचलित हो गये। मानव समाज उनकी सत्यता को भूल गया और उनके शब्दों को आप्तवचन मान कर उनके अनुसार चलने लगा। इस प्रकार महापुरुषों की जीवन शिक्षा कालान्तर में विकृत हो जाती है। जब कोई व्यक्ति किसी महापुरुष के नाम पर किसी विशेष प्रकार के मत का प्रवर्त्तन करता है, तब वह उसके अर्थ का अधिकतर अनर्थ कर देता है। सत्य की विशेषता उसकी नित्य नवीनता में है। सत्य जितना भी पुराना है, उतना ही नया भी। सत्य की नित्य नयी अनुभूति ही उसे सत्य बनाये रखती है। नयी अनुभूति के अभाव में सत्य जड़ बन जाता है और इस प्रकार वह असत्य में परिणत हो जाता है।

भगवान् बुद्ध उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक सत्य को भली प्रकार से परख गये थे। उन्होंने जो सत्य संसार के समक्ष रखा, वह अपने मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर प्राप्त किया गया था। तीस वर्ष तक विलासिता का जीवन रह कर उन्होंने जान लिया कि यह व्यक्तिगत सुख का जीवन मनुष्य को आन्तरिक शान्ति नहीं देता। इसी प्रकार उन्होंने छः वर्ष तक उरुवेला में तपस्या करके यह भी जान लिया कि शरीर को अत्यन्त ताड़ना देने से भी मनुष्य को कोई सुख और शान्ति स्थायी रूप से नहीं मिलती। लम्बे-लम्बे उपवास और शारीरिक यन्त्रणायें मनुष्य को समाज में सम्मानित भले ही बना दें, वे उसकी आन्तरिक वेदनाओं को समाप्त नहीं करते। समाज में सम्मान बढ़ने से मनुष्य का अभिमान बढ़ता है और इस प्रकार जैसे-जैसे उसकी ख्याति बढ़ती जाती है, उसकी आन्तरिक अशान्ति भी बढ़ती जाती है। अतएव भगवान् बुद्ध ने अपने व्यक्तिगत प्रयोग के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि मध्यम मार्ग पर चलने से ही मनुष्य अपने जीवन की समस्याओं को हल कर सकता है।

भगवान् बुद्ध की शिक्षा थी, कि किसी बात को इसलिये मत मानो कि बहुत दिनों से लोग उसे मानते चले आये हैं, अथवा वह समाज के प्रतिष्ठित धर्म-ग्रन्थों में लिखी है, अथवा उसे बहुसमुदाय मान रहा है। उसे इसलिए भी मत मानो कि मैं उसे कहता हूँ। किसी बात को इसलिये ही मानो कि वह तुम्हारे अनुभव में सत्य सिद्ध हुई है, वह तुम्हें लाभकारी दिखाई देती है और उससे प्रति दिन तुम्हें अधिकाधिक शान्ति मिलती है। भगवान् बुद्ध अपने भिक्षुओं को शरीर के प्रति श्रद्धा दिखाने से रोकते थे। उनका कथन था कि मेरे अनुगामी मत बनो। उस सत्य के अनुगामी बनो जिसको मैंने बताया है। सन्मार्ग पर चलकर अपना कल्याण करो। किसी व्यक्ति के प्रति श्रद्धा दिखाकर मनुष्य न तो अपने आपका और न दूसरे का कोई कल्याण करता है। मनुष्य को व्यक्ति का पुजारी न बनकर सत्य का पुजारी होना चाहिये।

भगवान् बुद्ध ने उस समय की प्रचलित व्यक्तिवादी साधनाओं के प्रति उपेक्षा ही नहीं दिखाई वरन् उन्हें मानव के आध्यात्मिक विकास में बाधक बताया। भगवान् बुद्ध की शिक्षा समाजवादी शिक्षा थी। उन्होंने जिस सत्य को खोजा था उसे ४५ वर्ष तक घूम-घूम कर देश के कोने-कोने तक में पहुँचाया। उन्होंने बड़े-बड़े विहारों की स्थापना की जहाँ पर कि धार्मिक जीवन की ट्रेनिंग मिलती थी। जहाँ के सुशिक्षित भिक्षुओं को आदेश होता था कि वे संसार के प्रत्येक कोने में जायँ और मानव समाज के हितार्थ धर्म का उपदेश दें ताकि वे सुख और शान्ति से रह सकें। भिक्षुओं को आदेश है कि वे कितने

ही महत्व के अपने व्यक्तिगत काम में क्यों न लगे हों, यदि कोई आगन्तुक उनसे धर्म-चर्चा करने के लिए किसी क्षण आता है, तो वे अपना सब काम छोड़ करके उसके प्रश्नों का उत्तर दें और उसके संशयों का सभी प्रकार से समाधान करें।

अपने लिये जीना दुख का प्रसार करना है। समाज के लिए जीना ही स्वर्गीय जीवन है। मनुष्य समाज की सेवा करके अपनी वासनाओं का उदात्तीकरण करता है और इस प्रकार धीरे-धीरे वह निर्वाण प्राप्ति की क्षमता पाता है। भगवान् बुद्ध ने अपने आचरण में मैत्री-भावना के अभ्यास पर जितना जोर दिया है, संभवतः उतना जोर संसार के और किसी धर्म-शिक्षक ने नहीं दिया। भगवान् बुद्ध का कथन है कि जो रोगी की सेवा करता है, वह मेरी सेवा करता है। मैत्री-भावना के अभ्यास के जो ग्यारह लाभ बताये गये हैं, उनमें एक लाभ अपने भयानक स्वप्नों से और मानसिक व्याधियों से मुक्त होने का लाभ भी है। इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने आधुनिक मनोविज्ञान की खोजों के समर्थक विचार का पहिले ही जन्म दे दिया था। मनुष्य को मानसिक रोग दमित घृणा की भावना के कारण होते हैं। और इनकी समाप्ति मैत्री-भावना के अभ्यास से अवश्य हो जाती है। डा० इमील कोये और डा० होमर लेन के मानसिक चिकित्सा के प्रयोगों से यही सिद्ध होता है कि मनुष्य के बहुत से रोगों का कारण उसके अन्तरमन में रहने वाली आत्म-भर्त्सना की भावना रहती है। जब ऐसे व्यकि को स्नेह के वातावरण में रखा जाता है और तब उससे दूसरों के हित के लिए भले काम कराये जाते हैं तब उसकी इस प्रकार मनोवृत्ति का अन्त हो जाता है और वह मानसिक स्वास्थ्य लाभ कर लेता है।

भगवान् बुद्ध की एक बड़े महत्व की बात यह थी कि उन्होंने जनता के उत्कर्ष के लिए और उसमें मानसिक स्वावलंबन का भाव लाने के लिए शास्त्रीय भाषा का उपयोग धर्म-चर्चा में न करके जनता की भाषा का उपयोग किया। उन्होंने अपने उपदेशों को जितनी सरल भाषा में रखना सम्भव था, उतनी सरल भाषा में रखा ताकि यह सबके लिये सुलभ हो जाय। जब भगवान् बुद्ध के एक विद्वान् शिष्य ने भगवान् बुद्धसे आज्ञा मांगी कि वह उनके सुन्दर उपदेशों को संस्कृत के ललित पद्यों में लिख दे तो उन्होंने इसकी उसे आज्ञा न दी। उन्होंने कहा कि मेरा धर्म जनता का धर्म है, जनता की भाषा पालि है अतएव इसी भाषा में ही इस धर्म को कहा जायगा और कोई व्यक्ति इस धर्म को पंडितों की भाषा में रखने की चेष्टा न करेगा। भगवान् बुद्ध की इस आज्ञा के कारण आज तक बौद्धधर्म के सभी प्रमुख ग्रंथ पालि भाषा में पाये जाते हैं और संसार भर के सभी भिक्षु पालि भाषा को सीखने की चेष्टा करते हैं। जनता की भाषा में समाज के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति के विचार जनता का अधिकाधिक लाभ कर सकते हैं, इस सत्य को समझने के लिए अधिक बुद्धि की आवश्यकता नहीं है, यह सुबोध मनोवैज्ञानिक सत्य है।

भगवान् बुद्ध स्वतंत्रवादी थे, वे रूढ़िवादी नहीं थे। जबतक मनुष्य का मस्तिष्क स्वतन्त्र नहीं रहता, वह दूसरे प्रकार की स्वतन्त्रता का उपयोग ही नहीं कर सकता। किसी भी प्रकार के नये विचार को छान-बीन करके अपने मस्तिष्क में घुसने देना चाहिये। बिना छान-बीन किया हुआ विचार हमारा भारी अनर्थ कर सकता है। व्यर्थ के विचारों को दिमाग में जाने से रोकने के लिए भगवान् बुद्ध ने सम्यक् स्मृति का अभ्यास बताया था। व्यर्थ के विचार मस्तिष्क में घुस जाने पर वे अनेक प्रकार की वासनाओं को उत्तेजित करते हैं और इस प्रकार वे मानसिक गुलामी की अवस्था उत्पन्न कर देते हैं। जो मनुष्य नित्य प्रति भले विचारों का स्वागत करता है और बुरे विचारों को अपने मनमें आने से रोकते रहता है, वह न केवल अपने जीवन को ही सुखी और सम्पन्न बना लेता है वरन् वह संसार की भी मौलिक सेवा करने में समर्थ होता है। स्वतन्त्र स्वावलम्बी पुरुष ही दूसरों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

त्रिरत्न और शरणागमन

भिक्षु सद्धातिस्स

[हमारे पाठक प्रायः पूछा करते हैं कि बौद्ध कैसे हुआ जाता है? जो व्यक्ति त्रिरत्न की शरण जाता है और पंचशील ग्रहण करता है, उसे ही बौद्ध कहते हैं। प्रस्तुत लेख में विद्वान् एवं धर्मकथिक लेखक ने त्रिरत्न तथा शरणागमन पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है। आशा है यह लेख जिज्ञासु पाठकों को विशेष रुचिकर होगा —सम्पादक]

त्रिरत्न की शरण जाने वाले बौद्धों को शरण, शरणागमन, शरणागमन-भेद, शरणागमन-फल, शरण की अपरिशुद्धि, शरण-विनाश—इन छः बातों को भली प्रकार जानना चाहिये। सर्वप्रथम यह जानना उचित है कि त्रिरत्न क्या है, जो व्यक्ति त्रिरत्न को नहीं जानता है, वह शरण को नहीं प्राप्त कर सकता। कहा है—

बुद्धो सब्बञ्ञुत-ञाणो, धम्मो लोकुत्तरो नव।
संघो मग्गफलट्ठो च, इच्चेतं रतनत्तयं॥

सर्वज्ञता-ज्ञान-युक्त उत्तम पुरुष को बुद्ध कहते हैं। उनके द्वारा जाना गया पर्याप्ति धर्म के साथ नव लोकोत्तर सद्धर्म का नाम धर्म है। चार मार्ग और चार फल में प्रतिष्ठित आठ आर्य व्यक्तियों का श्रावक-समूह ही संघ है। और, इन्हीं तीनों को त्रिरत्न कहा जाता है।

दस पारमिताओं को पूर्ण कर, पाँच मारों को पराजित करके ज्ञातव्य सभी बातों को जानने वाले लोकनाथ भगवान् बुद्ध को ही बुद्ध-रत्न कहते हैं। पर्याप्ति कहलाने वाले सूत्र, विनय और अभिधर्म—त्रिपिटक बुद्ध-वचन के साथ स्रोतापत्ति मार्ग-ज्ञान-फल, सकृदागामी मार्ग-ज्ञान-फल, अनागामी मार्ग-ज्ञान-फल, अर्हत् मार्ग-ज्ञान-फल और निर्वाण—ये नौ लोकोत्तर धर्म धर्म-रत्न कहलाते हैं। चार मार्ग-ज्ञान और चार फल-ज्ञान को प्राप्त आठ आर्य श्रावक संघ को ही संघ-रत्न कहा जाता है। आठ आर्य श्रावक संघ के गुण-धर्म के अनुसार आचरण करने वाले शीलवान् पृथक्-जन भिक्षुगण भी संघ में ही अन्तर्निहित हैं। क्यों इन्हें 'रत्न' कहा जाता है?

चित्तीकतं महग्घं च, अतुलं दुल्लभ दस्सनं।
अनोमसत्त परिभोगं रतनन्ति पवुच्चति॥

बुद्ध, धर्म और संघ को 'रत्न' इसलिये कहा जाता है कि इनके गुणों का स्मरण कर वन्दना, पूजा, सत्कार और गौरव करने के लिये जिस प्रकार प्रबल चित्त उत्पन्न होता है, वैसा अन्य किसी वस्तु के लिये नहीं होता, अतः इनसे अधिक पूजार्ह कोई वस्तु नहीं है। इनका मूल्य आँका नहीं जा सकता, अतः ये महार्घ हैं। ये सबसे दुर्लभ हैं। कभी-कभी ही किसी कल्प में ये दिखाई देते हैं तथा मार्ग-फल प्राप्त करने के योग्य महापुण्यवान् व्यक्ति ही इनका परिभोग (सेवन) करते हैं।

इन्हीं तीन रत्नों को शरण भी कहा जाता है। क्यों त्रिरत्न प्राणियों के शरण हैं? संसार में रहने वाले प्राणियों के रोग, भय, जरा-मरण आदि सम्पूर्ण दुःखों को दूर कर परम शान्त एवं सुन्दर अमृतमय निर्वाण को प्राप्त करने के लिये इनसे बड़ा दूसरा कोई अवलम्ब नहीं है, इसीलिये बुद्ध, धर्म, संघ को शरण कहा जाता है।

और,

बुद्धं सरणं गच्छामि,
धम्मं सरणं गच्छामि,
संघं सरणं गच्छामि।

कह कर तिरत्न की शरण जाया जाता है।

शरणागमन

सारे सांसारिक दुःखों को दूर करने के लिये भगवान् बुद्ध से बढ़कर दूसरा कोई शास्ता नहीं है, उनके अत्यन्त

परिशुद्ध धर्म से बढ़कर दुःख दूर करने के लिये दूसरा कोई धर्म भी नहीं है और न तो उनके आठ आर्य व्यक्तियों से युक्त श्रावक संघ से बढ़कर दूसरा कोई पुण्य-क्षेत्र ही है—इस प्रकार से त्रिरत्न के गुणों को देखने वाला सम्यक् दृष्टि ज्ञान अर्थात् ऐसे जानने से उत्पन्न श्रद्धा और प्रज्ञा चैत्त-सिक धर्मों का आधारभूत चित्तोत्पाद ही शरणागमन है। अथवा, 'सम्पूर्ण रोग, भय आदि दुःख को नाश कर शान्त, श्रेष्ठ, निर्वाण सुख, प्राप्त करने के लिये बुद्ध, धर्म और संघ का सेवन करता हूँ'—इस प्रकार के आलम्बन द्वारा उत्पन्न श्रद्धा और प्रज्ञा इन दोनों से घिरी हुई चेतना ही शरणागमन है।

शरणागमन-भेद

शरणागमन दो प्रकार का होता है—लौकिक और लोकोत्तर। जो कोई भी योगाभ्यासी निर्वाण को आलम्बन कर स्रोतापत्ति-मार्ग-ज्ञान कुशल चित्त-वीथि को उत्पन्न करने के साथ ही उसके भीतर बैठे हुए सत्काय दृष्टि, विचिकित्सा और शीलव्रत परामर्श—इन तीनों संयोजनों को जड़ से उखाड़ चार आर्य सत्यों को प्रत्यक्ष रूप से जानकर निर्वाण को देखता है। इस प्रकार पहले निर्वाण के आलम्बन से स्रोतापत्ति-मार्ग-ज्ञान के प्राप्त होने के समय शरणागमन को अपरिशुद्ध करने वाले चित्त-क्लेश नष्ट हो गये रहते हैं। त्रिरत्न में प्रतिष्ठित होना प्रत्यक्ष ही दिखाई देता है। इस प्रकार अचल श्रद्धा से प्राप्त शरण लोकोत्तर शरणागमन कहा जाता है। त्रिशरण को ग्रहण करने के समय त्रिरत्न के गुणों को आलम्बन कर उत्पन्न हुए कुशल चित्त से राग, द्वेष, मोह आदि क्लेशों को दबा श्रद्धा को ही बड़ा सम्यक्-दृष्टि-ज्ञान से शरण ग्रहण करने से प्राप्त शरण लौकिक शरण कहा जाता है। त्रिरत्न के गुण और शरणागमन का आनृशंस जानकर ग्रहण किया हुआ शरण-ज्ञान-सम्प्रयुक्त शरणागमन है। इस सम्बन्ध में जानकारी न होने पर माता-पिता को शरण ग्रहण करते देख या माता-पिता द्वारा प्रेरित करने पर 'बुद्धं सरणं गच्छामि' आदि कह कर जो छोटे बच्चे शरण जाते हैं, उनका शरण ज्ञान-विप्रयुक्त शरणागमन कहलाता है।

शरणागमन चार प्रकार का होता है। (१) आज से लेकर मैं अपना जीवन बुद्ध को अर्पित करता हूँ, धर्म और संघ को अर्पित करता हूँ—ऐसा कहकर बलवती श्रद्धा-भक्ति से त्रिरत्न की पूजा कर ग्रहण किया गया शरण आत्म-समर्पण शरणागमन कहलाता है। (२) सांसारिक दुःखों से मुक्त होने के लिये त्रिरत्न के अतिरिक्त अन्य कोई अवलम्ब नहीं है, इसलिये आज से लेकर मैं बुद्ध को अवलम्बस्वरूप ग्रहण करता हूँ वैसे ही धर्म और संघ को भी। ऐसे बुद्धि से विचार करके ग्रहण किया गया शरण तत्परायण-शरणागमन कहा जाता है। (३) त्रिरत्न से बढ़कर सब सम्पत्तियों को प्राप्त कराने वाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है, इस प्रकार विचार कर 'आज से मैं त्रिरत्नका शिष्य होता हूँ' कहकर त्रिरत्न की शरण जाना शिष्य-भाव उपगमन-शरणागमन कहलाता है। (४) त्रिरत्न के गुण को जानकर प्रसन्नचित्त हो 'आज से लेकर त्रिरत्न को मेरा भक्ति-पूर्वक नमस्कार है, हर प्रकार से मैं त्रिरत्न का ही सम्मान, गौरव, वन्दना, पूजा करूँगा, कह कर श्रद्धा और प्रज्ञा से युक्त चित्त से त्रिरत्न की शरण जाना प्रणिपात-शरणागमन कहलाता है।

शरणागमन-फल

लोकोत्तर शरणागमन में प्रतिष्ठित आर्य श्रावक सांसारिक दुःखों को सर्वथा समाप्त कर मार्ग-फल का ज्ञान प्राप्त करके निर्वाण लाभ करते हैं। लोकोत्तर शरणागमन का यह फल है। लौकिक शरणागमन का फल यह है कि शरणागमन के कारण मृत्यु के बाद स्वर्ग में सुख प्राप्त करते हैं। यदि इस जीवन में ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते हैं तो अगले जन्म में वह पुण्य ज्ञान प्राप्ति का साधन होता है।

शरण की अपरिशुद्धि

त्रिरत्न का मन, काय और वचन से अगौरव तथा अनादर करना, वन्दना, पूजा, सम्मान करने के लिये न जाना; श्रद्धा और भक्ति को कम करना; त्रिरत्न के गुण को स्मरण न करना; निन्दा करना; हीन समझ कर हँसी उड़ाना; सन्देह करना आदि इस प्रकार के कार्यों तथा व्यवहारों से शरण अपरिशुद्ध हो जाता है।

शरण-विनाश

भगवान् बुद्ध से बढ़कर अमुक शास्ता श्रेष्ठ है—ऐसा सोचने के क्षण ही शरण नष्ट हो जाता है। उपासकत्व भी नहीं रह जाता है। लोकोत्तर शरणागमन का अपरिशुद्ध या नष्ट होना सम्भव नहीं, क्योंकि मार्ग-ज्ञान से चार आर्य सत्यों के अवबोध करने के क्षण में ही शरण को अपरिशुद्ध और विनष्ट करने वाले विघ्न जड़ से ही नष्ट हो जाते हैं।

यह मोहन-वशीकरण है !

श्री हरिशंकर श्रीवास्तव "शलभ"

आनन्द :—

दो श्रेणी अभिशाप, हृदय से
हृदय अलग हो जाता,
जिससे तुरत मनुजता का
अस्तित्व विकल खो जाता,
लील रही अपना ही सब कुछ
मानवता हत्यारी,
उजड़ रही है धरा-सुन्दरी
की मधु चन्दन-वारी,
दो श्रेणी उफ ! नग्न मनुजता
की कटु प्रदर्शनी है,
दो श्रेणी उफ ! प्राण प्राण में
जगती पीर घनी है,
अल्प मनुज बहुजन का शोषण
और दलन करता है
पर, प्राणी लाचार, सिसकियाँ
चुपके से भरता है,
भूतल के भोले मानव उफ !
कितनी बड़ी विषमता,
भूल गई अपना मौलिक पथ
स्यात् धरा से ममता,
कितनी बड़ी विषमता है यह
कितना गुरु त्रासन है
एक कल्पना शेष कि ऊँचा
सबसे मनुजासन है,

एक मनुज पृथ्वी पर लेटा,
धूल-धूसरित तन है,
विश्व-वेदनाओं से जिसका
दबा हुआ जीवन है,
एक उसी के भोलेपन से
कितना लाभ उठाता,
कहाँ कृष्ण नंगी द्रुपदा का
चीर बढ़ाता आता,
जन विषण्ण है, जन उदास है
प्यास न मन की बाकी,
मन-मन्दिर में शेष रही अब
छवि न शान्ति करुणा की,
इसका क्या उपचार कहें प्रभु !
जगी समस्या मन में
कैसे इसका हो विनाश औ'
शान्ति जगे जन जन में,
प्रभो ! शान्ति करुणा की जननी
दूर मनुज से आज,
पल सकता जिसकी छाया में
वर्ग – विहीन – समाज,
प्राण प्राण में नई चेतना
स्वर में स्निग्ध विमलता,
कैसे पा सकता है प्राणी
जीवन में निश्छलता,

सुने तिमिर के गह्वर से चिर
ज्योतिर्मय संगीत,
एक शान्ति का पा सकता जन
कैसे प्यार पुनीत,

बुद्ध :—

भूल रहे आनन्द ! फूल ज्यों
एक डाल पर खिलते,
एक पवन के झोंके में सब
प्रमुदित डुलते हिलते,

एक चाँदनी सब पर अपनी
स्नेह - सुधा बरसाती
एक यामिनी सब को अपना
रजत - हार पहिनाती,

मलयानिल उसके सौरभ को
दूर - दूर ले जाता,
जन - जन के सोये भावों को
बरबस छेड़ जगाता,

एक संघ की विपुल डाल के
कितने सुमन सलोने,
जिससे सुरभित विश्व-विपिन के
आकुल कोने - कोने,

देख नहीं क्या रहे संघ को
यह उपचार सकल है,
जन की क्षुधित तृषित आत्मा का
एक मात्र सम्बल है,

एक संघ, जन-जन के मन का
एकीकरण उदार,
दो जीवन है, एक सरित के
दोनों कूल कगार,

एक कर्म, जन - नक्षत्रों - से
शोभित संघ गगन है,
संघ शोषकों के तक्षक का
मोहन - वशीकरण है,

एक संघ रे, जब तक मानव
का मन एक न होगा,
एक धर्म रे जब तक जन का
जीवन एक न होगा,

हृदय-हृदय के शान्ति-प्रेम का
बन्धन एक न होगा
एक शरण उपचार हेतु जब
व्रण-व्रण एक न होगा,

मिट न सकेगी जन-जन के
अन्तर से कभी विषमता,
विचरण कर सकती न धरापर
ऐक्यभाव से ममता,

ज्यों सागर में मिलने से सब
नदी एक हो जाती
एक संघ में मिल जाने से
जाति - पाँति मिट पाती,

फिर तो किसी तरह का जग में
कोलाहल न रहेगा,
और विषमता की ज्वाला में
मानव - मन न दहेगा ।'*

---

*अप्रकाशित 'आनन्द' काव्य से ।

कहानी

आभा

सुश्री कुमारी विद्या

उत्तराखंड के पश्चिम से उड़कर प्रलयकारी जलधर शस्यश्यामला धरणी को कम्पित करते, ज्वालामुखी के निश्वास सा विध्वंस करते मालव की धरा तक आये। मालवेश ने अचल की भाँति अचल होकर उन्हें रोक दिया और तीव्र अनल के झोंके की भाँति आ सम्राट् स्कन्दगुप्त की रणवाहिनी ने उनकी शक्ति को चूर-चूर कर दिया। रक्तिम जलधर सी प्रलयकारी हूण सेना रण-विमुख हो गांधार की ओर पलायन कर गई।

मालव कृतज्ञ हो गया और कृतज्ञता का मूल्य मालव को अर्पण कर मालवेश ने चुका दिया। उज्जयिनी की भव्य राजसभा में विजय हर्ष की मधुर गौरवमयी बेला में उन्होंने—मालव के प्रजेश ने—भारत सम्राट् का महाबलाधिकृत होना स्वीकार कर लिया। वीरता और त्याग के सम्मुख राजवैभव नत हो गया। किन्तु किसी ने अपना जीवन, अपना हृदय उनके सन्मुख न्यौछावर कर दिया जब वे अन्तःपुर में अतिथि होकर प्रविष्ट हुए, जिन्होंने (स्कन्दगुप्त) मालव की स्वातन्त्र्य रक्षा के सहायतार्थ मालव की वीर-भूमि पर तीन रैन व्यतीत की थीं। मालेवेश्वरी ने जी भर कर उनका स्वागत किया किन्तु करुणा-मैत्री का पालन करने वाली सुकोमला तरुणी के दो कोमल कर कंकण की नोकों पर रवि-किरणों को उछालते हुए अभिवादन के लिये उठे। स्मिति की बिजली अरुण अधरों पर कौंध गई। सम्राट् के दो नयनों में वे नयन समा जाना चाहे। पर मधुप खिलाती पलकें लज्जा से नत हो गईं। उसका प्रणय सम्राट् को अपना लिया और सम्भवतः वे भी जान गये। पर साथ खड़ी सखी का नारी-हृदय ईर्ष्या से जल उठा, वह चली गई। सरल हृदया तरुणी ने इस पर ध्यान नहीं दिया। उसे प्रतीत हुआ—रश्मियों से खेलती शिप्रा (नदी) की तरंगे नृत्य कर उठीं, वह मधुर कल्पना में खो गई।

❁ ❁ ❁

हूणों ने वहाँ से हार मानकर नई सेना के साथ गांधार की ओर से पुनः आक्रमण किया। उनके अत्याचारों से पंचनद की जलराशि लाल होने लगी। त्राहि-त्राहि मच गयी। सम्राट् और उनके महाबलाधिकृत ने अपने सुखों को कर्तव्य की प्रेरणा में भुला दिया। मालवेश रणक्षेत्र में गये, साथ ही मालवेश्वरी और तरुणी भी।

कुँभा नदी के भारतीय तट पर शिविर में मालवेश्वरी और तरुणी आहतों की सुश्रूषा कर अपने को धन्य समझती थीं। प्राची के पथिक दिनमणि दिन भर की श्रांतता भुलाने के लिये प्रतीची के नील निलय में विश्राम लेने जा रहे थे। विहँग नेह भरे मन से कलरव करते नीड़ों की ओर उड़ रहे थे और अपने प्रियजनों की बाट जोहती रमणियाँ विजय-सन्देश सुनने के लिये व्याकुल हो रही थीं, तभी निरभ्रनभ से एकाएक वज्रपात हुआ। एक चर आकर मालवेश्वरी के चरणों में गिर पड़ा। मालवेश्वरी का हृदय काँप उठा। उनकी ननँदरानी तरुणी सिहर उठीं। पर वे वीर-वधू थीं, जी कड़ा कर उन्होंने कहा—"क्या हुआ ? चर ! बोलो न, मैं कुछ नहीं कहूँगी। कठोर सत्य चाहे सुखद हो या नहीं, सुनना ही पड़ता है।" चर का रुँधा हुआ स्वर था—"देवि ! बड़ी आपत्तियों को झेल कर मालव सेनापति पर्णदत्त इधर आ सके। बाकी सब, सम्राट् भी इस ओर आ रहे थे, कुंभा का जल वेग से बढ़ गया। वे उस जल के साथ बह···।" "ओह !" कहकर तरुणी चीख पड़ी। मालवेश्वरी ने उसे अपने अंक में खींचकर स्नेह से सहलाते हुए कहा—"धैर्य रखो, रानी।" उनका गम्भीर स्वर था—"उसके आगे ?" चर हत-बुद्धि सा कहता गया—"कुछ सैनिकों के साथ आये आर्य पर्णदत्त से सुना गया। हमारे मालवेश ने सैकड़ों हूणों को धराशायी कर वीर-गति प्राप्त की।" "भाभी !" कहकर असहाया तरुणी का स्वर रुँध गया।

अरुण-अरुण कपोलों पर आँसू की धारा बहने लगी। उनके वीर-हृदय की नारी सिहर उठी। अपने प्रिय की अनुजा तरुणी को वक्ष से लगाकर वे रोईं, इतना रोईं कि उन्हें धीरे-धीरे कुछ हल्कापन प्रतीत हुआ। उन्होंने शान्त स्वर में कहा—"रानी! प्रिय मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, मेरी चिर-दुखिनी रानी!! मुझे क्षमा करना। एक बार हँस दो। मालव की वीर बेटी, तुम्हें आँसू शोभा नहीं देते। तुम्हारे भाई ने तुम्हें अनुजा नहीं अनुज माना और भारत-जननी तुम्हारी ओर किस आशा से ताक रही है।...।"

"जाओ भाभी! तुम भी जाती हो...भैया...तो गये...भाभी!"

कुंभा की लहरें सिहर उठीं। अपने प्रिय की चिता पर बैठ सती मालवेश्वरी अपने प्राणेश्वर के समीप चली गई। वृद्ध सेनापति के सहारे खड़ी सजल-नयना तरुणी उस अग्नि की मूक लपटों को देखती रही। एकाएक वृद्ध ने शान्त स्वर में कहा—"चल बेटी! हमारा...कर्तव्य।" "और कितना बलिदान चाहता है बाबा! सब गया ओह! कहती हुई तरुणी तड़प उठी। वृद्ध ने उसके रूखे काले कुन्तलों को समेटकर करुण स्वर में कहा—"राष्ट्र के आहत वीरों के लिये सब कुछ करना होगा बेटी! भारत-जननी एक बार फिर तुमसे त्याग चाहती है।'

उसने एक बार देखा लाल लपटों की ओर, फिर चुपचाप सरकती कुंभा की धारा को। उसकी स्मृति में उभर आयी शिप्रा की चंचल लहरें, अगरु धूम के बादलों के बीच, तट के भव्य प्रासाद में उसकी बिजली-सी चमक। उस निशा में जब स्वर्ण-दीप के आलोक में वह मुग्धा-सी खड़ी प्रिय के कल्पित मंजुल रूप का दर्शन कर रही थी। कभी-कभी वातायन से आती समीर-लहरी के हिलते चीनांशुक से उलझी किंकणी की धीमी रुन-झुन नीरवता को भंग कर देती थी। तभी उसकी सखी ने कहा था अथवा उसके जीवन में विष घोल दिया था—"तुम मालव देकर साम्राज्ञी बनना चाहती हो।" तब उस गर्विणी तरुणी ने कहा था—'नहीं!'—किन्तु हृदय सिहर उठा था। दीप सिहर कर बुझ गया था। रह गया था केवल अन्धकार। वह चीख उठी थी—'साम्राज्ञी नहीं बनेगी।' विचारों की लड़ियाँ टूट गईं। उसने निश्चय किया, वह रक्तिम हूणों का नाश कर देगी। सर्वस्व त्याग कर। उसका दृढ़ स्वर था—'चलो बाबा!'

× × ×

सती की समाधि पर जलते दीप के सन्मुख रूखी ऊर्मिल केश-राशि पृष्ठ-भाग पर लहरा रही थी। और श्वेतवसना तरुणी बिखरे पुष्पों पर सिर रखे कुछ सोच रही थी। तभी 'कुमारी!' चिरपरिचित स्वर सुन उसने चौंक कर देखा तो सम्राट् उसके प्रिय सम्मुख थे। आप ही आप कोमल कर अभिवादन के लिए उठे। अतीत के स्वर्णिम दिनों की भाँति दो नयनों ने दो नयनों को देखा।

'कुमारी! आज सब कुछ खोकर तुम्हें मैंने प्राप्त कर लिया। चलो जीवन के शेष दिन इस स्वार्थी संसार से दूर-सुदूर में बितायें, मेरा अनुरोध है। कुमारी! मैं सोचता हूँ ठुकराओगी नहीं।'

वृद्ध सेनापति जो स्वस्थ सैनिकों के साथ समीप आ चुके थे। उनका हर्षपूर्ण स्वर था—'हाँ बेटी! तुम साम्राज्ञी बनो। तुम्हारी चिर आकांक्षा पूरी हो।'

'आकांक्षा—मेरी आकांक्षा!' कहती हुई वह घबरा उठी। उसकी आँखों के सामने आने लगा—'भाभी का कथन—मातृभूमि तुम्हारी ओर निहार रही है कुमारी!' ...'साम्राज्ञी बनना चाहती हो मालव देकर।' चीखती हुई सखी। उसे प्रतीत हुआ सती मालेश्वरी की चिता की लपटें उसकी ओर बढ़ती हुई कह रही हैं—'तुम्हारा कर्त्तव्य तुम से त्याग चाहता है कुमारी! 'तथागत की आराधिका! तुम्हारे लिये करुणा, मैत्री, त्याग—बहुजन हिताय... ही सब कुछ है।'

तरुणी ने व्याकुल होकर कोमल कर से चन्द्रमुख को ढँक लिया फिर कुछ सोचकर समीप के कुंज की ओर बढ़ी और पुष्प के समीप के तीक्ष्ण काँटे से उँगली को चीर कर बहते हुए रक्त से सम्राट का तिलक किया फिर उनके चरणों पर झुक कर बोली—"सम्राट! मेरे देवता!! प्रलय-कारी हूणों से मातृभूमि रक्षा चाहती है। आप वीर हैं, आप, उसके कातर अनुरोध को न ठुकराइये। मैंने आप से कभी कुछ नहीं माँगा, आज माँगती हूँ। स्वदेश को विध्वंस-

कारी ज्वाला के विश्वास से बचा लीजिये। विजय के क्षण में याद कर लीजियेगा। मैं धन्य हो जाऊँगी। मैंने जीवन भर आप को सर्वस्व माना और मानती रहूँगी। मेरे हृदयेश्वर, प्रणय के देवता! विदा दो! मालव-माता मेरी प्रतीक्षा कर रही है जहाँ आपने तीन रैन बसेरा लिया था। अब मैं शेष जीवन भर के लिये वहीं बसेरा लेने जा रही हूँ, विशाल स्तूप की छाया में। जीवन का प्रत्येक क्षण मानव के कल्याण एवं बहुजन हितार्थ के लिए समर्पित कर दूँगी।"

"तुम मत जाओ कुमारी!" उनका रुँधा हुआ स्वर था। "अब मुझे न रोकिये।" कहती कुमारी धीरे-धीरे चली गई। अंधकार में विलीन हो गई। सम्राट दीपक की ओर बढ़े। सती की समाधि के पास, आजीवन कौमार्य व्रत निभाते हुए हूँणों के नाश के लिए शपथ लिये। वनभूमि जय-जय कार से गूँज उठी। दीपक की आभा दीप्त हो गई। शायद वह मालवेश कुमारी तरुणी के त्यागमय स्नेह से प्रज्वलित हो उठी थी। सम्राट का अस्फुट स्वर था—"वीर बन्धुवर्मा (मालवेश) की अनुजा देवसेना (तरुणी) तो चली गई। नवदा टोली में, माहेश्वर में रेवा के पुलिन पर स्थित विशाल स्तूप के समीप, त्रिरत्न की शरण में जीवन के शेष बिताने। किन्तु एक ज्योति दिखा कर जो कभी भूली न जा सकेगी।"

वह ज्योति इतनी आलोकित हुई कि उस आलोक में हूणों के अत्याचार का अन्धकार सदा के लिये नष्ट हो गया।

आज न तथागत के उपदेशों पर चलने वाली त्यागमयी वीरा मालवेश कुमारी देवसेना है, न उसके प्रिय सम्राट स्कंदगुप्त। किन्तु उनकी याद भावुक हृदयों में आती है और भावुकता गुनगुना उठती है –

करुणा मूर्ति तथागत की, शुचि सुधावर्षिणी वाणी।
आई मालव की आभा बन, कलित ललित कल्याणी॥

बौद्धयोगी के पत्र—४

कर्मस्थान-ग्रहण

प्रिय जिज्ञासु,

मेरे पत्र की तुम्हें बहुत दिनों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। मैं परिभ्रमण करते हुए ऐसे जंगल में पहुँच गया था कि वहाँ से पत्र भेजना सम्भव न था। न मेरे पास लेखनी थी और न कागज ही। यदि किसी प्रकार पत्र लिख भी पाता तो भेजता कैसे? अच्छा अब तो जनपद में आ गया हूँ। एक स्थान में रहकर वर्षावास कर रहा हूँ। चौमासे के तीन मास तो इसी स्थान में रहना है। फिर तो "करतर भिक्षा, तरुतर बास।"

तुमने अपने तीसरे पत्र में समाधि के सम्बन्ध में प्रश्न किया था। समाधि कुशल चित्त की एकाग्रता का ही नाम है। एक आलम्बन में चित्त और चैत्तसिकों का भली प्रकार लगना इसकी पहचान है।

समाधि कई प्रकार की होती है। मैं यहाँ पहले लौकिक समाधि का ही वर्णन करूँगा। पीछे कभी 'प्रज्ञा की भावना' के साथ लोकोत्तर समाधि को बतलाऊँगा।

जो साधक लौकिक समाधि की भावना करना चाहता है उसे पहले अपने शील-पालन पर ध्यान देना चाहिये। परिशुद्ध शील होने पर ही चित्त एकाग्र होता है। यदि शील परिशुद्ध नहीं होता तो एकान्त में रहते समय चित्त कभी भी एकाग्र नहीं होता। अनेक प्रकार के भयानक दृश्य उपस्थित होते हैं। आसन से उठकर भागने की भी नौबत आ जाती है। पागल हो जाने का भी डर रहता है। अतः शील में भली प्रकार प्रतिष्ठित होकर इन दस विघ्नों से मुक्त होना चाहिये। यदि इनमें से कोई भी विघ्न होता है तो समाधि भावना में अनेक बाधायें आ उपस्थित होती हैं। वे दस विघ्न हैं—

आवासो च कुलं लाभो, गणो कम्मञ्च पञ्चमं।
अद्धानं ञाति आबाधो, गन्थो इद्धीति ते दस॥

आवास (मठ), कुल, लाभ, गण और काम—ये पाँच तथा मार्ग, ज्ञाति, रोग, ग्रन्थ और ऋद्धि के साथ दस।

जिस आवास में रहते हुए अनेक नये काम होते हैं, रखी हुई वस्तुओं की देखभाल करनी होती है, वहाँ ध्यान

आदि के लिये अवकाश मिलना कठिन होता है। भाई-बन्धु अथवा सेवा-टहल करने वालों के साथ रहने पर उनके सुख में सुखी, दुःख में दुःखी, आनन्द में आनन्दित होना पड़ता है। उनका संसर्ग भी धर्म-कार्य के लिए बाधक ही होता है। जिसका बहुत लाभ-सत्कार होता है, सदा दायक-दायिकाओं की भीड़ लगी रहती है, दान-उपदान आते रहते हैं, उसे दान की वस्तुओं को ग्रहण करने से ही छुट्टी नहीं मिलती। शिष्यों का गण पठन-पाठन में ही लगाये रहता है। विहार आदि बनवाने के नये कामों को करने के लिये बढ़ई, लोहार आदि या तत्सम्बन्धी उपकरणों को जुटाने में ही समय व्यतीत हो जाता है। 'ऐसा करो, ऐसा बनाओ' आदि बतलाते रहना पड़ता है। किसी काम के लिये कहीं बाहर जाना होता है, तो जब तक वहाँ पहुँचा नहीं जाता, तब तक चित्त एकाग्र नहीं होता। आचार्य, उपाध्याय, गुरुभाई, मित्र, माता-पिता आदि ज्ञातियों का रोग से पीड़ित होना भी समाधि के लिए बाधक होता है। क्योंकि रुग्णावस्था में उनकी सेवा करने के लिये सब कुछ त्याग देना पड़ता है। अपने शारीरिक रोग से भी चित्त एकाग्र नहीं होता है। वात-पित्त के प्रकोप से ध्यान-प्राप्त आयुष्मान् गोधिय को भी छः बार तक ध्यान प्राप्त होकर विहरना कठिन हो गया था। ग्रन्थों के स्वाध्याय में सदा लगे रहने वाले को छुट्टी नहीं मिलती। पृथक्-जनों की ऋद्धि उतान सोने वाले नन्हें बालक-सी दुष्परिहारिणी होती है, जरा-सी की बात में खत्म हो जाती है। अतः भली प्रकार इन सब बाधाओं का विचार कर छोड़ने योग्य को छोड़ तथा समाप्त करने योग्य को समाप्त कर कर्मस्थान देने वाले कल्याण मित्र के पास जाना चाहिए।

> **पियो गरु भावनीयो वत्ता च वचनक्खमो।**
> **गम्भीरञ्च कथं कत्ता नो चट्ठाने नियोजये॥**

जो प्रिय, गौरवनीय, आदरणीय, वक्ता, बात सहनेवाला, गम्भीर बातों को बतलाने वाला और अनुचित कामों में नहीं लगाने वाला हो, वह कल्याण मित्र है।

इस प्रकार के गुणों से युक्त बिल्कुल हितैषी, उन्नति की ओर ले जाने वाले कल्याण मित्र के पास जाना चाहिए। और अपनी चर्य्या के अनुकूल चालीस कर्मस्थानों में से जिस किसी को ग्रहण करना चाहिए।

चर्य्यायें छः हैं—(१) राग चर्य्या, (२) द्वेष चर्य्या, (३) मोह चर्य्या, (४) श्रद्धा चर्य्या, (५) बुद्धि चर्य्या, (६) वितर्क चर्य्या।

चर्य्यायें पूर्व-जन्म के कर्मानुसार होती हैं। इनकी पहचान यह है कि राग चरित वाला स्वाभाविक चाल से चलते हुए बनठन कर चलता है। धीरे-से पैर रखता है, बराबर रखता है, बराबर उठाता है और उसके पैर का बिचला भाग जमीन नहीं छूता है। द्वेष चरित वाला पैर के अगले भाग से जमीन खोदते हुए के समान चलता है। सहसा पैर रखता है, सहसा उठाता है और वह पैर रखने के समय काढ़ते (=खींचते) हुए के समान रखता है। मोह चरित वाला हाथ-पैर चलाते हुए चलता है, सशंकित के समान पैर रखता है, सशंकित के समान उठाता है और उसका पैर सहसा अनुपीड़ित (पैर के पंजे और एड़ी से सहसा ही पेरना) होता है। मागन्दिय सुत्त में कहा भी गया है—

> **रत्तस्स हि उक्कुटिकं पदं भवे,**
> **दुट्ठस्स होति अनुकड्ढितं पदं।**
> **मूळ्हस्स होति सहसानुपीलितं,**
> **विवट्टच्छदस्स इदमीदिसं पदं॥**

[रागी का पैर बिचले भाग में जमीन को नहीं छूता है। द्वेषी का पैर जमीन पर रखने के समय खींचते हुए होता है। मोही का पैर पंजे और एँड़ी से सहसा जमीन को पेरता हुआ होता है। किन्तु, छत-रहित (=क्लेश-मुक्त) का पैर इस प्रकार का होता है।]

साधक के लिए चालीस कर्मस्थान ये हैं—दस कसिण, दस अशुभ, दस अनुस्मृतियाँ, चार ब्रह्मविहार, चार आरुप्य, एक संज्ञा और एक व्यवस्थान। पृथ्वी कसिण, आप् कसिण, तेज कसिण, वायु कसिण, नील कसिण, पीत कसिण, लोहित कसिण, अवदात कसिण, आलोक कसिण, परिच्छिन्नाकास कसिण—ये दस कसिण हैं। ऊर्ध्वमातक, विनीलक, विपुब्बक, विच्छिद्दक, विक्खायितक, विक्षिप्तक, हत-विक्षिप्तक, लोहितक, पुलुवक, अस्थिक—ये

दस अशुभ हैं। बुद्धानुस्मृति, धर्मानुस्मृति, संघानुस्मृति, शीलानुस्मृति, त्यागानुस्मृति, देवतानुस्मृति, मरणानुस्मृति, कायगता-स्मृति, आनापान-स्मृति, उपशमानुस्मृति—ये दस अनुस्मृतियाँ हैं। मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा—ये चार ब्रह्मविहार हैं। आकाशानन्त्यायतन, विज्ञानानन्त्यायतन, आकिंचन्यायतन, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन—ये चार आरुप्य हैं। आहार में प्रतिकूलता की संज्ञा—एक संज्ञा है और चारों धातुओं का व्यवस्थान—एक व्यवस्थान है।

राग चरित वाले के लिए दस अशुभ और कायगता-स्मृति—यह ग्यारह कर्मस्थान अनुकूल हैं। द्वेष चरित वाले के लिए चार ब्रह्म विहार और चार वर्ण कसिण—यह आठ। मोह चरित और वितर्क चरित वाले के लिए एक आनापानास्मृति कर्मस्थान ही अनुकूल है। श्रद्धाचरित वाले के लिए पहले की छः अनुस्मृतियाँ। बुद्धिचरित वाले के लिये मरणस्मृति, उपशमानुस्मृति, चार धातुओं का व्यवस्थान और आहार में प्रतिकूलता की संज्ञा—ये चार। शेष कसिण और चार आरुप्य सब चरित वालों के लिये अनुकूल हैं। कसिणों में छोटा आलम्बन वितर्क चरित वाले के लिए और बड़ा आलम्बन मोह चरित वाले के लिये।

योगी को अपनी चर्य्या के अनुकूल चालीस कर्मस्थानों में से जिस किसी को ग्रहण करते समय अपने को भगवान् बुद्ध या आचार्य को सौंप कर विचार और प्रबल श्रद्धा से युक्त होकर कल्याण मित्र से कर्मस्थान माँगना चाहिए। "भगवान् मैं इस शरीर को आप के लिए त्यागता हूँ।" कह कर तथागत को अपने को सौंप देना चाहिए। इस प्रकार सौंपने से जङ्गल, श्मशान, पर्त्ती आदि स्थानों में रहते हुए भय-संत्रास नहीं उत्पन्न होता, क्योंकि उस अवस्था में वह अपने को इस प्रकार समझाता है—"क्यों पण्डित! तूने पहले ही अपने को तथागत के श्री चरणों में नहीं सौंप दिया? फिर तुझे क्या डर?" जो साधक अपने को आचार्य को सौंपता है उसे "भन्ते! मैं इस शरीर को आपके लिये त्यागता हूँ" कहना चाहिये। इस प्रकार नहीं सौंपने वाला साधक डाँटने योग्य नहीं होता अथवा कहना नहीं मानने वाला होता है।

कर्मस्थान देने वाले आचार्य को भी चाहिए कि वह उसके चित्त की गति-विधि को चेतोपर्यज्ञान से देखकर चर्य्या जान ले। यदि आचार्य चेतोपर्यज्ञान-प्राप्त नहीं है, तो "किस चरित वाले हो?" या "कौन-सी बातें तुझे अधिकतर होती हैं?" अथवा "तुझे क्या विचारते हुए सरलता होती है?" या "किस कर्मस्थान में तेरा चित्त लगता है?" आदि प्रकार से पूछ कर चर्य्या जाननी चाहिए। ऐसे जानकर चर्य्या के अनुसार कर्मस्थान को कहना चाहिये। कहते हुए भी तीन प्रकार से कहना चाहिये। (१) स्वयं सीखे हुए कर्मस्थान को एक-दो बार बैठाकर पाठ करा के देना चाहिये। (२) समीप रहने वाले को आने के ही समय कहना चाहिये (३) सीख कर दूसरी जगह जाने की इच्छा वाले को न बहुत संक्षिप्त और न तो बहुत विस्तार करके कहना चाहिये।

यह पत्र यहीं समाप्त करता हूँ। धर्मोपदेश करने का समय हो गया है। धर्म-मण्डप में उपासक-उपासिकाओं की भीड़ जमा हो गई है। कितने ही सम्भ्रान्त उपासक मेरे पास भी आकर बैठ गये हैं। जंगल से जनपद में आकर रहने में यही कष्ट है कि किसी दिन भी बिना उपदेश किये जान नहीं बचती। योगियों के लिये भी क्या ही तबाही है—परित्रपाठ करो, उपदेश करो, दान ग्रहण करो, मृतक-वस्त्र लो, अनुमोदन करो! आज इतना ही बस। योगिराज के आशीर्वाद।

सावत्थी
३-९-५३

तुम्हारा—
योगी

अगले अंक में पढ़िये—

बुद्ध का दर्शन—श्री राहुल सांकृत्यायन
बुद्ध की पावन नगरी में—सन्त विनोबा भावे
धर्म—श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी
आन्ध्र का पुरातत्व वैभव—श्री कर्पूरचन्द्र कुलिश
पृथ्वी कसिण-भावना—बौद्ध योगी
अवतारी लामा और उनकी पहचान—भिक्षु लोबज़ङ्
इनके अतिरिक्त बौद्ध-जगत्, नये प्रकाशन आदि स्थायी स्तम्भ।

पालि वाङ्मय का संक्षिप्त परिचय

श्री सुमन वात्सायन

[गतांक से आगे]

भगवान् बुद्ध ने जान-बूझकर ही लोक भाषा में अपने धर्म का प्रचार किया। क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि उनका धर्म मुट्ठी भर शिक्षित उच्च वर्ग तक ही सीमित रहे। बुद्ध श्रमण-परंपरा में थे जो सदियों तक भारत का लोक-धर्म रहा। उस परंपरा की भाषा, संस्कृति और धर्म जनता की अपनी वस्तु रही। जब भोग-लिप्सा में पड़कर श्रमणों ने जनता का साथ छोड़ सामन्तों एवं श्रेष्ठियों का साथ पकड़ा तभी उनका पतन होने लगा और उसका मंगलमय जन रूप बाह्याडम्बर में तिरोहित हो गया। बुद्ध उच्च कुल में पैदा हुए थे। राजघरानों से उनका सम्बन्ध था, वहाँ उनका आदर होता था, पर उनका मन, वचन और कर्म सदा आम लोगों के साथ रहा। सामाजिक दृष्टि से तिरस्कृत और आर्थिक दृष्टि से शोषित वर्गों को, जिनकी संख्या सबसे ज्यादा थी, उन्होंने सदा ऊपर उठाने का प्रयत्न किया। उच्च वर्ग के शोषण-परक और मिथ्या सामाजिक अभिमान को नष्ट करने का उन्होंने जीवन भर प्रयत्न किया। इसलिए बुद्ध जैसा महा श्रमण यदि मुट्ठी भर अभिजात वर्ग की भाषा में धर्मोपदेश देता तो उनका धर्म जनता तक कैसे पहुँचता ?

जनता तक अपना सन्देश पहुँचाने के लिए ही बुद्ध ने जन-भाषा के माध्यम का आश्रय लिया। विनय पिटक के चुल्लवग्ग में इस विषय पर एक प्रसंग आया है—यमेलु और तेकुल नाम के ब्राह्मण जाति के दो विद्वान् भाई बुद्ध के भिक्षु संघ में शामिल हुए। वे उच्च वर्ण के होने के कारण बुद्ध-वचन को पालि की जगह संस्कृत में करना चाहते थे। अतः बुद्ध के पास जाकर प्रार्थना की, "भन्ते ! इस समय नाना नाम, गोत्र, जाति-कुल के लोग प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं। अपनी-अपनी भाषा में बुद्ध-वचन ग्रहणकर उसे दूषित करते हैं। अच्छा हो भन्ते, हम बुद्ध-वचन को छन्द (वैदिक भाषा) में बना दें।" बुद्ध ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए उन्हें फटकारा और कहा, "भिक्षुओ ! बुद्ध-वचन को छन्द में नहीं करना चाहिये। जो ऐसा करेगा उसे दुष्कृत का अपराध लगेगा। भिक्षुओ ! मैं अनुमति देता हूँ, अपनी-अपनी भाषा में बुद्ध-वचन सीखने की।" इस घटना से हम यह जान सकते हैं कि लोक भाषा के प्रति बुद्ध का कैसा अनुराग था।

त्रिपिटक या अन्य पालि ग्रन्थोंमें जिस तरह की भाषा आज हम पढ़ते हैं उसके विकास में अर्थात् मौजूदा रूप में आने में उसे सैकड़ों वर्ष लगे हैं[1]। बुद्ध ने अपने पीछे लिखित ग्रंथ नहीं छोड़ा। स्थविरवाद के अनुसार, 'बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद ही राजगृह में पाँच सौ विद्वान् भिक्षु एकत्रित हुए और उस संगीति (सभा) में उपालि और आनन्द ने क्रमशः विनय और धर्म का संगायन (पाठ) किया। इस तरह से बुद्ध का उपदेश अधिकृत रूप से निश्चित कर दिया गया।' इसमें अभिधर्म पिटक का नाम नहीं आया है जो विनय पिटक और धम्म (सुत्त) पिटक के साथ त्रिपिटक को पूरा करता है।

सौ वर्ष के बाद विनय (भिक्षु-नियम) सम्बन्धी दस नियमों को निश्चित करने के लिये वैशाली में दूसरी संगीति हुई। यहाँ भी विनय और धम्म (सुत्त) का संगायन हुआ। पर अभिधम्म का उल्लेख इस संगीति में भी नहीं मिलता है।

लगभग सौ वर्ष बाद सम्राट् अशोक के संरक्षण में संघ की परिशुद्धि के लिए तिष्य स्थविर की देख-रेख में तृतीय संगीति हुई। चौथी संगीति कनिष्क के समय में लगभग १०० ई० में हुई जिसकी विशेष जानकारी हमें प्राप्त नहीं है[2]। इन संगीतियों में कितना ऐतिहासिक तथ्य

---

१. कीथ और श्रीमती रीस डेविस। २. जेडेन और कीथ।

है इसका निर्णय करना आज कठिन है। पर इतना तो सत्य है ही कि बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् उनके उपदेशों को सुरक्षित रखने के लिए योग्य शिष्यों ने बैठकर उसे क्रमबद्ध किया। उस समय की प्रथा के अनुसार बुद्ध की शिक्षा के विभिन्न अंगों को विभिन्न भिक्षुओं को मुखाग्र रखने का काम सौंपा गया। जब कालान्तर में इन शिक्षाओं में मेल-मिलाप की मात्रा बढ़ने लगी तब उसकी परिशुद्धि के लिए संगीति (सभा) बैठी।

यद्यपि लिखना उस समय तक भारतीय लोग अच्छी तरह जानते थे, पर उसका अधिक प्रचार या व्यवहार नहीं था। पर सर्वमान्य है कि बुद्ध-परिनिर्वाण के बहुत बाद त्रिपिटिक लिपिबद्ध हुआ। अशोक के शिलालेख के आधार पर कुछ विद्वानों की राय है कि बुद्ध-वचन का कुछ भाग अशोक के समय तक लिपिबद्ध हो चुका था। पर उस लेख के आधार पर लिपिबद्ध होने का कोई पक्का निश्चय नहीं किया जा सकता, अनुमान हम भले करें। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि अशोक के समय तक बिखरे बुद्ध-वचन क्रमबद्ध हो चुके थे और हो रहे थे। बुद्ध ने कोई ग्रन्थ-रचना तो की नहीं। उनके परिनिर्वाण के बाद उनके शिष्यों ने ही उनके उपदेशों का वर्गीकरण किया। इसीलिए सैकड़ों वर्ष तक हम अभिधम्म पिटक का पृथक् अस्तित्व नहीं देखते। दूसरी बात, त्रिपिटक में जो कुछ भी है सब बुद्ध-वचन ही नहीं है, और न सब बुद्ध के समय का ही है।

त्रिपिटक में विनय (भिक्षु-नियम) पिटक का स्थान बहुत ऊँचा है। पर इसमें बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद की भी बहुत सी बातें आ गई हैं। यद्यपि संगीति बुद्ध परि-निर्वाण के चार महीने बाद ही हुई पर उसका वर्णन चुल्लवग्ग में विस्तार से दिया है। थेरगाथा में अशोक के भाई 'वीतसोक' की गाथाएँ उपलब्ध हैं[१]।

आबू के शिलालेख में देवानांप्रिय (अशोक) कहता है:—

भगवता बुधेन भासिते सवे से सुभासिते वा ए चु खो भंते हमियायं दिसेया येवं सधमे।
चिलठितिके होसतीति अलहामि हकं तं वतवे॥
इमानि भंते धंमपलियायानि विनयसमुकसे।
अलियवसानि अनागतभयानि मुनिगाथा मोनेयसूते
उपतिसपसिने ए चा-लाघुलो।

अर्थात्, हे भदन्तगण, जो कुछ भगवान् बुद्ध ने कहा है सो सब अच्छा कहा है। पर भदन्तगण, मैं अपनी ओर से···। हे भदन्तगण, इस प्रकार सद्धर्म चिरस्थायी रहेगा। मैं इन धर्म परियाय (का नाम लिखता हूँ) यथा (१) विनयसमुकसे, (२) अलियवसानि, (३) अनागत भयानि, (४) मुनिगाथा (५) मोनेयसूते, (६) उपसित पसिने, (७) लाघुलोवाद; जिसे भगवान् बुद्ध ने झूठ न बोलने के बारे में कहा है।

प्रसिद्ध विद्वान् स्व० धम्मानन्द जी कोसम्बी की राय में उपर्युक्त ग्रंथ निम्न क्रम से बने हैं—

(१) विनयसमुकसे = धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त
(२) अलियवसानि = अरियवास (अंगुत्तर, चतुक्कनिपात)
(३) अनागत भयानि=अनागत भयानि (अंगु० पञ्चकनिपात)
(४) मुनिगाथा = मुनिसुत्त (सुत्तनिपात)
(५) मोनेयसूते = नालक सुत्त (सुत्तनिपात)
(६) उपतिस पसिने = सारिपुत्तसुत्त (सुत्तनिपात)
(७) लाघुलोवाद = राहुलोवाद (मज्झिमनिकाय)

अशोक के शिलालेखों की भाषा को देखकर कुछ विद्वानों की राय है कि अशोक के समय तक पालिभाषा त्रिपिटक में व्यवहृत भाषा तक नहीं पहुँच पाई थी। इस लिए त्रिपिटक, जो एक सजी-सँवारी भाषा में है, बुद्धोपदेश की मूल भाषा से अनूदित है। कुछ अंशों में यह कथन तर्क-संगत होने पर भी सर्वांश में ठीक नहीं प्रतीत होता। क्योंकि यहाँ अनुवाद का प्रश्न ही नहीं उठता। कारण, बुद्धोपदेश मौखिक था और वह शिष्य-परम्परा द्वारा सैकड़ों वर्षों तक मौखिक ही सुरक्षित रखा गया। "इसे दीघनिकाय कहा जाये और इसे आनन्द के संरक्षण में रखा जाय। भदन्त ! आप इसे अपने शिष्यों में पाठ करें। मज्झिमनिकाय धर्मसेनापति सारिपुत्र के अनुचरों को

---

१. इमस्मिं बुद्धपादे अट्ठारस वस्साधिकानं द्विन्नं वस्ससतानं मत्थके धम्मासोकरञ्ञो कनिट्ठभाता हुत्वा निब्बत्ति। तस्स वीतसोकोति नामं अहोसि।
(वीतसोकत्थेरस्स गाथा वण्णना)

सौंपा जाए[१]।" इस उद्धरण से स्पष्ट है कि प्रथम संगीति में बुद्धोपदेशों के वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया गया और एक-एक भाग एक-एक प्रधान शिष्य और उसकी परम्परा को मुखाग्र रखने के लिये सौंपा गया। त्रिपिटक का मौजूदा वर्गीकरण ई० सन् की दूसरी सदी के पहले नहीं हो पाया होगा।

बुद्ध और महावीर का कार्य-क्षेत्र एक ही था। दोनों समकालीन थे। दोनों ने ही एक लोक-भाषा में उपदेश दिया। पर आज पालि त्रिपिटक और जैन सूत्रों की भाषा में काफी फर्क है। जैन ग्रन्थों की भाषा अर्धमागधी है। इसे जैन मागधी भी कहते हैं। इस अर्धमागधी का पालि और संस्कृत रूप भी देखते चलें तो ठीक रहेः—

अर्धमागधी—सूयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ (सू० १)[२]।

पालि—सुतं मया आवुसो! तेन भगवता एवं अक्खातं इह एकेसं नो सञ्ञा भवति[३]।

संस्कृत—श्रुतं मया, आयुष्मान्! तेन भगवता एवमाख्यातम्—इहैकेषां नो संज्ञा भवति[१]।

इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि अर्धमागधी की समानता, संस्कृत की अपेक्षा पालि से अधिक है। पर दोनों एक समय की और एक जगह की भाषायें कदापि नहीं हो सकतीं। यह तर्क दिया जा सकता है कि यदि कोई मिथिलावासी छपरा या बनारस में आकर मैथिली ही बोले तो स्थानीय लोग समझ तो लेंगे ही, क्योंकि दोनों में अन्तर कम है। इसी तरह सम्भव है कि वैशाली और कपिलवस्तु की भाषा में या वैशाली और मगध की भाषा में थोड़ा बहुत अन्तर हो। यह अन्तर आज भी है ही।

भारत से जब बौद्ध धर्म (अशोक के समय में) लंका पहुँचा तो वहाँ भी त्रिपिटक का अध्ययन-अध्यापन मौखिक ही रहा। भारत में अगर त्रिपिटक लिपिबद्ध किया गया होता तो बौद्ध-प्रचारक लंका में भी उसकी कोई लिखित प्रति अवश्य ले जाते। इसलिये यह संभव नहीं कि बुद्ध के परिनिर्वाण के चार सौ वर्ष बाद तक त्रिपिटक लिपिबद्ध न हो सका हो। लंका के राजा वट्टगामिनी-अभय (१०३-८९ ई० पू०) के समय में भिक्षु-संघ ने राजा से कहा, 'महाराज, समूचा त्रिपिटक और अट्ठकथा आजतक गुरु-परंपरा से मौखिक ही चला आ रहा है। समय आएगा जब इनका नाश हो जाएगा। इसीलिये त्रिपिटक और अट्ठकथा को लिपिबद्ध कर लेना चाहिये[१]।'

वट्टगामिनी के समय में लंका में अकाल पड़ा और उसके बाद ब्राह्मण तिष्य ने विद्रोह किया। अकाल और राजनैतिक उथल-पुथल के समय अनेक भिक्षु, जो त्रिपिटक को मुखाग्र रखते थे, मर गये। बहुत से भिक्षुओं को मजबूर होकर भिक्षु-वेष छोड़ना पड़ा। जो भिक्षु-संघ के नियमों का पालन करते हुये उसी के साथ चिपके रहे उन्हें अपने धर्म-ग्रन्थों की रक्षा की चिन्ता लगी। इसलिये मातले के समीप अलुविहार में उन्होंने त्रिपिटक को लिपिबद्ध किया। त्रिपिटक के बाद अट्ठकथा (अर्थ-कथा) भी लिपिबद्ध कर ली गई। प्रथम शताब्दी के प्रारम्भ होने तक यह काम सम्पन्न हुआ[२]। "पूर्व काल से पालि-त्रिपिटक और उसकी अट्ठकथा महामतिमान् भिक्षु कंठाग्र करके ही (सुरक्षित) लाये थे। इस (वट्टगामिनी अभय) के समय प्राणियों की हानि होते देख भिक्षु एकत्र हुए और धर्म की चिर-स्थिति के लिए उसे पुस्तक-रूप में लिख लिया गया[३]।"

वट्टगामिनी अभय ने त्रिपिटक को लिपिबद्ध करने के लिए एक भवन निर्माण कराया। उसमें लिखने के उपकरण तथा अन्य सामग्री एकत्र करवा दिए। तब जानकार भिक्षुओं ने त्रिपिटक को लिपिबद्ध करना प्रारम्भ किया। यह काम एक वर्ष में पूरा हुआ[४]। त्रिपिटक के एक-एक अंग के जानकार पहले सभा में उसे पढ़ते थे और फिर उसे लिपिबद्ध किया जाता था। सबसे पहले विनय पिटक लिखा गया, तब सुत्तपिटक, फिर अभिधम्मपिटक

१. सद्धम्मसंगह
२. आचारांगसूत्र, जैन सा० समिति, उज्जैन द्वारा प्रकाशित
३. पालि महाव्याकरण।

१. सद्धम्मसंगह।
२. अर्ली हिस्ट्री आफ सीलोन-मेंडिस
३. महावंश-अनु० आनन्द कौसल्यायन
४. सद्धम्मसंगह

और अन्त में अट्ठकथा[५]। जो भिक्षु विनय को मुखाग्र रखते थे उन्हें विनयधर और जो सुत्तपिटक को मुखाग्र रखते थे उन्हें सुत्तधर कहते थे।

बुद्ध-वचन जिस ग्रंथ-समूह में संगृहीत हैं उन्हें 'त्रिपिटक' कहते हैं। त्रिपिटक का अर्थ है तीन पिटारी जो इस प्रकार हैं:—

१. सुत्तपिटक—उपदेशों का संग्रह।

२. विनयपिटक—भिक्षु-संघ के नियमादि का संग्रह।

३. अभिधम्मपिटक—दार्शनिक विवेचन।

१. सुत्तपिटक पाँच निकायों में विभक्त है,—

(१) दीघनिकाय, (२) मज्झिमनिकाय, (३) संयुत्त निकाय, (४) अंगुत्तरनिकाय और (५) खुद्दकनिकाय।

खुद्दकनिकाय में १५ ग्रन्थ हैं। यथा:—

(१) खुद्दकपाठ, (२) धम्मपद, (३) उदान, (४) इतिवुत्तक, (५) सुत्तनिपात, (६) विमानवत्थु, (७) पेतवत्थु, (८) थेरगाथा, (९) थेरीगाथा, (१०) जातक, (११) निद्देश, (१२) पटिसम्भिदामग्ग, (१३) अपदान, (१४) बुद्धवंस और (१५) चरियापिटक।

२. विनयपिटक निम्नलिखित भागों में विभक्त है:—

(१) महावग्ग, (२) चुल्लवग्ग, (३) पाराजिका, (४) पाचित्तिय और (५) परिवार।

३. अभिधम्मपिटक में सात ग्रंथ हैं—

(१) धम्मसंगणी, (२) विभंग, (३) धातु कथा (४) पुग्गलपञ्ञत्ति, (५) कथावत्थु, (६) यमक और (७) पट्ठान।

ऊपर के ग्रन्थ मूल त्रिपिटक के हैं। इन पर अट्ठकथाएँ लिखी गई हैं। अट्ठकथा (अर्थकथा) का मतलब है अर्थ-सहित कथा। त्रिपिटक को समझने के लिए भाष्य की आवश्यकता पड़ती थी। कहा जाता है कि महेन्द्र स्थविर जब बुद्ध-शासन की स्थापना के लिए सिंहल गए, तब वे त्रिपिटक के साथ उसकी अर्थकथाएँ भी ले गये थे[१]। हो सकता है कि अट्ठकथाओं की रचना सिंहल में ही हुई हो; लेकिन उनको अधिक प्राचीन बनाने के लिए महेन्द्र से उनका सम्बन्ध जोड़ दिया गया हो। आरम्भ में त्रिपिटक के सूत्रों को समझाने के लिए, उनके अर्थों को अधिक स्पष्ट करने के लिए, उनके साथ कथाएँ कहने की भी परिपाटी रही होगी, जिन्हें पीछे लेखबद्ध कर लिया गया। सिंहल अर्थकथाओं का पीछे आचार्य बुद्धघोष द्वारा पालि रूपान्तर हुआ। सिंहल में वे केवल सिंहलवासियों के काम की थीं, पालि में होने से वे अन्य देशवासियों के लिए भी उपयोगी हुईं[२]। वे रूपान्तर इतने सुन्दर बने कि उनका आदर त्रिपिटक के समान होने लगा[३]। जो अट्ठकथाएँ आज प्राप्त हैं वे इस प्रकार हैं—

१. समन्तपासादिका = विनय अट्ठकथा।

२. सुमंगल विलासिनी = दीघनिकाय अट्ठकथा।

३. पपंचसूदनी = मज्झिमनिकाय अट्ठकथा।

४. सारत्थप्पकासिनी = संयुत्तनिकाय अट्ठकथा।

५. मनोरथपूरणी = अंगुत्तरनिकाय अट्ठकथा।

६. खुद्दकनिकाय के ग्रन्थों पर भिन्न-भिन्न नामों से अट्ठकथाएँ।

७. अट्ठसालिनी = धम्मसंगणी पर अट्ठकथा।

८. सम्मोह विनोदनी = विभंग अट्ठकथा।

९. पञ्चप्पकरण अट्ठकथा, जिसमें निम्नलिखित पाँच अट्ठकथाएँ हैं—

(१) धातुकथाप्पकरण अट्ठकथा।

(२) पुग्गल पञ्ञत्तिप्पकरण अट्ठकथा

(३) कथावत्थु अट्ठकथा

(४) यमकप्पकरण अट्ठकथा

(५) पट्ठानप्पकरण अट्ठकथा

त्रिपिटक पर इतनी अट्ठकथाएँ तैयार हुईं, फिर भी विद्वानों को संतोष न हुआ। बारहवीं सदी में लंका के राजा पराक्रमबाहु महान् के राज्यकाल में अट्ठकथाओं पर अत्थवण्णना तैयार की गई। सद्धम्मसंगह नाम के ग्रंथ के अनुसार इनकी संख्या आठ है और ये एक वर्ष में पूरी की गईं। अत्थवण्णना (अर्थ और वर्णन) को पराक्रमबाहु महान् की संरक्षता में महाकाश्यप स्थविर ने मागधी (पालि) में प्रस्तुत किया। विवरण इस प्रकार है:—

५. दीपवंश

१. बुद्धघोष कृत चारों निकायों की अट्ठकथाओं में आरम्भमें ही इस प्रकार आता है:—सीहलदीपं पन आभता वसिना महामहिन्देन, ठपिता सीहल भासाय दीपवासीनमत्थाय।

२. भदन्त आनन्द कौसल्यायन। ३. महावंश।

१. सारत्थदीपनी = विनय अट्ठकथा, समन्तपासादिका की अत्थवण्णना।

२. सारत्थमञ्जूसा (१) = दीघनिकाय की अट्ठकथा, सुमंगल-विलासिनी की अत्थवण्णना।

३. सारत्थमञ्जूसा (२) = मज्झिमनिकाय की अट्ठकथा, पपञ्चसूदनी की अत्थवण्णना।

४. सारत्थमञ्जूसा (३) = संयुत्तनिकाय की अट्ठकथा, सारत्थप्पकासिनी की अत्थवण्णना।

५. सारत्थमञ्जूसा (४) = अंगुत्तरनिकाय की अट्ठकथा, मनोरथपूरणी की अत्थवण्णना।

६. परमत्थप्पकासिनी (१) = धम्मसंगणी की अट्ठकथा, अट्ठसालिनी की अत्थवण्णना।

७. परमत्थप्पकासिनी (२) = विभंग की अट्ठकथा, सम्मोहविनोदनी की अत्थवण्णना।

८. परमत्थप्पकासिनी (३) = अभिधम्मपिटक के शेष पाँच ग्रंथों की अट्ठकथा, परमत्थदीपनी की अत्थवण्णना।

सद्धम्मसंगह के नवें अध्याय के अनुसार महास्थविरों द्वारा तैयार की हुई कुछ और पुस्तकें इस प्रकार हैं :—

पुस्तक	लेखक
१. विसुद्धिमग्ग	बुद्धघोस
२. कंखावितरणी या पातिमोक्ख की अट्ठकथा	,,
३. खुद्दकसिक्खा	धम्मसिरि
४. अभिधम्मावतार	बुद्धदत्त
५. परमत्थविनिच्छय	अनुरुद्ध
६. अभिधम्मत्थसंगह	,,
७. सच्चसंखेप	आनन्दत्थेर का एक शिष्य
८. खेम	खेम
९. संघनन्दी	कच्चायन
१०. संघनन्दीटीका	विमलबोधि और ब्रह्मपुत्र
११. रूपसिद्धि	बुद्धप्पिय
१२. अभिधानप्पदीपिका	मोग्गल्लान
१३. जिनालंकार	बुद्धरक्खित
१४. जिनचरित	मेधांकर
१५. परमत्थमञ्जूसा	धम्मपाल
१६. विनयसंगह	सागरमति
१७. निस्सयत्थकथा	महाबोधि
१८. मुखमत्थकथा	,,
१९. परमत्थदीपनी	धम्मपाल
२०. सुबोधालंकार	संघरक्खित
२१. वुत्तोदय	,,
२२. खुद्दकसिक्खाटीका	,,
२३. सम्बुद्धवण्णना	,,
२४. विनयविनिच्छय	बुद्धसीह
२५. कंखावितरणीटीका	बुद्धनाग
२६. परमत्थदीपनी	धम्मपाल
२७. अभिधम्मत्थसंगहटीका	सारिपुत्त के एक शिष्य
२८. धम्मपदट्ठकथा	बुद्धघोस
२९. नेत्तिप्पकरण	कच्चायन
३०. सारत्थसालिनी	सारिपुत्त के एक शिष्य

पालि-साहित्य का एक संक्षिप्त परिचय देने के लिये ही ऊपर कुछ पुस्तकों के नाम दिये गए हैं। बौद्धधर्म एकदेशीय तो है नहीं। इसलिए पिछले ढाई हजार वर्षों में भारत, लंका, बर्मा और स्याम आदि देशों में त्रिपिटक की टीका, अनुटीका के अतिरिक्त सैकड़ों ग्रन्थों की रचना हुई और आज भी हो रही है।

त्रिपिटक में बुद्ध-वचन को नौ भागों में विभक्त किया गया है, जो इस प्रकार हैं—

१. सुत्त—संस्कृत बौद्ध साहित्य में इसे सूत्र कहा गया है। पर इस 'सूत्र' से पाणिनी का सूत्र नहीं समझना चाहिए। इन्हें सूक्त कह सकते हैं। ये बड़े और छोटे भी हैं। इनमें अंगुत्तर निकाय के छोटे-छोटे सुत्त और सुत्तनिपात के मंगलसुत्त, रतनसुत्त, नालकसुत्त भी सम्मिलित हैं।

२. गेय्य—अलगद्दूपमसुत्त की अट्ठकथा के अनुसार सुत्तों में जो गाथाओं का भाग है वह गेय्य है। संयुत्त-निकाय की सब गाथाएँ (पद्य भाग) गेय्य है[१]। प्रतीत

---

१. सद्धम्मसंगह

होता है कि किसी खास तरह की गाथाओं की ही संज्ञा गेय्य रही होगी[१]।

३. वेय्याकरण—सारा अभिधम्मपिटक और बिना पद्य के सुत्त को वेय्याकरण समझना चाहिए। किसी सुत्त का विस्तारपूर्वक अर्थ करने को वेय्याकरण कहते हैं[२]।

४. गाथा—धम्मपद, थेरगाथा, थेरीगाथा और सुत्त-निपात का वह भाग जिसमें सुत्त नहीं है और जो पूरा पद्य में है उसे गाथा कहते हैं[३]। आचार्य बुद्धघोष ने भी प्रथम तीन को गाथा माना है।

५. उदान—इसका अर्थ है उल्लास में कहे गये वचन। खुद्दकनिकाय के 'उदान' नामक ग्रन्थ के अतिरिक्त और भी जगह-जगह उदान (उल्लास वाक्य) आये हैं।

६. इतिवुत्तक—इसका अर्थ है 'इस प्रकार कहा हुआ'। इस तरह कहे हुए १२४ इतिवुत्तकों का संग्रह खुद्दकनिकाय के इतिवुत्तक नामक ग्रन्थ में है।

७. जातक—अपण्णक से प्रारम्भ होकर साढ़े पाँच सौ जातक (जन्म की कथाएँ) हैं। साँची, भरहुत, अजन्ता आदि में जातक की कथाएँ चित्रित की गई हैं। विद्वानों ने इन चित्रों का काल १५० ई० पू० के आस-पास माना है।

(८) अब्भुत (अद्भुत)—असाधारण बातें। अब्भुत धम्मवाला कोई पृथक् ग्रन्थ आज प्राप्य नहीं है। 'भिक्षुओ, आनन्द में ये चार अद्भुत बातें हैं।'—इस तरह के वाक्यवाले तमाम अंश अब्भुत हैं।

यथा—चत्तारो मे भिक्खवे, अच्छरिया अब्भुता धम्मा आनन्देति आदि नयप्पवत्ता सब्बेपि अच्छरियब्भुतधम्मपटि-संयुत्ता सुत्तन्ता अब्भुतन्ति वेदितब्बा।

(९) वेदल्ल—प्रश्नोत्तर के रूप में जितने भी सुत्त हैं। सभी वेदल्ल हैं[४]। उदाहरणार्थ मज्झिमनिकाय के महा-वेदल्ल और चुल्लवेदल्ल आदि।

सम्भव है कि कभी इन्हीं नौ वर्गों के आधार पर त्रिपिटक के नौ भाग रहे हों। पर आज तो इस वर्गीकरण के आधार पर बहुत कम ग्रन्थ प्राप्य हैं। दूसरे, तीसरे, आठवें और नवें का तो कोई पृथक् अस्तित्व है नहीं।

नागरी लिपि में अभी तक पालि त्रिपिटक के बहुत कम ग्रन्थ छप पाये हैं। हिन्दी अनुवाद भी कुछ ही ग्रंथों के हो सके हैं। हिन्दी की अपेक्षा बँगला में इस क्षेत्र में ज्यादा काम हुआ है। पालि बौद्ध साहित्य की अपेक्षा संस्कृत बौद्ध साहित्य अधिक विस्तृत है। दोनों का तुलना-त्मक अध्ययन बहुत दिलचस्प और काम का है। आशा है निकट भविष्य में ही भारतीय विद्वानों का ध्यान इस ओर जायेगा और हम इन्हें मूल नागरी लिपि में तथा अनुवाद रूप में राष्ट्रभाषा में पढ़ सकेंगे। लन्दन की 'पालि टेक्सट सोसाइटी' लगभग ६०-७० वर्षों से पालि साहित्य पर काम कर रही है और अधिकांश पालि ग्रंथों का रोमन में प्रकाशन हुआ है। अनुवादकार्य भी प्रायः बीसवीं सदी के प्रारम्भ में ही लगभग समाप्त हो चुका था। सिंहल, बर्मा और स्याम में पालि त्रिपिटक के अनेक संस्करण वहाँ की लिपि में प्रकाशित हो चुके हैं। श्री राहुलजी ने एक बार कहा था कि यदि किसी को एक ही भाषा में सभी देश के बौद्ध ग्रन्थों को पढ़ना हो तो विधर्मी कहे जानेवाले रूसी लोगों की भाषा—रशियन को ही सीखना होगा। सुनते हैं तुलसीकृत रामायण का भी रूसी भाषा में अनुवाद हुआ है। पर भारत की राष्ट्रभाषा कही जानेवाली हिन्दी में वैदिक, पौराणिक, बौद्ध, जैन तथा अन्य प्राचीन साहित्य के अनुवाद की कौन कहे, पढ़ने योग्य मूल का भी प्रकाशन बहुत कम हो पाया है। इन प्राचीन ग्रन्थों में केवल धर्म ही नहीं है, बल्कि इन्हीं ग्रन्थों में भारत के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि जीवन का इतिहास छिपा है। आशा है, अब हमारा ध्यान इस ओर जाएगा।

---

१. हिन्दी जातक की भूमिका-भदन्त आनन्द कौसल्यायन २. सद्धम्मसंगह ३. सद्धम्मसंगह।

४. सद्धम्मसंगह।

एक श्रद्धाञ्जलि

मेरी माँ

भिक्षु अश्वघोष, नेपाली

[नेपाल की महोपासिका स्वर्गीया लक्ष्मीमाया एक आदर्श बौद्ध महिला थीं। उन्होंने अपने एक पुत्र तथा दो पुत्रियों को धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिये प्रेरित कर स्वयं भी शेष सम्पूर्ण जीवन धर्म-कार्य में ही लगा दिया। यद्यपि उनकी धार्मिक प्रवृत्ति एवं धर्मपरायणता के कारण उन्हें अनेक कष्ट भोगने पड़े, उन्हें घर से अलग भी रहना पड़ा, किन्तु वह अपने निश्चित मार्ग पर दृढ़तापूर्वक सदा चलती ही रहीं। उनका घर नेपाली भिक्षु-संघ के लिये विशाखा के घर के समान था। वह नेपाल में इस युग की विशाखा ही थीं। अन्तिम दिनों वे अष्टशील पालन करती थीं और भिक्षु-संघ को दान-उपदान देकर धार्मिक जीवन व्यतीत करती थीं। गत १५ फरवरी को ५८ वर्ष की आयु में भिक्षुओं को दान देकर बुद्ध-मन्दिर में जाते समय अकस्मात् उनकी हृदयगति बन्द हो गई थी और उन्होंने सदा के लिये अपनी आँखें बन्द कर ली थीं—सम्पादक]

"घर की देखभाल और बच्चों के पालन-पोषण का क्रम स्त्रियों को कोई सिखाता नहीं और न तो उन्हें किसी के उपदेश की ही आवश्यकता होती है।"—यह अपनी माँ की कार्य-कुशलता तथा गृह-पालन-शक्ति को देखकर मेरे मन में उत्पन्न हुआ अपना विचार है। "घर के पालन-पोषण करने वाली स्त्री में राजनीतिक शक्ति या पटुता नहीं होती"—ऐसा भी तर्क नहीं किया जा सकता।

यद्यपि मेरे घर पर पिता का पूर्ण अधिकार है, किन्तु गृह-संरक्षिका तो मेरी माँ ही थीं। मेरे घर की गृह-लक्ष्मी भी तो वही थी। नाम भी था लक्ष्मीमाया। पिता का कार्य केवल कमाना मात्र है और सब काम माँ के हाथ में था। माँ ही घर की पूर्ण-स्वामिनी भी थी। माँ के विश्वास, प्रेम, ईमानदारी और गृह-संरक्षण में पटु होने के कारण ही ऐसा था। मुझे स्मरण है कि चौदह-पन्द्रह वर्ष पूर्व मेरी माँ के हृदय में धर्म के प्रति उतनी आस्था न थी। माँ में एक बड़ी कमी थी, वह जो कुछ कहती थी उसे सभी को मानना होता था और वह किसी की भी बात अपने विचार के विरुद्ध नहीं सुन सकती थी। इसके कई दृष्टान्त हैं।

जब मैं ग्यारह-बारह वर्ष का था। मेरे बड़े भाई का विवाह होने वाला था। हमारे यहाँ ऐसी प्रथा-सी है कि बड़े भाई के विवाह के साथ ही बड़ी-छोटी बहिनों का भी विवाह कर देते हैं। मैं अपनी माँ का सबसे छोटा पुत्र हूँ। मेरे पिता ने मेरी कम अवस्था के कारण मेरे विवाह का विचार नहीं किया। किन्तु माँ का मन मेरे विवाह के बिना लगता ही न था। वह मेरे विवाह के लिए बहुत उत्सुक रहा करती थी। वह प्रायः कहा करती थी "इस छोटे लड़के को अकेले ही क्यों रखें?" उसने एक दिन कन्या की तलाश के लिये अगुआ को भेज दिया और जन्म-पत्र मँगाया। जन्मपत्र देखने पर जब ग्रह आदि का योग नहीं मिला, तब पिता ने जन्म-पत्र फेंक दिया। किन्तु माँ कब मानने वाली थी। हठ कर आखिर मुझे भी पाणि-ग्रहण-सूत्र में बाँध ही दिया!

× × × ×

एक दिन की बात है, तिब्बत से एक बहुत बड़े अवतारी लामा आये हुए हैं—ऐसी गुप्त रूप में चर्चा हो रही थी। बहुत-सी स्त्रियाँ झुण्ड-झुण्ड होकर लामा का दर्शन करने जा रही थीं। माँ भी उनके साथ गई और दीक्षा लेकर आई। नारी के मन की श्रद्धा तो ही है! बस, उस समय से माँ का हाथ कभी जप-माला से खाली नहीं रहा। पीछे मुझे भी उसने दीक्षित कराया।

तब से मेरे घर का दूसरा ही अध्याय प्रारम्भ हो गया ऐसा कहना अत्युक्ति न होगी। घर में पद्मसम्भव आदि देवताओं का पूजा-गृह होने पर भी माँ अलग दूसरे पूजा-

गृह का निर्माण करने लगी। कभी-कभी 'छो-पूजा'* भी होने लगी। उस पूजा में प्रयुक्त होनेवाली बहुत-सी वस्तुओं में से माँ को दो वस्तुयें पसन्द न थीं, वे थीं मांस और सुरा। इन दोनों से माँ को बड़ी घृणा थी। इसलिये माँ की श्रद्धा उस पूजा-पद्धति से धीरे-धीरे हटने लगी।

× × ×

एक दिन एक भिक्षु एक काला पात्र लेकर भिक्षाटन के लिये आ रहे थे। माँ की दृष्टि उस शान्ति-मूर्ति की ओर जा लगी। उसने एक दिन उस भिक्षु को निमन्त्रित करके बड़ी श्रद्धा के साथ अपने घर में भोजन कराया और उपदेश सुना। तब से स्थविरवाद की ओर उसका झुकाव बढ़ने लगा। मुझे स्मरण है कि मैं भी माँ के पीछे-पीछे जाया करता था। नेपाल में भोजन-दान केवल खीर का ही करते हैं, किन्तु मेरी माँ वैसा न कर नाना प्रकार के भोजन बना लंका, बर्मा, स्याम आदि बौद्ध देशों में दिये जाने वाले भोजन-दान के सदृश ही उन्हें भोजन कराती थी। यह देखकर मेरे मन में विचार हुआ—'अरे, जब नमकीन खा सकते हैं, तब तो मैं भी भिक्षु बनूँगा।'

माँ की धार्मिक प्रवृत्ति के प्रबल होने के कारण मैं भी भिक्षु लोगों का सत्संग करने लगा। धीरे-धीरे मेरे मन पर विरक्ति का प्रभाव पड़ने लगा और मुझे भी अपने अनेक उद्देश्यों के साथ भिक्षु होने की अभिलाषा हुई। फलतः माँ ने मुझे भिक्षु-संघ को सौंप दिया और मैं संघ में सम्मिलित हो गया। प्रव्रज्या के समय माता-पिता की आज्ञा की आवश्यकता होती है। मुझे उसके लिए राष्ट्र-पाल-व्रत नहीं करना पड़ा, क्योंकि माँ ही ने तो मुझे भिक्षु-संघ को सौंपा था। पिता से भी मैंने मन से तो नहीं, वाणी से आज्ञा ले ही ली। अपने दूसरे लोगों से भी आज्ञा लेने में कठिनाई नहीं हुई थी।

चार-पाँच वर्ष के अन्दर मानव-हृदय का कितना बड़ा परिवर्तन हो सकता है! पहले जिस माँ ने अपनी इच्छा से विवाह कर दिया, उसी ने ही चार वर्ष बाद ब्रह्मचारी बना दिया। इसे श्रद्धा ही का प्रभाव कहना चाहिये।

× × ×

नवम्बर १९५१ की बात है। मैं लंका में था। अग्र-श्रावक-धातु-स्वागत-समिति का निमन्त्रण-पत्र मिला। धातु-यात्रा में सम्मिलित होने तथा नेपाल-दर्शन की इच्छा ने मुझे लंका से नेपाल आने के लिए बाध्य किया। मैं अपने मित्र काश्यप के साथ नेपाल चला आया। इस बार जब मैं अपने घर के पास पहुँचा और घर को ऊपर से नीचे तक देखा, तो घर कुछ बड़ा-सा जान पड़ा। अन्दर जाने पर देखा कि जिस द्वार से मैं उछलता-कूदता अन्दर जाता था, वह अब छोटा हो गया था। मुझे झुक कर अन्दर जाना पड़ा। अन्दर जाने पर देखा कि मेरे पिता एक आसन पर बैठे थे, उनके पास कुछ ग्रन्थों की पाण्डु-लिपियाँ और कतिपय पत्र-पत्रिकायें पड़ी थीं, जिनसे वे उदास होने पर अपना मन बहलाया करते थे। किन्तु, मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि वहाँ माँ के रहने का कोई लक्षण ही नहीं दिखाई दिया। मैंने पूछा 'माँ कहाँ है?'

'उस ओर है।' पिता ने उदास होकर कहा।

'उस ओर क्यों है?'

"वह आराम से अलग बैठना चाहती है और अष्ट-शील पालन करती है।"

यह सब सुनकर मैं विस्मित-सा हो गया। हँसी-रोदन के असमंजस ने मुझे आ घेरा। अब मुझे स्पष्ट ज्ञात हो गया कि मेरा घर बड़ा-सा क्यों दिखाई दिया था।

आठ वर्ष के भीतर मेरा गृह-चक्र काफी घूम चुका था। मेरी दो छोटी बहिनों को भी माँ ने वैराग्य की भावना से ओतप्रोत कर अनागारिका बना दिया था। 'चाचा! मैं भी देवता बनूँ' कहने वाला मेरे बड़े भाई का पुत्र भी सदा के लिये घर सूना कर चुका था! अन्य दो बच्चे उसके अभाव में आ चुके थे। घर का वाता-वरण अच्छा नहीं दिखाई देता था। अच्छा दिखाई भी देता कैसे? जब घर की संरक्षिका माँ ही घर में नहीं थी। ऐसा जान पड़ता था मानो गृह-लक्ष्मी भी माँ के ही साथ चली गई थी। ठीक ही कहा है—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता'।

मैं माँ के दर्शनार्थ उसके पास गया। माँ रुग्णावस्था में बिस्तरे पर पड़ी थी, किन्तु मेरे पहुँचते ही रोग ने विदाई ली। माँ का हृदय पुत्र-स्नेह से भर गया। कुशल-

*तिब्बत की एक विशेष पूजा-विधि।

मंगल पूछने के बाद पिता की बातें सुनाते हुए मैंने कहा—'माँ, ऐसे अलग रहना उचित नहीं है न ?'' माँ ने आँसुओं के साथ अपना हृदय खोल कर दिखाया। सब बात स्पष्ट हो गई। आज मैंने माँ को भलीभाँति पहचाना।

"सुरा बनाने के निमित्त चावल को सड़ाने के काम को बिल्कुल ही बन्द करने के लिये मैंने बहुत प्रयत्न किया, दूसरे लोगों ने तो मेरी बात मानी, किन्तु घर के लोगों ने ही मेरी बात की परवाह न की। और नहीं तो उल्टे ही कहने लगे कि मेरी धार्मिक प्रवृत्ति एवं कार्यों से ही घर की परिस्थिति बिगड़ रही है। यह बात मुझे असह्य थी। इसलिये घर के लोगों से दूर रहना ही मेरे लिये उत्तम था।'' माँ ने आँसू-भरे नेत्रों के साथ कहते हुए एक दीर्घ साँस ली।

× × ×

२० फरवरी १९५३ को सारनाथ में मुझे नेपाल से एक पत्र प्राप्त हुआ। पत्र को पढ़कर मेरे पृथक्-जन हृदय को अत्यन्त मार्मिक आघात पहुँचा। मेरे घर का सर्वाधिक प्रकाशमान प्रदीप अकस्मात् १५ फरवरी १९५३ को सदा के लिये बुझ गया! जिस माँ के गुणों को तथागत ने अनन्त कहा है, वह वात्सल्य-प्रेम, स्नेह एवं ममता की प्रतिमूर्ति इस मर्त्यलोक के विविध कष्टों से मुक्त हो गई।

अनिच्चा वत सङ्खारा उप्पादवय-धम्मिनो।
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं उपसमो सुखो॥

सभी संस्कार अनित्य हैं। उत्पन्न और लय होने के स्वभाव वाले हैं। वे उत्पन्न होकर लय हो जाते हैं। उनका शान्त हो जाना ही सुख है।

भगवान् बुद्ध ने कहा है—'मरणं तं हि जीवितं' अर्थात् जीवन मृत्यु पर्यन्त है। किन्तु, उस आकस्मिक वज्रपात के समय इस वचन का मेरे हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पुनः स्मरण हो आया—

अनब्भीतो ततो आग अनुञ्ञातो इतो गतो।
यथागतो तथागतो का तत्थ परिदेवना॥

बिना बुलाये वहाँ से आया और बिना अनुमति के ही वहाँ से चला गया। जैसे वह आया, वैसे ही चला गया, उसके लिये फिर विलाप कैसा ?

इस तथागत-वाणी को स्मरण करके भी माँ की स्नेह-मूर्ति को नहीं भुला सका। वृद्धा होने पर भी जो सदा प्रफुल्ल-वदन रहती थी, जिसके केश बिखरे रहते थे, जिसने बचपन में मुझे दूध-पिलाया, बड़े लाड़-प्यार से पालन-पोषण किया और अन्त में गृह-बन्धनों से छुड़ाकर धर्म में लगाया, वह अनन्त-गुण वाली माँ मेरी आँखों के सामने आकर बैठी-सी जान पड़ने लगी। मेरे अन्तस्थल में 'माँ' की गूँज गुँजित हो उठी। 'माँ' यह कितना प्यार और ममता-भरा शब्द है—यह भी मुझे उसी दिन जान पड़ा। उस स्नेह-मूर्ति के लिये जो-जो इच्छायें मेरे मन में थीं, वह वैसे ही रह गईं, अब भला वह कब पूर्ण होंगी ? अब उसकी पुण्यस्मृति को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने तथा पुण्यानुमोदन करने के अतिरिक्त और क्या कर सकता ? मेरी उस श्रद्धामयी माँ को निर्वाण-सुख प्राप्त हो।

तानसेन, बुटौल, तथागत की जन्मभूमि लुम्बिनी और परिनिर्वाणभूमि कुशीनगर का परिचय दिया गया है। इस प्रकार यह यात्रा १ मार्च'४८ को सारनाथ से प्रारम्भ होकर मई मास में कुशीनगर पहुँच कर समाप्त हुई है। यह ग्रन्थ कितना उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है, यह तो इसके परिच्छेदों के नामों से ही स्पष्ट हो जाता है। इस ग्रन्थ को लिखने में लेखक ने बड़ा परिश्रम एवं अध्ययन किया है। हिन्दी में जहाँ तक हमें ज्ञात है, अभी तक ऐसा एक भी ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है। इस ग्रन्थ से एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हुई है। नेपाल जानेवाले व्यक्तियों के लिए तो यह ग्रन्थ परमोपयोगी सिद्ध होगा। नेपाल सम्बन्धी चित्रों से सुसज्जित, रंगीन आवरणसे युक्त यह यात्रा-ग्रन्थ हिन्दी साहित्य को एक अनुपम देन है।

बौद्ध-जगत्

धर्मपाल जयन्ती सांस्कृतिक जयन्ती

१७ सितम्बर को सायंकाल ४ बजे सारनाथ के मूल-गन्धकुटी विहार में हिन्दू विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के अध्यक्ष डाक्टर बी० एल० आत्रेय के सभापतित्व में में धर्मपाल जयन्ती मनायी गयी। भिक्षु सद्धातिस्स के स्वागत भाषण के पश्चात् प्राइमरी स्कूल के छात्रों ने जय-मंगल गाथा का गान किया। भिक्षु संघरत्न ने पंचशील दिया तथा कमलापति त्रिपाठी आदि के आए शुभ-सन्देशों को पढ़कर सुनाया। तदुपरान्त भिक्षु धर्मरक्षित, कैप्टन छिब्बर, श्री विजय श्रीवास्तव एवं लद्दाख के लामा लोब-ज़न के भाषण हुए। सभी वक्ताओं ने अनागारिक धर्मपाल जी के कार्यों का वर्णन करते हुए उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

भिक्षु धर्मरक्षित ने कहा कि हर वर्ष हम धर्मपाल जयन्ती मनाते हैं, किन्तु जिस रूप में हमें मनाना चाहिए वैसा नहीं मना पाते। हमें धर्मपाल जयन्ती को सांस्कृ-तिक जयन्ती के रूप में मनाना चाहिए। आज के दिन कम से कम एक बौद्धधर्म के ग्रन्थ को प्रकाशित कर जनता में वितरित करना चाहिए तथा धर्मपाल जी की स्मृति में धर्मपाल-स्मारक-स्तूप का निर्माण होना चाहिए। स्तूप-निर्माण की हमारी सनातन परम्परा है, जिसकी उपेक्षा करना हमें उचित नहीं।

बुद्धधर्म सनातन है

सभापति ने अपने भाषण में कहा कि बुद्धधर्म साम-यिक नहीं है। यह सनातन एवं अमिट धर्म है। बुद्धधर्म की शिक्षायें मनुष्य-मात्र के लिए हैं। उन्हीं से मनुष्य का कल्याण होगा। दुःखों से मुक्ति पाने के लिए बुद्धधर्म की सदा ही आवश्यकता रहेगी। जब मनुष्य कष्ट से छूटना चाहेगा, तब उसे बुद्ध की शरण जाना होगा। बुद्ध की शिक्षा सार्वभौमिक एवं सर्वकालिक है। अब वह समय आ गया है जब कि पुनः बड़े वेग से संसार में बुद्ध शिक्षा का प्रसार होगा।

प्रस्ताव

भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा प्रस्तुत इस प्रस्ताव का सर्व-सम्मति से समर्थन हुआ——

'यह अधिवेशन उत्तर प्रदेशीय सरकार के शिक्षा विभागके अधिकारियों का ध्यान अपने इस प्रस्तावकी ओर दिलाता है कि देश के समक्ष आज भारतीय संस्कृति के विस्तार का प्रश्न उपस्थित है, इसकी पूर्ति के लिये पालि के उदार साहित्य का विस्तार होना चाहिए। यह तभी सम्भव होगा जब कि सरकार अपनी शिक्षा में इसे उच्च-तम स्थान प्रदान करे। इस दिशा में पहला प्रयत्न बनारस गवर्नमेंट संस्कृत कालेज परीक्षा में पालि-प्रवेश से किया जाय। संस्कृत के साथ पालि के सन्निवेश का यह प्रस्ताव विगत अनेक अधिवेशनों के द्वारा किया जा चुका है और वहाँ के अधिकारियों ने इसकी अनिवार्यता भी मानी है, परन्तु आज तक इसका कोई फल नहीं हुआ। आशा है सरकार इस ओर शीघ्र ध्यान देगी।'

छात्रों की व्याख्यान प्रतियोगिता में क्रमशः गंगाधर चौबे, जटाशंकर पाण्डेय और रामदेव मौर्य पुरस्कृत हुए। शारदा देवी एवं हरीराम को विशेष पुरस्कार दिये गये।

भिक्षु संघरत्न के धन्यवाद देने एवं भिक्षुओं द्वारा सूत्रपाठ करने के उपरान्त सभा का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

दोपहर में भिक्षु संघ को भोजन दान दिया गया। धर्मपाल जी की समाधि पर पुष्पाहार चढ़ाये गए। आग-न्तुकोंको प्रीति-पेय दिया गया तथा रात्रि में प्रदीप-पूजा कर स्वर्गीय अनागारिक जी के लिए पुण्यानुमोदन किया गया।

साँची में स्कूल तथा अस्पताल—भोपाल सरकार ने साँची में एक मिडल स्कूल तथा एक अस्पताल खोलने का निश्चय किया है। स्कूल तथा अस्पताल के नाम भग-वान् बुद्ध के प्रधान शिष्य सारिपुत्त एवं मोग्गल्लान के नामपर होंगे, जिनकी पवित्र अस्थियाँ गत नवम्बर मास में यहाँ के नवनिर्मित मन्दिर में स्थापित की गयी थीं। भारतीय महाबोधि सभा ने दोनों के भवन-निर्माण हेतु २५,०००) देना स्वीकार कर लिया है।

साँची में विकास-केन्द्र—आगामी २ अक्तूबर को रेल मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा साँची में पंचवर्षीय योजनाके अन्तर्गत भोपाल राज्य के विकास के निमित्त विकास-केन्द्र का उद्घाटन किया जायेगा।

बुद्धगया में धर्मपाल-दिवस—१७ सितम्बर को बुद्धगया में श्री जगलाल त्रिपाठी के सभापतित्व में स्वर्गीय अनागारिक धर्मपालजी एवं महोपासिका मेरी फोस्टरकी जन्म-जयन्ती मनायी गयी। भिक्षु एन० सोमानन्द, श्री के० प्रसाद, मुसादीलाल, विन्देश्वरी मिश्र, भगवानदास पैती और भिक्षु धीरानन्द के भाषण हुए। सबने अनागारिक धर्मपाल जी की जीवनी एवं उनके महान् कार्यों पर प्रकाश डाला। ब्रह्मचारी मुनीन्द्र प्रसाद बरुआ के धन्यवाद-भाषण के साथ सभा समाप्त हुई।

रात्रि में मन्दिर में विद्युत् प्रकाश किया गया। यह पहला दिवस था जब कि मन्दिर विद्युत्-प्रदीप से जगमगा उठा।

लखनऊ में धर्मपाल जयन्ती—लखनऊ के रिसालदार बाग स्थित बुद्ध-विहार में गत १७ सितम्बरको सायंकाल ऑनरेरी मजिस्ट्रेट श्री बदलूराम रसिक के सभापतित्व में महाबोधि सभाके संस्थापक धर्मपालजी की जयन्ती मनायी गई। भिक्षु शान्तरक्षित के पंचशील देने के पश्चात् श्री चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु, कैलाशनाथ श्रीवास्तव और भिक्षु प्रज्ञानन्द के भाषण हुए।

अध्यक्षपद से बोलते हुए श्री रसिक ने कहा कि राष्ट्रीय संस्कृति के ऐसे महान् नेता की जयन्ती को प्रतिवर्ष बड़े-से-बड़े पैमानेपर मनानेकी आवश्यकता है।

मंगलसूत्र के पाठ तथा प्रसाद-वितरण के पश्चात् सभा का कार्यक्रम समाप्त हुआ। दोपहरमें भिक्षुओं को भोजनदान दिया गया तथा रात्रिमें प्रदीप-पूजा की गई।

मूलगन्ध कुटी विहारका वार्षिकोत्सव—इस वर्ष मूलगन्ध कुटी विहार सारनाथ का २२ वाँ वार्षिकोत्सव आगामी २२ नवम्बर रविवार को मनाना निश्चित हुआ है। यद्यपि कार्तिक पूर्णिमा २० नवम्बर को ही है, किन्तु सार्वजनिक अवकाश के दिन का ध्यान रखकर उत्सव २२ नवम्बर को मनाया जायगा। उत्सवकी अध्यक्षता उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री के० एम० मुंशी करेंगे। उनकी स्वीकृति-सूचना महाबोधि सभा को प्राप्त हो चुकी है।

यूरोप में बौद्धधर्म की प्रगति—आजकल यूरोप में बौद्धधर्म का बड़े वेग से प्रचार हो रहा है। इस वर्ष वैशाखी पूर्णिमा केवल ब्रिटेन में ही लन्दन के अतिरिक्त एडिनबर्ग, मानचेस्टर, ब्रिमिंगघम, आक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज और ब्रिघटन में नव-स्थापित समितियों द्वारा बड़े उत्साह से मनायी गयी। बेलजियम, आस्ट्रिया, फ्रांस, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, स्काटलेण्ड, जर्मनी, स्पेन, स्वीडेन आदि में अनेक बौद्ध समितियों का निर्माण हो गया है, जहाँ वैशाख पूर्णिमा के पश्चात् आषाढ़ी पूर्णिमा भी बड़े आयोजन के साथ मनाई गई है।

विश्व के सर्वोच्च शिखर पर बुद्धपूजा—संसार की सर्वश्रेष्ठ चोटी एवरेस्ट पर विजय प्राप्त करने वाले बौद्ध युवक श्री तेनजिङ्ग शेरपा ने अपने एक स्वागत-समारोह में बोलते हुए कहा कि जब मैं शिखर पर पहुँचा तो मुझे भगवान् बुद्ध का स्मरण हुआ और मैंने अपने नित्य प्रति पाठ करने वाले 'ओं मणि पद्मे हुँ' मन्त्र के साथ बुद्ध-पूजा की।

छठी सङ्गीति—बर्मा में इस वर्ष वैशाख पूर्णिमा के दिन से छठीं संगीति प्रारम्भ होने वाली है, जिसकी तैयारी बड़े उत्साहपूर्वक की जा रही है। इस संगीति में सम्मिलित होने के लिए हर बौद्ध देश से भिक्षु जा रहे हैं। लंका, स्याम, कम्बोडिया आदि देशों के भिक्षु अभी से बर्मा पहुँच गए हैं।

जापानी प्राध्यापक भिक्षु बने—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में विद्याध्ययन करने के निमित्त जापान से आये हुए प्रोफेसर निकाज फूजीयोशी ने यहाँ से लंका जाकर भिक्षु-दीक्षा ग्रहण की है। वे इस समय लंका में रहकर स्थविरवाद का अध्ययन कर रहे हैं।

स्वीडेन के प्रसिद्ध चित्रकार सारनाथ में—स्वीडेन के स्टाकहोम नगर के प्रसिद्धि-प्राप्त चित्रकार एवं लेखक श्री कार्ल एच० वेगनर सपत्नीक आजकल सारनाथ में आए हुए हैं। आप यहाँ रहकर बौद्धधर्म का अध्ययन करते हैं। आप बौद्धधर्म की पूर्ण जानकारी के पश्चात् बर्मा, स्याम आदि बौद्ध देशों की यात्रा करेंगे।

भारत में कम्बोडियन भिक्षु—कम्बोडिया के संघराज के शिष्य भिक्षु फलाञ्ञान और भिक्षु स्थितप्रज्ञ भारत में अध्ययनार्थ आए हैं। दोनों क्रमशः सारनाथ एवं नागपुर में रहकर हिन्दी, संस्कृत आदि भाषाओं का अध्ययन कर रहे हैं।

नये प्रकाशन

बुद्धधर्म के उपदेश—लेखक : भिक्षु धर्मरक्षित। प्रकाशक : श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना-४। पृष्ठ-संख्या १४०, मूल्य सजिल्द २)

भगवान् बुद्ध ने 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' जो उपदेश दिया था, उसे प्रव्रजित और गृहस्थ धर्मों के अनुसार दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। दोनों प्रकार के उपदेश त्रिपिटक में बिखरे पड़े हैं या यों कहें कि सारा त्रिपिटक उन्हीं उपदेशों से भरा हुआ है। उनमें गृहस्थ धर्म सम्बन्धी जो उपदेश हैं, वे गृहस्थ-जीवन में रहने वाले राजा से लेकर रंक तक के लिये कल्याणकारी और सुखावह हैं। स्त्री-पुरुष दोनों के लिये लाभप्रद हैं। उन्हीं उपदेशों के सहारे अशोक, कनिष्क, हर्ष आदि जैसे गृहस्थजनों ने अपना धार्मिक जीवन व्यतीत किया था और उन्हीं उपदेशों के भरोसे एक समय सारा भारत ही नहीं, प्रत्युत विश्व का अधिकांश भू-भाग बौद्ध उपासक-उपासिकाओं से परिपूर्ण था। आज भी बर्मा, लंका, स्याम आदि देश उन उपदेशों को अपनी धार्मिक सम्पत्ति समझते हैं और उनके आचरण, प्रचार एवं रक्षा की ओर विशेष ध्यान देते हैं। अब भारत भी इसका अपवाद नहीं है। उन परम हितकारक उपदेशों की ओर हम भारतवासी स्वतः ही आकर्षित होते जा रहे हैं। यह वह समय है जब हमें उन परम कल्याणकारी उपदेशों के सहारे ही अपने आध्यात्मिक और बाह्य जीवन-स्तर को ऊपर उठाना होगा। विश्व में यदि कोई ऐसा धर्म है जो मानवमात्र के लिए शील, सत्य, न्याय एवं अहिंसा के आधार पर कल्याणकारी सिद्ध हो, तो वह यही एकमात्र बौद्धधर्म है। हमें इसके अध्ययन, मनन, एवं आचरण से अपने तथा अपने सम्पर्क में रहने वाले प्राणिमात्र के कल्याण का प्रयत्न करना होगा।

उक्त ग्रन्थ इसी उद्देश्य की पूर्ति-निमित्त लिखा गया है। इससे गृहस्थ-धर्म सम्बन्धी तथागत के उपदेशों का ऐसा संकलन किया गया है, जिसमें गृहस्थों के जानने योग्य सभी बातें आ गई हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके संकलन में दान, शील और भावना के क्रम को अपनाया गया है और यह ध्यान रखा गया है कि बुद्ध-वचन के अतिरिक्त अट्ठकथाओं या प्रकरण ग्रन्थों के पाठ न आने पावें, किन्तु जिन्हें बहुत आवश्यक समझा गया है, उन्हें 'विशेष' स्थलों पर उद्धृत कर दिया गया है।

यह ग्रन्थ पन्द्रह परिच्छेदों में विभक्त है, जिनमें क्रमशः दान, शील, शरण, यज्ञ, कर्म, गति, छः दिशाओं की पूजा, धन की सुरक्षा, मैत्री, शासन, शुद्धि, श्राद्ध, भावना, शिष्टाचार तथा धर्म की महत्ता और तीर्थ-स्थान का वर्णन है। यह ग्रन्थ अपने प्रकार का अद्वितीय है। ऐसे सुन्दर ग्रन्थ-सम्पादन के लिए लेखक बधाई के पात्र हैं। छपाई, सफाई सब सुन्दर है। मुख्य पृष्ठ का आवरण भी चित्ताकर्षक है।

नेपाल यात्रा—लेखक : त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित। प्रकाशक : गंगा पुस्तक माला कार्यालय, ३६, गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ। पृष्ठ संख्या २४७, मूल्य सजिल्द ४॥)

यह ग्रन्थ २१ परिच्छेदों में विभक्त है। इसमें प्रारम्भ से तीसरे परिच्छेद तक तैयारी, वैशाली एवं नेपाल प्रवेश का वर्णन है। चौथे परिच्छेद में काठमांडू, पाटन, भातगाँव, बनेपा, नम्बुरा और पनौती का सविस्तार वर्णन किया गया है। तदुपरान्त १० परिच्छेदों में नेपाल के राज्य, धर्म, संस्कृति, बाह्य देशों से सम्बन्ध, शिक्षा, खानपान और वेष-भूषा, समाज व्यवस्था, प्राकृतिक धन, साहित्य, उत्सव, संस्कार आदि के स्वतंत्र रूप से वर्णन हैं। पन्द्रहवाँ परिच्छेद "ज्वालामुखी के पथ पर" है, जिसमें खास नेपाल से प्रस्थान, सांगु बाजार, एक बालक का अपूर्व हठ, पोखरा की यात्रा, धौलागिरि के नीचे और गंडक की गोद में—शीर्षकों से काठमांडू से ज्वालामुखी तक पहुँचने का वर्णन है। सोलहवें परिच्छेद में "मुक्तिनाथ—ज्वालामुखी" का वर्णन है। तत्पश्चात् वापसी,

शेष पृष्ठ ११३ के नीचे

हिन्दी में बौद्धधर्म की पुस्तकें

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)

मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

धर्मदूत
महाबोधि सभा सारनाथ
का
मुखपत्र
अक्तूबर
१९५३

विषय-सूची

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १८	सारनाथ, अक्तूबर	बु० सं० २४९७ ई० सं० १९५३	अङ्क ६

बुद्ध-वचनामृत

'कछुये की तरह अपनी इन्द्रियों को समेट कर रखो'

"भिक्षुओ! बहुत पहले किसी दिन एक कछुआ संध्या समय नदी के तीर पर आहार की खोज में निकला हुआ था। एक सियार भी उसी समय उस नदी के तीर पर आहार की खोज में आया हुआ था। भिक्षुओ! कछुये ने दूर ही से सियार को आहार की खोज में आये देखा। देखते ही अपने अंगों को अपनी खोपड़ी में समेट कर निस्तब्ध हो रहा। भिक्षुओ! सियार ने भी दूर ही से कछुये को देखा। देखकर जहाँ कछुआ था, वहाँ गया। जाकर कछुये पर दाव लगाये खड़ा रहा कि जैसे ही यह कछुआ अपने किसी अंग को निकालेगा, वैसे ही मैं एक झपेटे में उसे चीर-फाड़कर खा जाऊँगा। भिक्षुओ! क्योंकि कछुये ने अपने किसी अंग को नहीं निकाला, इसलिये सियार अपना दाव चूक उदास चला गया। भिक्षुओ! वैसे ही मार तुम पर सदा सभी ओर से दाव लगाये रहता है, कि कैसे इन्हें चक्षु की दाव से पकड़ूँ। कैसे इन्हें श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया और मन की दाव से पकड़ूँ। भिक्षुओ! इसलिये तुम अपनी इन्द्रियों को समेट कर रखो। चक्षु से रूप देखकर मत ललचो, मत उसमें स्वाद देखो। असंयत चक्षु-इन्द्रिय से विहार करने से लोभ, द्वेष अकुशल धर्म चित्त में पैठ जाते हैं। इसलिये उसका संयम करो। चक्षु-इन्द्रिय की रक्षा करो। वैसे ही श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काया और मन-इन्द्रिय की भी रक्षा करो। भिक्षुओ! यदि तुम अपनी इन्द्रियों को समेट कर रखोगे तो पापी मार उसी सियार की तरह दाव चूक तुम्हारी ओर से उदास होकर हट जायगा।"

—संयुक्त निकाय ३४,२,३

बुद्ध का दर्शन

श्री राहुल सांकृत्यायन

बुद्ध का व्यक्तित्व समन्तभद्र, सर्वतोभद्र है। इतिहास में ऐसा व्यक्ति मिलना दुर्लभ है, जो प्रतिभा में, मधुर बर्ताव में, दीन-हीनों के प्रति, कार्यरूप में सम्वेदना दिखलाने में इतना ऊँचा हो, जितने कि भारत के सर्वश्रेष्ठ पुत्र और मानवता के सर्वोत्तम पथ-प्रदर्शक बुद्ध थे। ढाई हजार वर्षों के अपनों और परायों के हाथों काई और मोर्चे ने जमा होकर उस पुरुषोत्तम के असली रूप को छिपाने की कोशिश की, लेकिन वह उसमें सफल नहीं हुये। जो सर्वतोभद्र है, उसके एक अंग को लेकर दौड़ पड़ना उचित नहीं हो सकता। कितने ही भारतीय विद्वान् हैं, जो जाने या अनजाने कह बैठते हैं, कि बुद्ध तो आचार पर जोर देते थे, वह सुकर्म-मार्ग पर लोगों को चलाना चाहते थे। इसमें शक नहीं, आचारशुद्धि या शील पर भी बुद्ध का बहुत जोर था। "पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आच-रहिं ते नर न घनेरे" की उक्ति के अनुसार आचरण हीन सिर्फ बात बघाड़ने को वह कोई महत्व नहीं देते थे। केवल आचार-विषयक शिक्षा को ही ले लिया जाये, तो भी बुद्ध मानवता के महान् विचारक सिद्ध होते हैं। लेकिन हमारे समन्तभद्र की सर्वतोभद्रता इतने एक अंग में सीमित नहीं। शंकराचार्य ने "य आस्ते योगिनां चक्रवर्त्ती" कहकर बुद्ध को योगिकों का सम्राट् घोषित किया। बुद्ध ने शीलस्कन्ध की तरह ही समाधिस्कन्ध पर भी ज़ोर दिया। समाधि या मनुष्य की मानसिक शक्तियों को अभ्यास द्वारा विकसित करना, एक ऐसी वस्तु है, जिसके पक्ष में जितना सत्य का आश्रय लिया जाता है, उससे कई गुना झूठ का प्रचार किया जाता है। मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ वस्तुवादी दृष्टि से एक गम्भीर अध्ययन और अनुसन्धान के विषय हैं। इस दिशा में काम करना अवश्य होगा। समाधि और योग सिद्धियों के बारे में आज के जमाने में हम तब तक कुछ नहीं कह सकते, जब तक कि विज्ञान की प्रयोगशालाओं में मानसिक शक्तियों के हरेक प्राकट्य या दावे का अनुसन्धान निष्ठुरता पूर्वक न किया जाये। लेकिन यह तो साफ है कि विरोधी भी जिसे योगियों का चक्रवर्त्ती कहते हैं, वह इस अंश में भी अपने को सर्वतोभद्र साबित करता है।

दर्शन से अनभिज्ञ ही नहीं, बल्कि दर्शन से जानकारी रखनेवाले भी कितने ही लोग बुद्ध के दर्शन की उपेक्षा करते बतलाना चाहते हैं, कि दर्शन से बुद्ध कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे, वह तो केवल आचार-धर्म का प्रचार करते थे। मैं तो कहूँगा बुद्ध की जितनी जबर्दस्त देन दर्शन में है, उतना और किसी क्षेत्र में नहीं है–अर्थात् वह सबसे पहले दार्शनिक हैं, उसके बाद और कुछ। दूसरी शताब्दी के महान् विचारक नागार्जुन ने आम शिष्टाचार के अनुसार अपनी पुस्तक "विग्रह व्यावर्तनी" के आरम्भ में कोई मंगलाचरण नहीं किया, लेकिन ग्रंथ समाप्त करते-करते गद्गद् होकर कहा :—

यःप्रतीत्यसमुत्पादं मध्यमां प्रतीपदमनेकार्थाम्।
निजगाद प्रणमामि तमप्रतिसम्बुद्धम् ॥

मध्यमा प्रतिपद् (मध्यममार्ग) और प्रतीत्यसमुत्पाद बुद्ध-दर्शन के इन दो मूलतत्वों को यहाँ नागार्जुन ने पकड़ा और उनके बतलाने वाले बुद्ध को अप्रतिम (अद्वितीय) कहा। सचमुच ही यह ऐसे सूत्र हैं। जिनसे बुद्ध के सारे दर्शन की व्याख्या हो जाती है, और साथ ही यह किसी एक देश या काल के लिये ही नहीं, बल्कि सभी देशों और कालों के लिये परमार्थ सत्य हैं। इन दोनों के साथ 'सब्बं अनिच्चं' (सर्वं अनित्यं) या 'सर्वं क्षणिकं' को ले लेने पर हमारे सामने बुद्ध का पूर्ण दर्शन चला आता है।

सभी वस्तुयें अनित्य (क्षणिक) हैं, क्षण-क्षण परिवर्त्तनशील हैं, केवल ऊपर-ऊपर नहीं, बल्कि जड़-मूल से विनाशशील हैं। इस नियम को बुद्ध ने घोषित करके दुनिया को विश्व और उसके छोटे से छोटे अंश (परमाणुओं) तक को क्षणभंगुर बतलाया। वेदान्ती या ब्रह्मवादी अद्वैती बाह्य
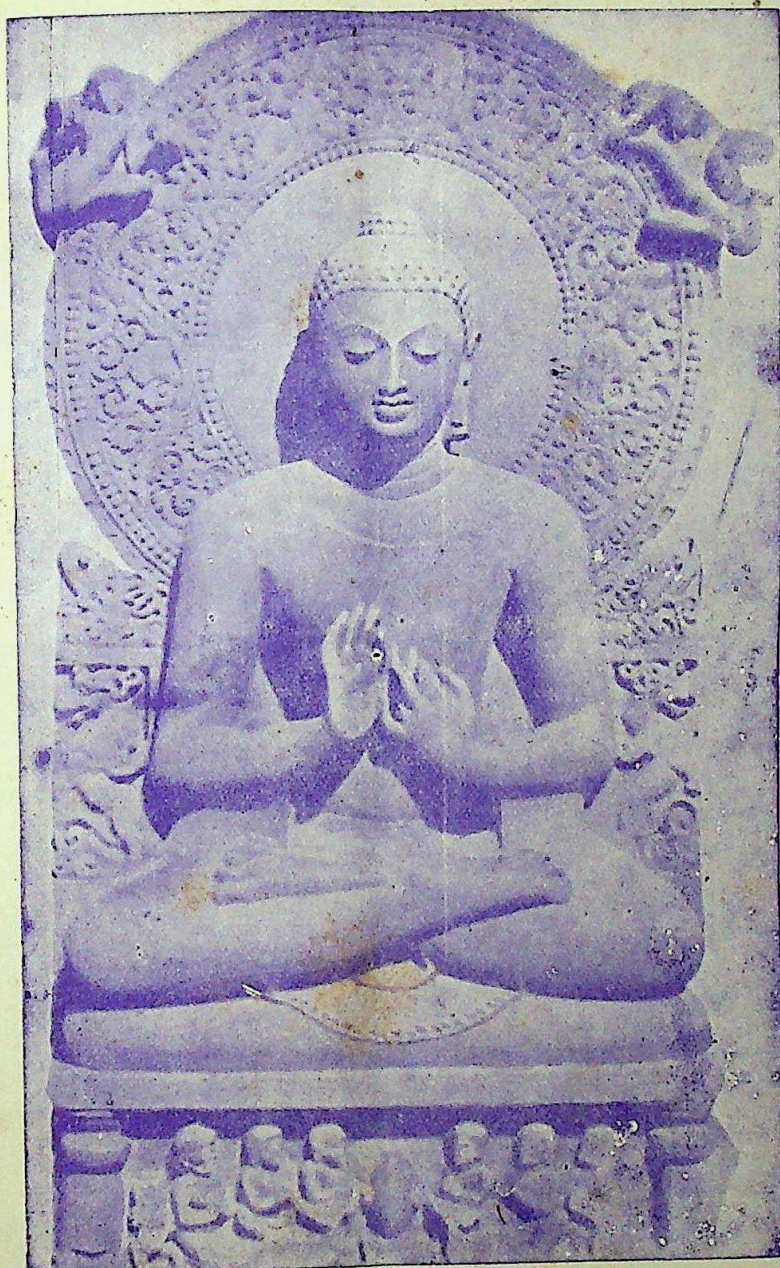
भगवान् बुद्ध

विश्व के भीतर एक नित्य कूटस्थ ब्रह्म तत्त्व को मानते हैं। भौतिक जगत् उनके लिये माया मात्र है। वैशेषिक या पुराने ग्रीस के परमाणुवादी दार्शनिक बाह्य जगत् को क्षणभंगुर मानने के लिये तैयार थे, लेकिन अ-तोम् (अ-छेद्य) या परमाणु उनके लिये नित्य और कूटस्थ था। बुद्ध और उनके अनुयायियों ने 'सब अनित्य है' के नियम में कोई अपवाद नहीं माना—बाह्य जगत् हर क्षण नष्ट होता रहता है और उसका स्थान जो लेता है, वह भी अपने पूर्वज के अनुसार क्षणभर रहकर जड़-मूल से विलुप्त हो जाता है। बौद्ध दार्शनिकों ने इसे और स्पष्ट करते हुये घोषित किया, 'यत् सत् तत् क्षणिकं', अर्थात् जो भी सद्-वस्तु है, वास्तविक सत्ता रखनेवाली चीज है, वह सभी क्षणिक, क्षण-क्षण विनाशी है। जो क्षणिक नहीं, वह सद्-वस्तु ही नहीं, वह वन्ध्यापुत्र और आकाशकुसुम की तरह केवल शब्दाडम्बर भर है। क्षण-क्षण विनाश विश्व का अटल नियम होने से वह हरेक वस्तु का सहज धर्म है। इसीलिये बौद्ध दार्शनिकों ने विनाश को निर्हेतुक कहा—यदि दूसरे ही क्षण वस्तु का विनाश निसर्गतः होता है, तो उसके लिये किसी विनाशकर्त्ता की आवश्यकता नहीं। उसकी यदि आवश्यकता है, तो उत्पादन के लिये ही। काष्ठ को अग्नि ने नष्ट कर दिया, इसकी जगह बौद्ध-दार्शनिक कहते हैं अग्नि ने कोयले का उत्पादन किया।

सारे बहिर् और अन्तर् जगत् के अनित्य और (क्षणिक) होने को सिद्ध करने के लिये बहुत प्रयत्न करने की जरूरत नहीं है। सारे प्रमाणों का प्रमाण और वस्तुतः एकमात्र प्रमाण प्रत्यक्ष है, जिसके क्षेत्र में आनेवाली सारी वस्तुयें क्षणिक देखी जाती हैं। दूसरे नम्बर का प्रमाण अनुमान भी प्रत्यक्ष के पदचिह्न पर चलते उसी बात को सिद्ध कर सकता है। वस्तुतः अन्तर् जगत् और बहिर्जगत् का जितना भी अंश प्रत्यक्षगोचर है, वह क्षणिक ही दीख पड़ता है। लोग प्रत्यक्ष-अगोचर नहीं, बल्कि प्रमाण-अगोचर तत्त्व को लाकर उसे नित्य कूटस्थ साबित करने की कोशिश करते हैं। धार्मिक रूढ़ि और पक्षपात के तौरपर वह इसे भले ही मनवा लें, लेकिन सद्वस्तु के तौरपर उसे मनवाना असम्भव है। विश्व की क्षणिकता सर्वानित्यता के अकाट्य सिद्धान्त को स्वीकार कर लेनेपर यह कहने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती कि आत्मा या ईश्वर (ब्रह्म) जैसी सत्ता के बारे में बुद्ध का क्या विचार था। यदि आत्मा कोई तत्त्व है, तो उसपर बात करने के लिये बुद्ध तभी तैयार हो सकते थे, जब यह मान लिया जाय, कि अनित्यता का नियम आत्मापर भी लागू होता है, ईश्वर या ब्रह्मपर भी लागू होता है। बुद्धकाल में आत्मा का दार्शनिक सिद्धान्त माना जाता था, आत्मा में जीवात्मा (प्रत्यगात्मा) और परमात्मा दोनों ही सन्निविष्ट थे। ऐसे आत्मतत्त्व का प्रत्याख्यान करने से ही बुद्ध के दर्शन को अनात्मवाद कहा जाने लगा।

अपवाद-रहित सर्वानित्यता के सिद्धान्त को बुद्ध और बौद्ध दार्शनिकों ने अव्याहत गति से सभी क्षेत्रों में लागू किया। इससे अगले ही कदमपर फिर दूसरा दार्शनिक प्रश्न उठा—यदि सभी वस्तुयें बिना किसी अपवाद के क्षणभंगुर हैं, तो कार्य और कारण का क्या सम्बन्ध होगा। कार्य-कारण के सम्बन्ध ही से आखिर संसार का व्यवहार चलता है। हम जानते हैं, आम की गुठली अवश्य हमें आम का मीठा फल देगी, तभी हम गुठली को लगाते हैं; गेहूँ का बीज गेहूँ की फसल देगा, तभी हम उसे घर से निकाल कर खेत में डाल आते हैं। इससे कार्य-कारण का सम्बन्ध अटूट सिद्ध होता है। बुद्ध कार्य-कारण के सम्बन्ध से इन्कार नहीं करते, वह अपने प्रतीत्य समुत्पाद द्वारा कहते हैं कि इसके होने पर यह होता है (अस्मिं सति इदं भवति)। कारण वह है, जो एक क्षण के अस्तित्व के बाद जड़-मूल से नष्ट हुआ। उसके तुरन्त बाद दूसरे क्षण में जिस वस्तु ने लुप्त वस्तु का स्थान लिया वही कार्य है। ऐसे कार्य-कारण-सम्बन्ध को बुद्ध इन्कार नहीं करते। गेहूँ या आम की गुठली से फसल के नये गेहूँ और नये आम के फल के अस्तित्व में आने तक हर क्षण प्रकट और विनष्ट होती कार्य-कारणों की अनगिनत पीढ़ियाँ (संततियाँ) लुप्त हो जाती बतलाते हैं, जिन्हें 'सदृश उत्पत्ति' (एक समान आकार में उत्पन्न होने) के कारण हम एक समझते हैं।

कारण कार्य के प्रतीत्य समुत्पाद—एक के अतीत (व्यतीत, प्रनष्ट, विनष्ट) होने के बाद दूसरे कार्य का उत्पाद होता है। इससे कोई यह न समझ ले, कि कार्य का एक ही कारण होता है और वह ईश्वर भी

हो सकता है। बौद्ध दार्शनिकों ने इसी बात को और स्पष्ट करते हुये बतलाया कि दुनिया में कोई कार्य एक कारण (हेतु से) नहीं होता, बल्कि बहुत से हेतुओं की सामग्री (समूह) एक कार्य को पैदा करती है। गेहूँ या आम की गुठली अकेले चना के भाड़ फोड़ने जैसी शक्ति नहीं रखती। वहाँ जल, रासायनिक मिट्टी, ताप आदि कितने ही और हेतु जब एकत्रित होते हैं, तब कार्य उत्पन्न होता है। हेतु-सामग्री में यदि कोई एक छोटी-से-छोटी चीज भी अनुपस्थित रहे, तो कार्य हर्गिज नहीं पैदा हो सकता। बौद्ध दार्शनिकों ने हेतु-सामग्रीवाद का जो प्रतिपादन किया, वही आधुनिक द्वन्द्ववादी दर्शन में परिमाण (समूह) का गुण में परिवर्त्तन है। दोनों जिस कार्य-कारण-सम्बन्ध को मानते हैं उसीके अनुसार वह इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि कार्य अपने कारणों से बिल्कुल भिन्न होता है—अर्थात् वह असत्कार्यवाद का समर्थन करते हैं। जब विश्व और उसकी वस्तुएँ स्थावर नहीं, बल्कि अत्यन्त जंगम हैं, देश में ही स्थानान्तरित नहीं होतीं, बल्कि काल में अगले ही क्षण जड़-मूल से नष्ट हो जाती हैं, तो ऐसे जंगम तत्वों के सदा गतिशील होने के कारण स्वयं उनमें संयोग-वियोग हुआ करता है, जो स्वतः विश्व की सृष्टि और प्रलय करने के लिए पर्याप्त है। सर्वानित्यता का नियम विश्व की किसी घटना के लिये अपने से बाहर की किसी संचालित शक्ति की अपेक्षा नहीं रखता। इस तरह मालूम है कि सर्वानित्यता और प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धान्त कितने ठोस हैं। इनके सामने हमारे देश के नित्यतावादी सर पटककर रह गये, और उनकी एक न चली।

सर्वानित्यता, प्रतीत्यसमुत्पाद से आगे विश्व के प्रवाह को स्वीकार करते हुये यह मानना पड़ा कि यह प्रवाह तो है, लेकिन विच्छिन्न प्रवाह। अन्तर और बाह्य विश्व वस्तुतः घटनाओं का प्रवाह है। यहीं घटनायें वस्तु के स्वरूप के एक-एक विन्दु हैं। विश्व-प्रवाह एक अखण्ड ठोस रेखा नहीं, बल्कि एक दूसरे से अत्यन्त नजदीक रक्खे विन्दुओं की पाँती है जो दूर से देखने में ही रेखा मालूम होते हैं, नजदीक से वह अलग-अलग विन्दु हैं। यह विन्दु-प्रवाह की उपमा मनुष्य के शरीर पर भी घटित होती है और उसकी चेतना (विज्ञान) पर भी, जिसे गलती से कूटस्थ आत्मा कहा जाता है।

मध्यमा प्रतिपद् (मध्यम मार्ग) भी बुद्ध का एक ऐसा सिद्धान्त है जो आचार, दर्शन, सभी क्षेत्रों में एक-सा लागू होता है। यदि बुद्ध ने जीवन के सम्बन्ध में अति में न जाकर बीच का मार्ग (मध्यम मार्ग) पकड़ने के लिये कहा, तो दर्शन में भी उन्होंने मध्यमा प्रतिपद् को ही स्वीकृत किया। इसी को लेकर उन्होंने कहा, कि शरीर को सुखाना, अत्यन्त कष्ट देना भी एक अति और बुरा है, उसी तरह सब कुछ छोड़कर केवल शरीर के पालने-पोसने में लीन होना भी दूसरी अति अतएव बुरा है, आदमी को दोनों के बीच का रास्ता लेना चाहिये। दर्शन में उन्होंने स्कन्धों के अस्तित्व को माना, यद्यपि क्षणिक रूप से ही। यह समझ लेना चाहिये, कि क्षणिक होने से कोई वस्तु तुच्छ नहीं है, क्षण भर स्थिर रहना यही वस्तु का वर्त्तमान अतएव बहुमूल्य रूप है, यही नगद धन है। भौतिकवादी क्षणिकवाद दर्शन भी यह स्वीकार करता है, कि यद्यपि मूलभूत तत्त्व भौतिक रूप हैं, लेकिन क्षण-क्षण विनाश और परिवर्त्तन, परस्पर-विरोधी तत्त्वों के समागम से जो विकास-परम्परा प्रचलित होती है, उसी का परिणाम है भूतों से चेतना का प्रादुर्भाव होना। कार्य कारण से बिल्कुल भिन्न होता है, यदि चेतना अपने कारण भौतिक तत्त्वों से विलक्षण हो, तो इसमें आश्चर्य करने की जरूरत नहीं। द्वन्द्ववादी भौतिकवाद चेतना (विज्ञान) को भूतों (स्कन्धों) की उपज मानता है, किन्तु साथ ही चेतना को भूत नहीं मानता। बौद्ध दर्शन यद्यपि अपने को भौतिकवादी घोषित नहीं करता, लेकिन साथ ही वह आत्मवादी भी नहीं घोषित करता। वह यहाँ पर भी मध्यमा प्रतिपद् का अनुसरण करता है। वह चेतना को आत्मा कहकर उसे लोकोत्तर नहीं बनाना चाहता, और साथ ही उसे केवल भौतिक मानने के लिये भी तैयार नहीं। आज का सबसे उन्नत दर्शन—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद—बुद्ध दर्शन के कितना समीप चला आता है। इसीलिये दर्शन के क्षेत्र में बुद्ध की देन को नगण्य माननेवाले हमारे तथाकथित दार्शनिक कितने भ्रम में हैं, यह भी अच्छी तरह समझा जा सकता है।

सब तरह से देखने पर बुद्ध समन्तभद्र, सर्वतोभद्र थे, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। मानवता ने अपने इतिहास में ऐसा एक ही समन्तभद्र पुरुषोत्तम पैदा किया।

मसूरी, १६–९–५३

चार आर्यसत्य

भिक्षु सद्धातिस्स

"चत्तारि अरिय सच्चानि। दुक्खं अरिय सच्चं, दुक्खसमुदयं अरिय सच्चं, दुक्खनिरोधं अरिय सच्चं, दुक्ख निरोधगामिनी पटिपदा अरिय सच्चं।"

—विभङ्गप्पकरण ४, १

चार आर्य सत्य हैं। दुःख आर्य सत्य, दुःख-समुदय आर्य सत्य, दुःख निरोध आर्य सत्य, दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा आर्य सत्य।

ये चार आर्य सत्य संसार में सदा विद्यमान रहनेवाले यथार्थ धर्म हैं। इन्हीं सत्यों को न जानने के कारण संसार के प्राणी आवागमन के चक्कर में पड़े रहते हैं। किन्तु उन्हीं में से जो इनको जान लेते हैं, वे बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध और अर्हत् होकर संसार से मुक्त हो जाते हैं। काल-चक्र के पर्दे से ढँके हुए इन आर्य सत्यों को भगवान् बुद्ध ने स्वयं अन्वेषण कर प्राणियों के सुख के लिए इनका उपदेश किया। इसी से चार आर्य सत्यों को "बुद्धों द्वारा स्वयं उत्पादित धर्म" (= सामुक्कंसिका देसना) कहते हैं। भगवान् बुद्ध ने अविद्यमान सत्य का उत्पादन नहीं किया। उन्होंने अप्रकट, ढँके हुए विद्यमान सत्यों को ही स्वयम्भू ज्ञानसे जानकर उपदेश किया। भगवान् बुद्ध का प्रमुख उद्देश्य संसारवासियों को चार आर्य सत्यों का उपदेश करना था। बुद्ध धर्म की प्रतिष्ठा, आधार, अवलम्ब चार आर्य सत्य ही हैं। बुद्ध धर्म में धर्मपालन भी चार आर्य सत्यों की ज्ञान-प्राप्ति के निमित्त ही करते हैं।

'अरियसच्च'

'आर्यसत्य' का क्या तात्पर्य है? यह 'अरिय'+'सच्च'—इन दो शब्दों से बना समास पद है। संस्कृत में 'आर्य सत्य' कहा जाता है। 'सत्य' शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। यहाँ 'यथार्थ' अर्थ में प्रयुक्त है। किसी भी प्रकार से या किसी भी अवस्था में अपरिवर्तनशील एवं विद्यमान स्वभाव को ही यथार्थ कहते हैं। (१) पृथक्जन स्वभाव से मुक्त बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध और अर्हत् श्रेष्ठजनों को साधारणतया 'आर्य' कहते हैं। उन लोगों द्वारा ज्ञान प्राप्त किया गया सत्य 'आर्य सत्य' कहलाता है। (२) विशेष रूप से भगवान् बुद्ध के लिए आर्य शब्द का व्यवहार करते हैं। उनके द्वारा अन्वेषण किया गया 'सत्य' आर्यसत्य कहलाता है। (३) स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्—इन चार मार्गों एवं चार फलों के भाव को आर्य कहते हैं। इस आर्य-भाव को सिद्ध करनेवाला सत्य अथवा उनके ज्ञान से पृथक्जन को लाँघकर स्रोतापन्न आदि आर्य-भाव को सिद्ध करनेवाला सत्य ही आर्यसत्य कहा जाता है। (४) 'तथ' (=वैसा होना) के अर्थ में भी आर्यसत्य होता है। तथागत द्वारा 'यह दुःख है', 'यह दुःख समुदय है', 'यह दुःख निरोध है', 'यह दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा है'—जो यह कहा गया वह वैसा ही होने के कारण 'तथ' कहा जाता है। (५) 'अवितथ' (= कथन के विरुद्ध न होना) के अर्थ में भी आर्यसत्य होता है। भगवान् बुद्ध ने जिन आर्यसत्यों को बतलाया है वे विरुद्ध या परिवर्तित नहीं होते। 'दुःख' कभी भी 'सुख' नहीं होता, इसीलिये इन्हें आर्यसत्य कहा जाता है। (६) अनञ्ञथ (= यथाकथित प्रकार से विपरीत प्रकार का न होना) के अर्थ में भी आर्यसत्य होता है। जिसे 'दुःख' कहा गया है वह 'समुदय' नहीं हो सकता और ऐसे ही जो 'समुदय' कहा गया है, वह 'निरोध' नहीं हो सकता है।

आर्यसत्यों का क्रम

(१) दुःख सत्य स्पष्ट है। सब प्राणियों के लिए साधारण है। यह आसानी से समझा जा सकता है, इस-लिये इसे पहले कहा गया है। (२) इस दुःख के हेतु को बतलाने के लिए दुःख सत्य के बाद दुःख समुदय सत्य को बतलाया गया है। (३) हेतु के निरोध से फल का निरोध होता है—इस बात को बतलाने के लिए दुःख समुदय के उपरान्त दुःख निरोध सत्य को बतलाया गया

है। (४) इस निरोध सत्य को प्राप्त करने के उपाय को बतलाने के लिए दुःखनिरोध प्रतिपदा सत्य को बतलाया गया है। यह चार आर्यसत्यों का क्रम है।

इस क्रम की व्याख्या इस प्रकार से भी की जाती है—(१) दुःख के प्रति प्राणियों की उदासीनता को उत्पन्न करने के लिए दुःख सत्य को सर्वप्रथम कहा गया है। (२) यह दुःख किसी दूसरे ईश्वर, ब्रह्मा, देवी-देवता द्वारा नहीं दिया जा सकता, प्रत्युत 'समुदय' कही जानेवाली 'तृष्णा' के कारण ही होता है। इसीलिये दुःख समुदय सत्य दुःख सत्य के उपरान्त कहा गया है। (३) दुःख से मुक्ति अर्थात् दुःख से छुटकारा पाने के लिए खोज में लगे हुए प्राणियों को आश्वासन देने के लिए उसके बाद निरोध सत्य को बतलाया गया है। (४) इस निरोध का ज्ञान कराने के लिए तथा उस निरोध तक पहुँचाने के लिये निरोध सत्य के उपरान्त दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा सत्य कहा गया है।

दुःख रोग के समान है। समुदय रोग के निदान के समान है। निरोध रोग से मुक्ति पाने के समान है। प्रतिपदा भैषज्य के समान है। 'नामरूप' को विभक्त करके जन्म दुःख है, बुढ़ापा दुःख है, मृत्यु दुःख है आदि प्रकार से दुःख सत्य को ज्ञान से ज्ञातव्य (=परिञ्ञेय्य) है। समुदय ज्ञान से जानकर त्याज्य (=पहातब्ब) है। निरोध ज्ञान से साक्षात्कार करने योग्य (=सच्छिकातब्ब) है। प्रतिपदा अभ्यास करने के योग्य (=भावेतब्ब) है। इन्हीं कारणों से चार आर्य सत्य बतलाये गये हैं।

'पञ्चस्कन्ध दुःख है' जानने का ज्ञान सत्काय-दृष्टि अथवा 'आत्मा है' ऐसे मानने की दृष्टि को दूर करता है। 'दुःख का कारण तृष्णा है' जानने का ज्ञान 'भूतकाल में नहीं था, भविष्यत् में नहीं होऊँगा' इस उच्छेदवाद की दृष्टि को दूर करता है। 'तृष्णा के नष्ट होने पर निरोध होता है' ऐसा ज्ञान शाश्वत-दृष्टि को दूर करता है।' निर्वाण को प्राप्त करने का उपाय आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग है' ऐसा ज्ञान 'पाप-पुण्य करने का कोई फल नहीं' ऐसी अक्रिय-दृष्टि को दूर करता है।

यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च सङ्घञ्च सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चानि सम्मप्पञ्ञाय पस्सति॥
दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियञ्चट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं॥
एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं।
एतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति॥

जो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण गया, जिसने चार आर्यसत्यों को—दुःख, दुःख की उत्पत्ति, दुःख से मुक्ति और मुक्तिगामी आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग—सम्यक् प्रज्ञा से देख लिया है, यही रक्षादायक शरण है, यही उत्तम शरण है। इसी शरण को प्राप्त कर सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है।

लोके लोकप्पभवे लोकत्थगमे सिवे च तदुपाये।
सम्मुय्हति ताव नरो न विजानाति याव सच्चानि॥

जब तक व्यक्ति चार आर्य सत्यों को नहीं जानता है, तब तक संसार में, संसार की उत्पत्ति में, संसार के अस्त होने की मुक्ति (=निर्वाण) में, तथा उसके उपाय (=मार्ग) में मूढ़ बना रहता है।

धर्म

श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी

मज्झिम निकाय में भगवान् बुद्ध ने कहा है—"कुल्लूपमं वो भिक्खवे ! धम्मं देसिस्सामि नित्थरणत्थाय नो गहणत्थाय"। तात्पर्य, 'भिक्षुओ, मैं बेड़े की भाँति पार जाने के लिये तुम्हें धर्म को उपदेशता हूँ, पकड़ कर रखने के लिये नहीं।' यदि हम भगवान् बुद्ध के इस वचन का अर्थ अच्छी तरह समझ लेंगे तो धर्म की यथार्थ उपयुक्तता हम समझ गये, ऐसा कहा जा सकतता है। यदि हम बेड़े को अपने सिर पर लेकर नाचें और उसका गौरव कर कहें कि मेरा बेड़ा बहुत सुन्दर है, बहुत अच्छा है, तो क्या ऐसा करने से हम नदी के पार जा सकते हैं?

कदापि नहीं। जैसे बेड़े का उपयोग नदी पार करने के लिये ही है, वैसे ही धर्म का उपयोग भवसागर तरने के लये है। भवसागर तरना अर्थात् मानव-जीवन सुखी करना। मानव जीवन सुखी करने के लिये धर्म एक मात्र साधन है। धर्म के अभाव में मानव जीवन पाशविक जीवन बन जाता है। इस दृष्टि से धर्म एक आचरण की बात है न कि शुष्क तर्क या वितंडावाद की। अतः मेरा धर्म अच्छा या श्रेष्ठ है कहना भी अनावश्यक है। गुलाब के फूल को ऐसा कहने की कुछ आवश्यकता नहीं होती कि 'मैं सुगन्ध देता हूँ'। धर्म का अर्थ है सत्य, न्याय, नीति का मार्ग। मार्ग तो चलना ही पड़ता है। सच बात तो यह है कि मनुष्य जब सचाई से चल नहीं सकता तब वह शुष्क तर्क, परम्परा और मिथ्या आडम्बर को ही धर्म समझ उनमें लग जाता है। और इसी कारण भगवान् बुद्ध ने मज्झिम निकाय में कहा है—"कोई कोई मूर्ख पुरुष धर्म को कंठस्थ कर लेते हैं, परन्तु ऐसे लोगों को धर्म का सच्चा अर्थ न मालूम होने के कारण उसका फल उन्हें नहीं मिलता। कोई-कोई तो दूसरों की निन्दा करने के लिये या वाद-विवाद में श्रेष्ठत्व के लिये ही धर्म को कंठस्थ करते हैं; परन्तु यह धर्म का सच्चा उपयोग नहीं है, क्योंकि इसका परिणाम दूसरों का दुःख देना और स्वयं दुःखी होना ही होता है।" यदि हम भगवान् बुद्ध के इस अमर आदेश को आगे रखकर धर्म के अनुसार आचरण करेंगे तो हम विश्वास से कह सकते हैं कि हम तो सुखी होंगे ही परन्तु हम दूसरों को भी सुखी करेंगे। धर्म का आचरण करना बहुत कठिन बात है यह तो सभी जानते हैं। अतः कम से कम उस दिशा में हमें प्रयत्नशील होना चाहिये। धर्म से चलने का मतलब शीलवान् बनना है। शीलवान् बनने के लिये हमें पंचशील का सीधा-सादा मंत्र अपने सामने रखना चाहये। और उसके अनुसार चलने का प्रामाणिक प्रयत्न करना चाहिये। यही हमारा आद्य कर्तव्य है। पंचशील क्या है? पंचशील सदाचरण के पाँच विशेष नियम हैं—

(१) मैं प्राणि-हिंसा नहीं करूँगा।
(२) मैं चोरी नहीं करूँगा।
(३) मैं व्यभिचार या परस्त्रीगमन नहीं करूँगा।
(४) मैं झूठ नहीं कहूँगा।
(५) मैं शराब आदि मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करूँगा।

ऐसी शपथ लेना ही पंचशील का मन्त्र ग्रहण करना है। मनुष्य मात्र में बन्धुत्व निर्माण करने के लिये पंचशील एक महामन्त्र है। इसी कारण आज से ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व आषाढ़ी पूर्णिमा को जब सर्व प्रथम भगवान् बुद्ध ने धर्मचक्र प्रवर्तन कर इस धर्म का उपदेश किया, तब उन्होंने कहा—"हे भिक्षुओ, बहुजन हिताय बहुजन सुखाय, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण के लिये, हित के लिये, सुख के लिये, इस धर्म का अर्थयुक्त भाव से प्रचार करो।" स्वयं सदाचारी बन कर दूसरों को सदाचारी बनने की प्रेरणा देना सर्वश्रेष्ठ धर्म है।

भगवान् बुद्ध की पावन नगरी में

सन्त विनोबा भावे

मेरे प्यारे भाइयो!

आज मुझे बहुत ही आनन्द हुआ है, क्योंकि आपकी इस पावन नगरी में मुझे भगवान् बुद्ध के दर्शन प्राप्त हुए हैं। भगवान् बुद्ध मूर्तिमन्त करुणा थे। उन्होंने हमें सिखाया कि समाज में जब तक दीन-दुःखी और दरिद्री मौजूद हैं, तब तक हमें अपने सुख में सुख नहीं मानना चाहिए, उनके ही दुख में दुखी हो जाना चाहिए। जब तक वे छोटे-छोटे जीव, जिनको कोई रक्षण नहीं, जिनकी कोई पूछ-ताछ नहीं, जब तक वे सुखी नहीं हैं, तब तक हमारे लिये सुख-भोग हराम है। उन्होंने कहा कि दुनिया के दुख इसीलिये निर्माण हुए हैं क्योंकि हम दुखियों की, दीनों की परवाह नहीं करते, अपनी ही परवाह करते हैं।

उनकी परवाह करेंगे, उनकी चिन्ता करेंगे, तो वे सभी सुखी हो जायेंगे और हम भी। उन्होंने इस तरह हमें सच्चे और सही सुख का रास्ता दिखाया।

भगवान् बुद्ध के उपदेशों का आधार बाहर के देशों को भी मिला, क्योंकि इसका प्रचार बाहर के देशों में भी हुआ। पूर्व में चीन, जापान, बर्मा, स्याम, मलाया, लंका आदि देशों में उसका प्रसार हुआ और पश्चिम में भी हुआ। बाइबिल में एक जगह उल्लेख है कि ईसा के जन्म के समय पूरब के ज्ञानी भी वहाँ पहुँच गये थे। बहुतों का ऐसा मानना है कि वे ज्ञानी बुद्ध के शिष्य ही थे। इस तरह हिन्दुस्तान के बाहर हिन्दुस्तान की संस्कृति का और हिन्दुस्तान के अच्छे विचारों का प्रचार बुद्ध के अनुयायियों ने किया। उनका भी एक पंथ बना। लेकिन, उनमें और हिन्दुओं में फर्क सिर्फ इतना ही है कि जिस तरह हिन्दू लोग राम और कृष्ण की पूजा करते हैं, वैसे वे बुद्ध भगवान् की पूजा नहीं करते हैं, यद्यपि वे उनकी बहुत इज्जत करते हैं। उनके उपदेशों को वे मानते हैं। हरेक धर्म-कार्य में हम "बुद्धावतारे" कहते हैं, लेकिन बुद्ध की पूजा नहीं करते। लेकिन बौद्ध लोग उनको गुरु मानकर उनकी पूजा करते हैं, जो बड़ा अच्छा है। उनमें और हममें केवल इतना ही फर्क है।

मैंने तथागत के वचनों का जो अध्ययन किया है, उसमें एक भी वचन ऐसा नहीं देखा, जिसे मैं हिन्दू की तरह न मान सकूँ। भगवान् बुद्ध की तपस्या इस पवित्र स्थानपर हुई थी। उनका यहाँ पर एक असामान्य मन्दिर है, जैसा दुनिया में और कहीं नहीं है, क्योंकि दुनिया के सब मन्दिर इसके बाद बने हैं। और सबसे बड़ा स्थान तो वह बोधिवृक्ष है, जिसके नीचे बैठकर बुद्ध भगवान् को ज्ञान प्राप्त हुआ था। आज वह वृक्ष नहीं है। पर उसी की सन्तान मौजूद है। इसी वृक्ष की एक शाखा सीलोन में भेजी गयी, तो वहाँ पर उसका कितना गौरव हुआ! उसका वृक्ष वहाँ बढ़ा। इस तरह हिन्दुस्तान के ज्ञान और प्रेम का फैलाव बुद्ध के अनुयायियों ने किया है। हिन्दुओं के लिए भी यह स्थान बहुत महत्त्व रखता है। इसकी इज्ज़त करना अधिक-से-अधिक इसे स्वच्छ और बिल्कुल साफ-सुथरा रखना हमारा कर्तव्य है। यह हमारी बड़ी जिम्मेवारी है। अपने तीर्थों को तो हमें साफ रखना ही है, परन्तु यहाँ तो दुनिया के अनेक देशों से लोग आते हैं, इसलिये इसको भी हम साफ तो रखें ही। उनको अगर जरा भी गन्दगी का आभास हुआ तो हमारे देश की बेइज्ज़ती होगी। दुनिया के देशों से जो यात्री यहाँ आते हैं, उनका चेहरा, उनका रूप अलग होगा, उनका वेश अलग होगा, उनके रिवाज भी अलग होंगे, फिर भी हमें अत्यन्त प्रेम से उनका स्वागत करना चाहिए। अगर प्रेम में जरा भी कमी आयी, तो दुनिया में हमारी बेइज्जती होगी। हमारा कर्तव्य है कि इस स्थान को स्वच्छ रखें और यात्रियों का प्रेमभरा स्वागत और आदरातिथ्य करें। हम अपने देशवासियों का जितना स्वागत करते हैं, उससे भी अधिक इनका करना चाहिए। वे चन्द दिन यहाँ रहेंगे और यहाँ की सुगन्ध लेकर जायेंगे। अपने देशों में यहाँ की अच्छाइयों का प्रचार करेंगे। चीन से हुएनसांग और फाहियान ये दो यात्री यहाँ आये और पैदल घूमे। इसी तरह के यात्री आगे भी आयेंगे। उनका हमने प्रेम से स्वागत किया, तो भिन्न-भिन्न देशों के बीच प्रेम बढ़ेगा। उनके और हमारे देश में प्रेम बढ़ाने का यह एक बड़ा भारी मौका आपको मिला है। यह एक छोटा-सा गाँव है, परन्तु इसका महत्त्व बहुत है। काशी नगरी आकार और महत्त्व में बहुत बड़ी है। पर यह गाँव आकार से नहीं तो महत्त्व से बड़ा है ही। यहाँ पर जो पढ़ना-लिखना जानते हैं, उनको बौद्ध धर्म की पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए। अगर वे वैसा करेंगे तो मैंने जो अनुभूति की, वह उनको भी होगी। वह पर-धर्म की बात नहीं है। बुद्धधर्म तो अपना ही धर्म है। सब लोग अध्ययन नहीं कर सकते हैं, परन्तु स्वच्छता का काम, यात्रियों का सत्कार तो सब लोग कर सकते हैं।

जिस काम के लिए मैं आया हूँ, वह भगवान् बुद्ध के चरण-चिन्हों पर चलने का ही काम है। दुखी जीवों को सुखी बनाना, जिनकी कोई पूछ-परछ नहीं है, उनकी पूछ-परछ करना—यह सिखावन बुद्ध भगवान् का ही तो है।*

* प्रार्थना-प्रवचन के आधार पर, बोधगया ३-११-५२

बौद्ध-खण्डहरों के उत्खनन कार्य

श्री विजय श्रीवास्तव

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् पुरातत्व विभाग ने अपनी नवीन खोजों में अधिक प्रगति दिखाई और समस्त भारत देश में उत्खनन कार्य हुये। कहीं-कहीं तो ये कार्य विशेष उद्देश्य को लेकर किये गये, परन्तु कहीं-कहीं तो अनायास ही प्राचीन अवशेषों के चिह्न प्राप्त हुये। विशेषकर बौद्ध स्तूप, बुद्धप्रतिमायें, सिक्के तथा अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ प्राप्त हुईं जिनके आधार पर एक नयी प्रगति हुई तथा कई पुराने सिद्धान्तों में सुधार भी करने की सम्भावना हो उठी है। अभी तक हरप्पा की संस्कृति और उत्तर भारतीय संस्कृति में कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सका है जिसके कारण बहुत-सी ऐतिहासिक महत्व की बातें अधूरी ही पड़ी हुई हैं।

प्रयाग के निकट कौशाम्बी की खुदाई अत्यन्त ही महत्वपूर्ण रही और वहाँ का कार्य बड़े ही व्यवस्थित रूप में किया गया। वहाँ से प्राप्त सामग्रियों से ईस्वी सन् की दूसरी शती से लेकर ५वीं शती तक की सभ्यता पर प्रकाश पड़ा है। अन्यान्य स्थानों पर किये गये उत्खनन कार्यों के भी सम्बन्ध में यदा-कदा समाचार पत्रों में सूचनायें निकलती रहती हैं। हस्तिनापुर, नासिक बहल (पूर्वी खानदेश) जोखे (अहमद नगर), सनूर (चिंगल पेट), सेंग-मंदू (अरकाट में वृद्धाचलम् के निकट), वैशाली, राजगिर, कमरहर, ग्वालियर, बड़ौदा आदि कुछ स्थानों पर अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सामग्रियाँ प्राप्त हुई हैं।

आज बौद्ध-खण्डहर अपने उत्खनन की राह देखते भूगर्भ में दबे पड़े हैं। हमें उनके खनन-कार्य से अपने अतीत का परिचय प्राप्त होगा और हम में अपने देश के प्रति गौरव की भावना जाग्रत होगी। हम यहाँ खुदाई के क्रम से उनका एक संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है विद्वत्-जन एतत्सम्बन्धी अन्यान्य सामग्रियों की भी सूचना देने का कष्ट कर बौद्ध-जगत् में होनेवाले कार्यों की बृहत्-सूची-निर्माण में सहायता पहुँचायेंगे।

हरिद्वार, ५ नवम्बर

हरिद्वार के नार्मल स्कूल के इतिहास-परिषद् की स्थापना के अवसर पर प्रसिद्ध पत्रकार श्री रमेश वेदी ने यह प्रकट किया कि हरिद्वार के आसपास खुदाई में अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्रियाँ प्राप्त हुई हैं जिनसे यह भी मालूम पड़ता है कि हरिद्वार २००० वर्षों पूर्व भारतीय संस्कृति का बृहत् केन्द्र रहा; जहाँ चीनी यात्री ह्वेनसांग ने सातवीं सदी में यात्रा की थी। यहाँ से प्राप्त मूर्तियाँ कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। पुराने समय की तोपें, शस्त्रास्त्र, ताम्रपत्र, दस्तावेज, शिलालेख, सिक्के, मूर्तियों के अब तक के संग्रह भारतीय इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

बड़ौदा, १ जनवरी

लिम्बडी राज्य के अमरेली कस्बे के गोहिलवाड़ में हाल में जो खुदाई हुई है उसमें रँगे मिट्टी के बर्तन मिले हैं जिनके बारे में पुरातत्ववेत्ताओं का विश्वास है कि वे हरप्पाकाल के बाद की निचली सिन्धु घाटी की सभ्यता और मौर्यकालीन सभ्यता के बीच की दूरी पूरी करने में सहायक होंगे। खोदाई में भवन, सिक्के और १८०० वर्ष प्राचीन क्षत्रपकाल के सामान मिले हैं। दूसरी बात यह कि मृतकों को गड्ढे में दफनाया गया है, जो मेगालिथिक काल में मैसूर की ब्रह्मगिरि ढंग की है जिससे यह स्पष्ट होता है कि मेगालिथिक सभ्यता मैसूर से लेकर सौराष्ट्र के अमरेली तक (लगभग ११०० मील) फैली थी।

ग्वालियर, ८ जनवरी

नर्मदा नदी के दक्षिणी तट पर माहेश्वर के निकट नवदाटोली गाँव में ईंटों से निर्मित एक बौद्ध स्तूप खोदाई में मिला है। इन ईंटों की लम्बाई २१ इंच, चौड़ाई ११ इंच और मोटाई ३ इंच और इन पर ब्राह्मी

लिपि में कुछ अक्षर अंकित हैं। स्तूप के ७ फुट नीचे रंगे हुये मिट्टी के बर्तन और स्तूपाकार मूर्तियाँ मिली हैं।

पटना

पटना से चार मील दक्षिण-पूर्व में कुम्हरार में जो खुदाई हुई है उससे पाटलिपुत्र के इतिहास पर नया प्रकाश पड़ता है। पाटलिपुत्र ईसा से ६०० वर्ष पहले से लेकर ६०० वर्ष बाद तक भारतवर्ष की राजधानी रही है। बहुत पहले सन् १९१२-१३ में डाक्टर स्पूनर की देख-रेख में कुम्हरार में खुदाई हुई थी और उन्होंने कहा था कि कुम्हरार में मौर्यों का विशाल महल एक ही पत्थर के बने ८० खम्भों पर खड़ा था जो किसी भयंकर बाढ़ से लाई गई मिट्टी की ८ फुट तह के नीचे दब गया और उसके निचले हिस्से पृथ्वी में समा गये। परन्तु अब पता चला है कि ये खम्भे मिट्टी में धँस नहीं गये, बल्कि कुछ तो जमीन में समा गये और उनका कुछ भाग जान बूझकर खंडित खंभों को तो तोड़कर बिखेर दिया गया और कुछ टुकड़ों को यहाँ से अन्यत्र ले जाया गया।

कहा जाता है कि मौर्यों द्वारा पाटलिपुत्र में बनाये गये प्रासाद बड़े-बड़े पत्थरों से तैयार किये गये थे। फाहियान ने शती ईस्वी के प्रारम्भ में इन प्रासादों को देखा था पर हुएन-संगने, जो सातवीं शती ईस्वी के प्रारम्भ में देश में आया था, इन प्रासादों को खंडहर की अवस्था में देखा था। श्री कृष्णदेव का कहना है कि खोदाई से पता चलता है कि मौर्यों के महलों के खण्डहर पर सातवीं शताब्दि में ईंट के नये मकान बनाये गये थे। इनका विश्वास है कि हूणों ने इन खम्भों को तोड़ा होगा जिन्होंने पाँचवीं शताब्दि के अन्त और छठी शताब्दि के प्रारम्भ में हमले कर गुप्त साम्राज्य की नींव हिला दी थी। इस बार की खोदाई में सबसे पहली बार एक बौद्ध विहार का पता चला है जिसे गुप्तकाल में बनाया गया था। इस साल की मिली ऐतिहासिक वस्तुओं से ज्ञात हुआ है कि पटना में गुप्तों ने 'आरोग्य विहार' नामक एक बौद्ध विहार बनवाया था। इस बार की खोदाई से एक रोचक बात यह ज्ञात हुई है कि किसी राजप्रासाद या नगर की रक्षा के लिये कई मजबूत दीवारें बनी हुई थीं। विश्वास किया जाता है कि इन दीवारों ने नगर को तीन बार भयानक बाढ़ से बचाया।

प्रयाग, १२ जनवरी

गंगा के तीर पर स्थित, ३५ मील संगम से, छाछागिरि नामक स्थान पर नवीन खुदाई का कार्य हुआ है। २६ एकड़ का ऊँचा भूभाग खेती के काम में आता है और उसके मध्य में अमलावती नामक एक ग्राम बसा हुआ है। विद्वानों की राय में यह नाम संस्कृत 'आम्रवती' से बना है। इस स्थान पर बड़ी संख्या में आम के वृक्ष भी हैं। शिव, सूर्य, विष्णु की अन्य मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं जिनका काल लगभग १२वीं सदी ई० सन् स्थिर किया गया है। कहा जाता है कि अमलावती ग्राम के आस-पास अन्य प्राचीन स्थान भी हैं।

सिंगापुर, २८ जनवरी

पुरातत्वविशेषज्ञों को उत्तरी-पश्चिमी चीन के कांसू प्रान्त की मैची की पहाड़ियों में गौतम बुद्ध की अत्यन्त सुन्दर नक्काशी की हुई पाषाण प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। ये प्रतिमायें गुफाओं के अन्दर से निकाली गई हैं। मैची किसी समय बौद्ध-कला का केन्द्र था। समझा जाता है कि ये मूर्तियाँ चौथी शताब्दी के पूर्व की हैं।

इन्दौर, १६ फरवरी

नवीनतम खुदाइयों में नर्मदा नदी के तटपर स्थित माण्डेश्वर से ७ मील दूर चोली ग्राम में एक अत्यन्त प्राचीन मन्दिर बड़ी अच्छी अवस्था में मिला है। इस मन्दिर की विशाल दीवार चूना और गारा की बनी है और कहीं से टूटी-फूटी भी नहीं है। चोली से २ मील दूर स्थित बावलाई ग्राम में प्रस्तरनिर्मित स्तूप मिले हैं जिनकी पंक्ति (जिसे "माल वेदा" कहते हैं) २॥ मील तक चली गई है। स्तूपों में १० फुट लम्बे, चार फुट चौड़े, ६ इंच मोटे पत्थर लगे हैं

जिससे यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में इस स्थान पर किले थे।

इससे पहले भी महेश्वर में ईंटों से निर्मित बौद्ध स्तूप और प्रस्तरयुग के बने हथियार मिले थे।

जयपुर, ४ मई

राजस्थान में उदयपुर के अगर नामक गाँव में खुदाई में मिट्टी के बर्तन, सिक्के इत्यादि मिले जो सम्भवतः मौर्यकाल के बताये जाते हैं। खुदाई में २६ फुट नीचे पृथ्वी में दबे प्राचीन दीवारों के चिह्न भी मिले हैं।

रीवाँ, ५ मई

बेदारी नामक स्थान से चार मील दूर सान ग्राम में प्राचीन शहर के चिह्न दिखाई पड़े। विद्वानों के मतानुसार ये गुप्त काल के पूर्व के इतिहास पर प्रकाश डालने में सहायक हो रहे हैं। शंकर-पार्वती, कमल आदि के प्रस्तर अवशेष भी प्राप्त हुये हैं।

लखनऊ, ८ मई

हिमालय के मानसरोवर क्षेत्र से मनुष्य की एक खोपड़ी और भगवान् बुद्ध की चन्दन की बनी एक प्रतिमा मिली है जो लखनऊ-संग्रहालय में रक्खी गई है। अधिकारियों के मतानुसार बुद्ध की प्रतिमा ईसा-युग के प्रारम्भ में भारत से चीन ले जाई गई थी और तिब्बत के प्रथम सम्राट् स्रोगचेन-गेम्बो के राज्यकाल में चीन से तिब्बत लाई गई थी। यह भी अनुमान किया जाता है कि गेम्बो का प्रधान मन्त्री थोमनी उक्त प्रतिमा को विक्रमशिला विश्वविद्यालय से ले गया था। यह भी ध्यान देने योग्य है कि थोमनी ही भारत से तान्त्रिक विद्या तिब्बत ले गया था।

लाहौर, २१ मई

मालकन्द गाँव के निकट खुदाई में कुशाणकालीन (२ री शती ई० सन्) ४०'×४०' बौद्ध-स्तूप मिला वहाँ एक नहर का निर्माण-कार्य चल रहा था। अन्यत्र डंगरजाई गाँव (नौशेरा तहसील) में भी एक ऊँचा टीला ४००'×३००' मिला जब नहर निर्माण-कार्य चल रहा था। परन्तु दुर्भाग्यवश गाँववालों की असवधानी और अज्ञानता के कारण अब वह स्थान पट चला है। वहाँ के आदमियों ने सारी खुदाई का स्थान पाट डाला है और मूर्तियों को तोड़ताड़ कर मरम्मत के कामों में लगा डाला है। यह एक भयंकर बिडम्बना है।

नारा (जापान), २२ अगस्त

आधिकारिक रूप से पता चला है कि यूकू-कोजी नामक स्थान पर बाल गौतम की एक प्रतिमा मिली है जो संसार में सबसे छोटी तथा सबसे प्राचीन बताई जाती है। प्रतिमा केवल ढाई इंच ऊँची है और वजन २ औंस है। ऐसा विश्वास है कि प्रतिमा १३५० वर्ष पुरानी है। अब तक की प्राप्त बुद्ध-प्रतिमाओं में सबसे प्राचीन प्रतिमा प्रथम शती की थी परन्तु इस नवीन मूर्ति के मिलने से बुद्ध-मूर्ति की प्राचीनता के सम्बन्ध में एक नया प्रकाश पड़ा है।

बौद्धयोगी के पत्र—५

पृथ्वी कसिण-भावना

प्रिय जिज्ञासु,

तुम्हारा पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मेरे पत्र को पाकर तुम्हारी सारी घबड़ाहट दूर हो गई। तुम्हारे मित्रों को भी मेरा पत्र पसन्द आया और वे भी योग-भावना करने के लिये उत्सुक हो गये हैं। यह शुभ लक्षण है। किन्तु, उन्हें भी मेरे पहले पत्रों को पढ़ जाना चाहिए। मेरे सकारण पत्र लिखने पर भी कमलश्री और बुद्धगुप्त ने लिखा है—"आपके पत्र को न पाकर हमारा जीवन दूभर जान पड़ने लगा था। सदा चिन्ता और उदासी रहा करती थी। आपको पत्र-प्रेषण में इस प्रकार बिलम्ब नहीं करना चाहिये।" मैंने इसे पढ़कर जान लिया कि तुम मेरे पत्रों का खूब प्रचार करते हो। अच्छा

है, इन पत्रों का जितना प्रचार होगा, उतना ही जगत् का कल्याण होगा।

तुमने अपने पत्र में कर्मस्थानों पर अलग-अलग प्रकाश डालने के लिये प्रार्थना की है। मैं पहले 'कसिण-भावना' का वर्णन करूँगा। उसमें भी पृथ्वी-कसिण का सर्वप्रथम। यदि तुम पृथ्वी-कसिण की भावना अच्छी तरह जान जाओगे तो शेष कसिणों की भावना जानने में कठिनाई न होगी।

जो योगी इन कसिणों में से पृथ्वी-कसिण की भावना करना चाहे, उसे पृथ्वी-कसिण के कर्मस्थान को आचार्य के पास सीख कर भली प्रकार उसको मन में बैठा लेना चाहिए, ताकि दूर जाने पर भूल न जाय। जिसे सुविधा हो वह आचार्य के पास ही रह कर उसका अभ्यास करे तो अति-उत्तम हो। और, जिस योगी को आचार्य के पास रह कर पृथ्वी-कसिण कर्मस्थान को करने में किसी प्रकार की असुविधा जान पड़े उसे एक या दो मील की दूरी पर किसी ऐसे स्थान या विहार में जाकर रहना चाहिए, जहाँ से कि आवश्यकता पड़ने पर आचार्य के पास सरलता-पूर्वक आया जा सके। किन्तु जो योगी एक-दो मील के भीतर सुविधाजनक स्थान न पाये, उसे चाहिए कि कर्म-स्थान को हर-एक प्रकार से समझ, गूढ़ बातों को जानकर, सभी प्रकार के सन्देह मिटा दूर भी जाकर समाधि-भावना के अयोग्य विहार को छोड़ कर योग्य विहार में रहते हुए साधना में जुटे।

कर्मस्थान में जुटे हुए योगियों के लिए अठारह प्रकार के विहार अयोग्य हैं—(१) जो विहार बहुत बड़ा होता है, उसमें बहुत से भिक्षु रहते हैं और वे प्रायः परस्पर विरुद्ध होते हैं। विहार में झाड़ू लगाना आदि भी छोड़ देते हैं। पानीवाले मटकों में पानी नहीं रखते हैं। जब योगी इन्हें देखता है, तब उसे उन कामों को करना पड़ता है, बिना किये उसे दुष्कृत का दोष लगता है और करने से सारा समय इधर-उधर के कार्यों में ही बीत जाया करता है। एकान्त में जाकर ध्यान करने पर भी श्रामणेरों तथा तरुण भिक्षुओं के शोर से चित्त एकाग्र नहीं हो पाता। ऐसे विघ्न-कारक महाविहार में योगी को नहीं रहना चाहिए। (२) नया विहार भी दोषपूर्ण माना जाता है, क्योंकि नये विहार में बहुत से काम होते हैं, जिन्हें सबको करना पड़ता है। (३) पुराने विहार में बहुत मरम्मत करना होता है, यहाँ तक कि अपने आसन-बिछावन तक का भी मरम्मत नहीं करनेवाले पर अन्य भिक्षु बिगड़ते हैं और मरम्मत करनेवाले योगी का कर्मस्थान नष्ट हो जाता है। (४) जो विहार सड़क के किनारे होता है, वहाँ रातों-दिन आगन्तुक आया करते हैं। अपने आसन-बिछावन तक को उन्हें देकर पेड़ों के नीचे रहना पड़ता है और प्रति-दिन ऐसा होने से कर्मस्थान के लिए अवकाश नहीं मिलता है। (५) जो विहार प्याऊ के पास होता है वह भी योगी के लिए अयोग्य है। वहाँ पानी पीने के लिये बहुत-से लोग जुटते हैं, उन्हें बर्तन आदि देना पड़ता है। प्रायः सारा समय इसी प्रकार नष्ट हो जाता है। (६) जहाँ नाना प्रकार के साग की पत्तियाँ होती हैं, वहाँ कर्मस्थान ग्रहण करके बैठे हुए ध्यानस्थ योगी के पास साग खोंटनेवाली स्त्रियाँ (= साग-हारिणी) गीत गाती हुई पत्तों को तोड़ती हैं। काम-गुण सम्बन्धी उनके गीतों से योगी के कर्मस्थान में विघ्न पड़ता है। (७) जहाँ नाना प्रकार के फूलों के पौधे पुष्पित होते हैं, वहाँ भी उसी प्रकार का विघ्न होता है। (८) जिस विहार में आम, जामुन, कटहल आदि फल होते हैं, वहाँ फल चाहनेवाले लोग आकर माँगते हैं, नहीं देने पर नाराज होते हैं अथवा जबरदस्ती ले लेते हैं। (९) पूज-नीय स्थानों में रहने पर लोग आ-आ कर पूजा चढ़ाते हैं, वन्दना करते हैं, जिससे कर्मस्थान के लिए असुविधा होती है। (१०) शहर के पासवाले विहार में रहना भी ठीक नहीं हैं, क्योंकि वहाँ प्रिय-अप्रिय आलम्बन इन्द्रियों के सम्मुख आते हैं। पानी ले जानेवाली स्त्रियाँ भी घड़ों से रगड़ती हुई जाती हैं। मार्ग से हटकर जाने के लिए रास्ता नहीं देतीं। धनीमानी लोग भी विहार के बीच परदा डाल कर बैठते हैं। (११) जो लकड़ी का स्थान हो वहाँ भी नहीं रहना चाहिए क्योंकि साग, पुष्प ले जानेवाली स्त्रियों की भाँति लकड़हारिनी स्त्रियाँ, तथा काष्ठ चाहनेवाले आदमी विघ्न डालते हैं। (१२) जो विहार खेतों से युक्त होता है। चारों ओर से खेतों से घिरा होता है। वहाँ आदमी विहार के बीच में ही खलिहान बनाकर धान मींसते हैं। ओसारे में सुखाते हैं और भी बहुत कुछ विघ्न

करते हैं। (१३) जहाँ परस्पर अनमेली, वैरी भिक्षु रहते हैं जो कि झगड़ा करते समय रोकने पर "इस योगी के आने के समय से लेकर हम लोग नष्ट हो गये" कहने लगते हैं, वहाँ कदापि नहीं रहना चाहिए। (१४) जो विहार किसी बन्दरगाह या स्टेशन के पास हो, वह भी योगी के लिये अयोग्य है, क्योंकि वहाँ हमेशा यात्री आकर पीड़ित करते हैं। (१५) जो विहार निर्जन में होता है, वहाँ के मनुष्य प्रायः श्रद्धा-रहित होते हैं। बुद्ध, धर्म, संघ के प्रति उनकी आस्था तक नहीं होती है। (१६) राज्य की सीमा पर स्थित विहार में सदा राजभय बना रहता है। लोग सीमा पर रहनेवाले योगी को गुप्तचर समझते हैं। (१७) जिस विहार में अमनुष्य उपद्रव आदि हों, वहाँ भी नहीं रहना चाहिए। (१८) जिस जगह रहते हुए कल्याण मित्र न मिलें, वह भी स्थान उपयुक्त नहीं है। इन अठारह प्रकार के दोषों को जानकर इनसे रहित विहार में रहते हुए कर्मस्थान में जुटना चाहिए। पुराने योगी लोगों ने भी कहा है—

महावासं नवावासं जरावासञ्च पन्थनिं।
सोण्डिं पण्णञ्च पुप्फञ्च फलं पत्थितमेव च॥
नगरं दारुना खेत्तं विसभागेन पट्टनं।
पच्चन्तसीमा सप्पायं यत्थ मित्तो न लब्भति॥
अट्ठारसेतानि ठानानि इति विञ्ञाय पण्डितो।
आरका परिवज्जेय्य मग्गं पटिभयं यथा॥

महा विहार, नया विहार, पुराना विहार, मार्ग के पासवाला, प्याऊ के पासवाला, पत्ती, फूल, फल से युक्त तथा पूजनीय स्थान, नगरवाला, लकड़ीवाला, खेतों से घिरा, अनमेल व्यक्तियोंवाला, बन्दरगाह और स्टेशन, निर्जन प्रदेश, राज्य सीमा, अनुकूल स्थान और जहाँ मित्र नहीं मिलता—इन अठारह स्थानों को बुद्धिमान् पुरुष जानकर भयावने मार्ग के समान दूर से ही त्याग दे।

जो विहार भिक्षाटन करनेवाले गाँव से न बहुत दूर होता है, और न बहुत निकट। आने-जाने की सुभीता वाला होता है। दिन में लोगों से भरा हुआ नहीं होता है, जहाँ रात में बहुत शब्द और शोर नहीं होता है। जो डंस, मच्छड़, साँप-बिच्छू आदि से रहित होता है। जहाँ भिक्षा सुलभ होती है और कल्याण मित्र उपलब्ध होते हैं। ऐसा विहार योगी के लिए योग्य विहार कहा जाता है। ऐसे विहार को विचार कर छोटी-मोटी बाधाओं को भी दूर कर लेना चाहिए। जैसे कि, लम्बे बाल, नख और रोओं को काटना चाहिये। फटे-पुराने चीवरों में पेवन्द लगा या सी लेना चाहिए। गन्दे चीवरों को रँग लेना चाहिए। चौकी-चारपाई आदि को साफ कर लेना चाहिए।

इस प्रकार छोटी-मोटी बाधाओं से रहित योगी को दिन के भोजन के पश्चात्, कुछ विश्राम कर एकान्त स्थान में जाकर पृथ्वी कसिण* को बनाना चाहिए। पृथ्वी कसिण को बनाने के लिए नदी के किनारे की या जमीन के भीतर से निकाली हुई पीली मिट्टी का प्रयोग करना चाहिये। एक चटाई, तख्ती, पटरी या अन्य किसी ऐसी वस्तु के ऊपर जिसे कि उठाकर एक जगह से दूसरी जगह ले जा सकें, कसिण बनाना चाहिये। पहले मिट्टी को खूब गूँध कर कंकड़ी आदि निकाल कर एक बालिश्त चार अंगुल व्यास का एक गोला बनाना चाहिए। मिट्टी को लीपकर बनाने में बड़ी सुविधा होती है। मिट्टी कुछ मोटी ही लगानी चाहिए, ताकि सूखने पर जल्द फटे नहीं। उसकी ऊपरी सतह बिल्कुल बराबर और चिकनी होनी चाहिए। कसिण का यह गोला विहार के बाहर किसी आड़, झुके हुए पहाड़ की छाया, या पर्णकुटी में समेट कर ले जाने योग्य अथवा वहीं रहने योग्य भी बनवाया जा सकता है। अपनी सुविधा के अनुसार योगी को स्वयं इसका विचार कर लेना चाहिए। यदि समेट कर ले जाने योग्य बनाना हो तो छोटे-छोटे चार डण्डों में कपड़े का टुकड़ा या चटाई को बाँध कर उस पर तृण, जड़, रोड़े, बालू से रहित खूब गूँधी हुई मिट्टी से लीपकर उक्त प्रमाण के बराबर गोला बनाना चाहिए। जहाँ निमित्त ग्रहण करना हो वहाँ उसे

---

* 'कसिण' शब्द पालि भाषा का है। इसका संस्कृत रूप 'कृत्स्न' होता है। 'कृत्स्न' का अर्थ है सकल। चूँकि कसिण-भावना में सकलत्व की ही भावना की जाती है, अल्प निमित्त को ही सर्वत्र व्याप्त करके भावना करते हैं, इसीलिये पृथ्वी आदि की भावना को कसिण-भावना कहते हैं।

भूमि पर रख कर बिछा देना चाहिए। उस स्थान को साफ कर स्नान करके या कसिण-मण्डल से ढाई हाथ की दूरी पर बिछी, एक बालिश्त चार अंगुल पायेवाली चौकी पर बैठना चाहिए। उससे अधिक दूर बैठने पर कसिण नहीं जान पड़ता है। अधिक पास में रहने से कसिण के दोष दीख पड़ते है। ऊँचे बैठनेवाले को गर्दन झुकाकर देखना पड़ता है और बहुत नीचे बैठनेवाले के घुटने दुखते हैं।

उक्त प्रकार से बैठकर सांसारिक आसक्ति एवं काम-भोगों के दोषों को देखकर उनसे मुक्ति पाने का अभिलाषी हो त्रिरत्न के गुणों का स्मरण करते, "मैं इस साधन से अवश्य ही योग सुख को प्राप्त कर लूँगा" अधिष्ठान कर सम-आकार से आँखों को उघाड़ कसिण-मण्डल को देखते हुए निमित्त को ग्रहण करना चाहिए। न तो रंग को ध्यान पूर्वक देखना चाहिए और न लक्षण को ही मन में करना चाहिए, प्रत्युत रंग को बिना त्यागे 'रंग के साथ ही पृथ्वी है' ऐसे पृथ्वी-धातु के आधिक्य के अनुसार प्रज्ञप्ति धर्म में चित्त को लगाकर मनमें करना चाहिए। तत्पश्चात् योगी को पृथ्वी, मही, मेदिनी, भूमि, वसुधा, वसुन्धरा आदि पृथ्वी के नामों में से जो अनुकूल हो उसे बोलना चाहिए। चूँकि 'पृथ्वी' नाम ही स्पष्ट है, इसलिये स्पष्टता के अनुसार 'पृथ्वी', 'पृथ्वी' कहकर भावना करनी चाहिए। समय-समय पर आँखों को उघाड़ कर, समय-समय पर मूँद कर आवर्जन करना चाहिये। जब तक कसिण-निमित्त चित्त से भली प्रकार ग्रहण न कर लिया जाय और आँखों से देखने के समान मन में न जान पड़ने लगे, तब तक सैकड़ों-हजारों बार इसी प्रकार भावना करनी चाहिए। इस प्रकार भावना करनेवाले को जब आँख मूँद कर आवर्जन करते हुए आँख उघाड़ कर देखने के समय के समान दिखाई देता है, तब उसे उग्गह-निमित्त कहते हैं। जब उग्गह-निमित्त उत्पन्न हो जाय तब उस स्थान पर नहीं बैठना चाहिए। अपने रहने की जगह जाकर वहीं बैठ कर भावना करनी चाहिए। यदि रहने की जगह आने पर किसी प्रकार ग्रहण किया हुआ निमित्त नष्ट हो जाय तो पुनः उस स्थान पर जा निमित्त को ले, आकर आराम से बैठकर भावना करनी चाहिए। बार-बार निमित्त का आवर्जन करना चाहिए। तर्क-वितर्क करना चाहिए। योगी के ऐसा करने पर नीवरण* दब जाते हैं। क्लेश बैठ जाते हैं। उपचार-समाधि से चित्त एकाग्र हो जाता है। प्रतिभाग-निमित्त उत्पन्न होता है। पहले के उग्गह-निमित्त से यह प्रतिभाग-निमित्त के समय कसिण-निमित्त सैकड़ों गुना, हजारों गुना परिशुद्ध होकर दिखाई देता है। वह भी न वर्णवान, न बनावट के अनुसार। यदि वह ऐसा हो तो आँख से दिखाई देने योग्य स्थूल, विचारने योग्य हो, किन्तु वह वैसा नहीं होता; केवल समाधि के लाभी-जनों को जान पड़ने के आकार मात्र की संज्ञा से उत्पन्न होता है। प्रतिभाग-निमित्त के उत्पन्न होने के समय से उस योगी के नीवरण दबे हुए ही होते हैं, क्लेश बैठे हुए ही और उपचार-समाधि से चित्त एकाग्र हुआ ही।

आज का पत्र कुछ लम्बा हो गया। विषय को भी समाप्त नहीं कर सका। ग्यारह बज गया है। स्नान और भोजन करना है। नहीं तो विलम्ब करने से आज 'ठन्-ठन् गोपाल' करना पड़ेगा, कहीं कल ही भोजन मिल पायेगा। तुम जानते ही हो कि हम योगी लोग बारह बजे दिन से पहले ही भोजन कर लेते हैं। उसके बाद भोजन करना निषिद्ध है। बस आज इतना ही। 'पृथ्वी-कसिण-भावना' सम्बन्धी इसके आगे की यौगिक क्रियायें अगले पत्र में लिख भेजूँगा। घबड़ाना नहीं। योगिराज के आशीर्वाद।

सावत्थी तुम्हारा—
१-१०-५३ योगी

---

* नीवरण पाँच हैं—(१) कामच्छन्द, (२) व्यापाद, (३) स्त्यानमृद्ध, (४) औद्धत्य-कौकृत्य, (५) विचिकित्सा। जब तक यह पाँचों नीवरण बने रहते हैं, तब तक समाधि का लाभ नहीं हो सकता, इसी से इन्हें नीवरण अर्थात् समाधि के लिये 'रुकावट' कहा जाता है।

आन्ध्र का पुरातत्व वैभव : कोंडापुर

श्री कर्पूरचन्द्र कुलिश

कोंडापुर में हाल ही में हुई खुदाई से प्राप्त आन्ध्र-कालीन अवशेष पुरातत्व और स्थापत्य के इतिहास में एक नये अध्याय का सूत्रपात करते हैं। ये अवश्य आन्ध्र युग के सम्पूर्ण समाज की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। अवशेषों में मकानों और बौद्ध विहारों के खण्डहर, बर्तन, सिक्के, आभूषण, खिलौने, हाथीदाँत, मिट्टी और काँच के मनके, लोहे के शस्त्र और खुदे हुए पत्थर आदि प्रायः सभी प्रकार की जीवनोपयोगी वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं।

कोंडापुर के इन अवशेषों का पता हाल ही में लगा है और विभिन्न विशेषज्ञों ने इनके अध्ययन के पश्चात् जो विचार प्रगट किये हैं उनके आधार पर ये अवशेष ३०० वर्ष ईसा पूर्व से लेकर २०० वर्ष ईसवी तक के हैं। धार्मिक स्थानों में भी जितने चैत्य और विहार तथा खुदे हुये पत्थर प्राप्त हुये हैं उनमें कहीं कोई मूर्त्ति नहीं है, इससे पता चलता है कि ये हीनयान सम्प्रदाय के हैं, जब कि बौद्धों में मूर्त्ति की प्रतिष्ठा नहीं हुई थी।

यह स्थान हैदराबाद राज्य के मेडक जिले की काला-बगर तहसील के कोंडापुर ग्राम से लगभग आधामील दक्षिण में है। यह आसपास के धरातल से लगभग ३० फुट ऊँचा, गोलाकार और लगभग ८० एकड़ भूमि में है। आसपास कई छोटी-छोटी पहाड़ी चट्टानें और एक जल-स्रोत भी है।

कोंडापुर की खुदाई में जो सबसे महत्वपूर्ण वस्तु मिली है वह आन्ध्र-राजाओं के सिक्के हैं और संख्या में १८३५ हैं। इन सिक्कों में कुछ सिक्के गौतमीपुत्र शातकर्णी और पुलुमावी के भी हैं जिनसे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह स्थान २०० वर्ष ईसवी तक आबाद रहा होगा। इसके बाद की सभ्यता का इस स्थान पर कोई प्रमाण नहीं मिलता जिसके आधार पर इसके अस्तित्व का अनुमान लगाया जाय। आन्ध्र-राजा आर्येतर और बौद्ध थे, किन्तु गौतमीपुत्र कट्टर ब्राह्मण थे और ब्राह्मणवाद के आन्दोलन के प्रमुख नेता थे। वे बौद्धों के कट्टर विरोधी थे। नासिक में प्राप्त एक शिलालेख में उनकी जो स्तुति लिखी गई है वह इसका प्रमाण है। स्तुति में लिखा है—"उसने कर्त्तव्य पर पूरा ध्यान दिया, लौकिक सुख, भोग और इच्छाओं की पूर्त्ति को प्रमुख स्थान दिया। वह सुख वैभव का गढ़ था। वह संसार में एकमेव चतुर पुरुष था, एकमेव शूरमा था। उसने ब्राह्मणों की वृद्धि के लिये मार्ग प्रशस्त किया। उसने राम, कृष्ण, अर्जुन, भीमसेन, जन्मेजय, नमगा, नहुष, ययाति, अम्बरीष आदि हिन्दू पुरुषों की भाँति ही ब्राह्मणत्व की श्रीवृद्धि की। उसने अनेक युद्धों में अपने शत्रुओं का नाश किया, क्षत्रियों का मानमर्दन किया, शाक्य, यवन, पल्हवों आदि को मार भगाया और क्षह-रातों को नाम-शेष कर दिया।"

कुछ विद्वानों का मत है कि सम्भवतः गौतमीपुत्र के ब्राह्मणवादी तूफान में ही कोंडापुर का आबाद नगर भी ध्वस्त हो गया हो जो कि बौद्ध धर्म और अनार्य सभ्यता का केन्द्र था। कुछ भी हो, कोंडापुर का आन्ध्र और बौद्धकालीन होना उक्त प्रमाणों के आधार पर निर्वि-वाद है।

कोंडापुर की खुदाई में जो बौद्ध विहार, चैत्य और स्तूपों की नींवों के चिह्न और अवशेष प्राप्त हुये हैं उनमें कुछ सफेद पत्थर या चूने के पत्थर भी मिले हैं जिनपर बारीक खुदाई हो रही है। इस प्रकार का पत्थर बौद्ध शिल्पियों को अत्यन्त प्रिय रहा है। यह वैसा ही है जैसा कि ३०० ईसवी पूर्व के अमरावती, नागार्जुन, कोंडा आदि अन्य स्थलों पर प्राप्त हुआ है। बौद्ध लोग इसे अपने धार्मिक स्थानों में प्रयुक्त किया करते थे। हैदराबाद राज्य के संग्रहालय विभाग के अध्यक्ष श्री ख्वाजा मोह-म्मद अहमद खान ने मुझे बताया कि यदि कुछ परिश्रम और रुपया व्यय करके इन टीलों की पूरी खुदाई की जाय

तो पाषाणकाल तक के अवशेष मिलने की सम्भावना है, क्योंकि यहाँ जो वस्तुयें प्राप्त हुई हैं उनसे पता चलता है कि यहाँ की सभ्यता बहुत पुरानी और विकसित थी। यहाँ यह भी उल्लेख कर देना उचित होगा कि कोंडापुर की खुदाई का मुख्य श्रेय भी ख्वाजासाहिब को ही है।

इस खुदाई में जो बर्तन निकले हैं, वे भारत के चीनी मिट्टी के इतिहास में स्वर्णयुग प्रस्तुत करते हैं। इन बर्तनों में कई प्रकार की मिट्टियाँ और निर्माण शैलियाँ काम में लायी गई हैं। कुछ बर्तनों की पालिश और सुघड़ता देखने पर तो ऐसा भ्रम हो जाता है कि ये आजकल के बने हुये हैं। मैंने एक सुराही का बीच का भाग देखा जिसकी पालिश की चिकनाई में मुँह देखा जा सकता है। कुछ बर्तन आकार में बहुत बड़े हैं जो ऊँचाई में लगभग ३॥ फीट, चौड़ाई में दो फीट, और परिधि में लगभग पाँच फीट तक होंगे। इन बर्तनों में से कुछेक पर ब्राह्मी लिपि के अक्षर भी लिखे हुये हैं जो शायद 'त्रिरत्न' के सूचक हैं। जो बर्तन पतले हैं उनमें बहुत बढ़िया किस्म की सफेद मिट्टी काम में ली गई है और ऊपर से रंग-बिरंगी पालिश कर दी गई है। मोटे बर्तनों में साधारण मिट्टी काम में ली गई है। छोटे-छोटे प्यालों, कटोरियों से लेकर बड़े मटकों तक—सभी बर्तनों पर सुन्दर बेल-बूटों से सजावट की गई है। बर्तन बहुत बड़ी तादाद में निकले हैं जिनको वहीं संग्रहीत करके सुरक्षित रख दिया गया है।

कोंडापुर की खुदाई में कई प्रकार के मनके प्राप्त हुए हैं, जिनमें मिट्टी, चीनी, काँच, तामड़ा, हाथी दाँत और दूसरे कई प्रकार के पत्थरों के मनके हैं। ये मनके हार व अन्य आभूषण और मालायें बनाने के काम में लाये जाते थे। खुदाई में प्राप्त नन्हीं-नन्हीं मानव-मूर्तियों में इन मनकों का प्रयोग देखा गया है। ये मूर्त्तियाँ छोटे-छोटे खिलौनों जैसी हैं और कई तो आभूषणों से सुसज्जित हैं। ये खिलौना रूपी मूर्त्तियाँ संभवतः हीनयान सम्प्रदाय के बौद्धों द्वारा बनाई गई होंगी। कोंडापुर में औद्योगिक भवनों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। उनमें इन मूर्त्तियों, मनकों और सिक्कों को ढालने के साँचे भी प्राप्त हुये। इनमें चूड़ियों के भी साँचे हैं। कुछ 'अर्द्धचन्द्र' भी हाथी-दाँत व चीनी मिट्टी के बने हुये मिलते हैं। उनका उपयोग अभी समझ में नही आया। चीनी के लिए प्रायः वे 'कावलिन' नामक सफेद चिकनी मिट्टी का उपयोग करते थे। छोटी-छोटी मूर्त्तियों और चेहरों में इसी मिट्टी का उपयोग किया गया है। ये मूर्त्तियाँ धार्मिक पुरुषों की सी हैं। इन्हें शायद बौद्ध लोग गले में पहिनते होंगे। ये वस्तुयें आन्ध्र-युग की क्ले माडलिंग कला पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं।

कोंडापुर के अवशेषों को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि यह स्थान अत्यन्त वैभव-सम्पन्न, सुसंस्कृत और कला-कौशल का केन्द्र रहा होगा। टकसाल के साँचे आदि के आधार पर यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि कोंडापुर तत्कालीन आन्ध्र-राज्य की राजधानी रहा हो और बाद में बौद्ध-विरोधी आन्दोलन का कोप-भाजन बन गया हो।

खुदाई में एक और महत्वपूर्ण वस्तु प्राप्त हुई है, वह सोने का रोमन सिक्का है। साथ ही कुछ गले में पहिनने के लॉकेट के टुकड़े भी हैं जो लगभग १५ हैं। ये रोमन पोपों के सिक्कों की तरह के मालूम पड़ते हैं। मालूम होता है उन दिनों रोम से हमारा व्यापार बहुत बढ़ा-चढ़ा था।

मेगस्थनीज ने अपनी भारत-यात्रा के प्रसंग में आन्ध्रों का भी जिक्र किया है।

टाल्मी और पेरीप्लस ने भी ईसा की दूसरी शताब्दी की यात्राओं के वर्णन में आन्ध्रों का वर्णन किया है।

कोंडापुर के विषय में अनुसंधान और शोध की आवश्यकता है। हमारी प्राचीन सभ्यता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ने की आशा है।

अवतारी लामा और उनकी पहचान

लामा लोबजङ, लद्दाखी

तिब्बत में बहुत-से अवतारी लामा होते हैं। उनके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की धारणायें हैं, किन्तु उनके जन्म तथा पहचान के सम्बन्ध में सभी तिब्बतवासी एकमत हैं। ये अवतारी लामा वास्तव में बोधिसत्व हैं जो मनुष्य-लोक में आकर प्राणिमात्र की भलाई करते हैं। कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म को बतला कर लोगों को संसार के दुःखों से मुक्त कराने के लिये ही इनका अवतार होता है।

कोई-कोई अवतारी लामा दिवंगत होने के समय अपने आश्रम के सभी भिक्षुओं को एकत्र कर उपदेश देते हैं और स्पष्ट रूप से बतलाते हैं कि मेरा देहान्त अमुक दिन अमुक समय में होगा। जब तक मेरा पुनः अवतार न हो तब तक आप लोग मेरे बतलाये हुए प्रकार से रहें। अवतारी लामा की मृत्यु के उपरान्त बड़े-बड़े ज्योतिषी आ गणना कर बतलाते हैं कि दिवंगत लामा का जन्म अमुक दिशा में होगा। वे घर की पहचान आदि को भी निर्दिष्ट करते हैं।

अवतारी लामा भी दूसरे जन्म में कुछ सयाना होने पर बतलाते हैं कि हमारा मन्दिर 'इस प्रकार का है, इतने भिक्षु लोग उसमें रहते हैं।' मन्दिर में जो कुछ रहता है, सभी को वे बतला देते हैं। वहाँ के ज्योतिषी लोग बालक लामा के बतलाये हुए प्रकार के मन्दिर की तलाश करते हैं। मन्दिर के मिलते ही सामानों का मेल बैठाते हैं। उन सामानों में उन्हीं के समान अन्य व्यक्तियों के सामानों को मिला देते हैं और बालक अवतारी लामा से अनेक प्रकार के प्रश्न पूछते हैं। जब लामा अपने सामानों को पहचान लेता है और उनकी पूरी होलिया बतलाता है तब निश्चित हो जाता है कि यही दिवंगत लामा हैं। तदुपरान्त बड़ी धूम-धाम के साथ हजारों लोग नाना प्रकार के बाजे बजाते उन्हें अपने मन्दिर में ले जाते हैं। उस मन्दिर के सभी भिक्षु मन्दिर की छत के ऊपर बैठकर नाना प्रकार के बाजे उनके स्वागत में बजाते हैं। लामा के मन्दिर में पधारने पर सभी भिक्षु एक-एक खादाक् (=एक विशेष प्रकार का भेंट-वस्त्र) लेकर उनका दर्शन करने जाते हैं। दूसरे दिन गृहस्थ लोग उनका दर्शन करते हैं। अवतारी लामाओं की पहचान की यह प्राक्-पद्धति है।

तथागत की जीवन-साधना

श्री बालचन्द्र जैन एम० ए०

पच्चीस सौ से कुछ अधिक वर्ष पहले की बात है। भारतवर्ष के पूर्वी प्रदेश में वह ज्योति जगी, जिसके प्रकाश से न केवल भारतवर्ष प्रत्युत समूचा विश्व आज तक आलोकित है; तथागत गौतम बुद्ध ने शान्ति की खोज की, दुःख और उसके निरोध को जाना—अपने लिए और जन-साधारण के लिये।

बुद्ध-जन्म का समय भारतवर्ष की समृद्धि और शक्ति का युग था। समृद्धि से स्वभावतः भोग-विलास की ओर प्रवृत्ति होती है, भोग से क्षीणता आते देर नहीं लगती और जब क्षीणता आ जाती है तो आडम्बर और अंधविश्वास बढ़ने लगते हैं। शाक्यमुनि गौतम ने आडम्बर और अंध-विश्वास को उखाड़ फेंका और अपनी दिव्य साधना से सरल, सच्चे और सीधे जीवन के मार्ग की प्राप्ति की; इसी मार्ग पर उन्होंने सबका मार्ग-प्रदर्शन किया।

ईस्वी सन् से ६२३ वर्ष पूर्व; कपिलवस्तु के शाक्यकुल के राजा शुद्धोदन की रानी महामाया के गर्भ मे वैशाखी

पूर्णिमा को सिद्धार्थ का जन्म हुआ। शाक्यराष्ट्र के बड़े-बड़े ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की कि 'महाराज, आपका पुत्र महापुरुष के समस्त लक्षणों से युक्त है; यदि यह गृहस्थ रहा तो चक्रवर्ती का विभव प्राप्त करेगा, और यदि इसने संसार को त्यागा तो असंख्य प्राणियों का उद्धार करेगा।'

राजमहल के सुखों में सिद्धार्थ का मन रमता न था। वह एकान्तप्रेमी और चिन्ताशील प्रवृत्ति का बालक था। पिता को आशंका बनी रहती—कुमार कहीं विरक्त न हो जाए। इसलिए ज्योंही सिद्धार्थ की अवस्था सोलह वर्ष की हुई, राजकुमारी यशोधरा के साथ उसका विवाह कर दिया गया, यह सोचकर कि इससे उसका मन बँधा रहेगा। लेकिन गौतम की गम्भीर चिन्ता बढ़ती ही रही—सोने की जंजीर में बँधे हाथी का मन जंगलों में फिरने को चाहता ही है!

सिद्धार्थ ने एक दिन एक रोगी को देखा, दूसरे दिन एक बूढ़े मनुष्य को देखा और फिर किसी मृत व्यक्ति की लाश देखी। रथ के सारथी से उन्होंने पूछा—'क्या ऐसी दशा सबकी होती है?' सारथी ने उत्तर दिया—'कुमार, जो जन्मा है वह रोगी भी होगा और बूढ़ा भी, उसकी मृत्यु भी अवश्यभावी है; संसार के समस्त प्राणियों को ये दुःख भोगने पड़ते हैं, इनसे बचने का कोई उपाय नहीं।'

"सारथी, रथ लौटा लो!" गौतम ने आज्ञा दी। उनके चित्त में उथल-पथल मच गई, वे विचार में पड़ गए—'कितनी मिथ्या धारणा है संसारी मनुष्य की! क्या सुख और आनन्द का वह कभी उपभोग कर सकता है जबकि उसे सदा भय लगा रहता है कि वह शीघ्र ही बूढ़ा होगा और फिर मर जाएगा।'

इस समय तक गौतम अट्ठाईस बरस के हो चुके थे। उन्होंने संकल्प किया 'मैं संसार का त्याग कर दूँगा'। संसार-त्याग के संकल्प से गौतम का मन नाच ही रहा था कि उन्हें समाचार मिला कि देवी यशोधरा ने पुत्र को जन्म दिया है। सारी प्रसन्नता जाती रही गौतम की। कहाँ तो संसार को त्याग देने का संकल्प और कहाँ पुत्र के जन्म की खबर। पुत्र का जन्म गौतम को अपने संकल्प के लिए राहु दिखाई पड़ा, उनके मुख से अनायास ही 'राहुल आया है' निकल पड़ा और नए कुमार का नाम 'राहुल' पड़ गया।

राहुल के जन्म से सिद्धार्थ के चित्त की तरंगें और भी उद्वेलित हो उठीं। वे पिता के पास पहुँचे और बोले, "मुझे घर छोड़ने की आज्ञा दीजिए।"

"क्या कहते हो कुमार?" महाराज शुद्धोदन का गला भर आया—"तुम्हें कष्ट ही कौन सा है, किस बात की कमी है?"

सिद्धार्थ ने उत्तर दिया—'क्या आप मुझे यह विश्वास दिला सकते हैं कि मैं न तो कभी मरूँगा, न बूढ़ा होऊँगा और न कोई रोग ही मुझे कभी सताएगा?"

महाराज निरुत्तर हो गए—"इन सब पर मनुष्य का क्या वश है कुमार! प्रकृति के नियम को भला कौन टाल सकता है।"

सिद्धार्थ ने कहा—"तो फिर मैं उस ज्ञान की खोज में निकलूँगा जो संसार के प्राणियों को जरा, और मरण के दुःख से बचाता है।" पिता चुप हो गए पर सिद्धार्थ का इरादा पक्का हो गया।

महाभिनिष्क्रमण

रात का समय था, महल के दास-दासी गहरी नींद में सो रहे थे; गौतम ने सारथी छन्दक से कहा "मुझे बहुत दूर जाना है, शीघ्र घोड़ा तैयार करो।"

आधी रात को छन्दक ने कन्थक घोड़े को सजाकर द्वार पर खड़ा कर दिया। गौतम के मन में आया कि घर छोड़ने के पहले अन्तिम बार पुत्र और पत्नी को देख लूँ। वे राहुलमाता के कमरे में गए। यशोधरा फूलों की सेज पर निश्चिन्त सो रही थी, उसका एक हाथ बच्चे के माथे पर था। गौतम की इच्छा हुई "पुत्र को गोद में ले लूँ।" पर अंदर की आवाज ने उन्हें सावधान कर दिया। वे वापस बाहर निकल आए। मोह का राजा मार पराजित हो गया। उसने तरह तरह से कोशिश की कि गौतम अपने मार्ग से विमुख हो जाय। मार बोला—'कहाँ जाते हो राजकुमार! आज से सातवें दिन तुम्हें चक्ररत्न की प्राप्ति होना है।"

गौतम ने उत्तर दिया—"मार, मुझे पृथ्वी का चक्रवर्ती नहीं बनना है, मैं प्राणियों के उद्धार के लिए बुद्ध बनूँगा।"

मगध के पहाड़ी जंगलों में एक तेजस्वी युवक यहाँ से वहाँ भटका फिरता है। सर्दी गर्मी और वर्षा से त्राण पाने के लिए संसार के प्राणी कठोर श्रम से घर और घोंसले बनाते हैं। लेकिन एक यह कि कपिल-वस्तु का राजकुमार होते हुए भी गृह-विहीन पथिक बनकर निकल पड़ा है। उसके तन पर न कीमती वस्त्र हैं न आभरण। सुन्दर केशों को उसने तलवार से काट डाला है, महल और राज्य के सुखों को लात मार कर वह जंगल के कष्ट सहता है। कभी वैशाली जाता है तो कभी राजगृह, कभी गया के पहाड़ों पर तप करता है तो कभी फल्गू के किनारे समाधि लगाता है। कितने दार्शनिकों और कितने आचार्यों की उसने सेवा की ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा से। लेकिन उसके अन्दर की प्यास नहीं बुझती—उसे शान्ति नहीं मिलती।

बोधि-लाभ

छः वर्ष तक गौतम ने कठोर तप किया। भोजन को त्यागकर सोने से शरीर को सुखाकर काँटा बना दिया। फिर भी उन्हें ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। शिथिलता के कारण एक दिन वे गिर पड़े और मूर्छित हो गए। इसी बीच एक गीत की ध्वनि उनके कान में पड़ी—"वाणी के तार को इतना न कसो कि वह टूट ही जाए!"

बोधिसत्व को शिक्षा मिली कि कठोर तप से बुद्ध नहीं बना जा सकता, और उन्होंने कठोर तपस्या छोड़ दिया। साथ के संन्यासियों ने समझा गौतम डर गया। वे अन्यत्र चले गए।

एक रात गौतम ने पाँच स्वप्न देखे। उन्हें विश्वास हो गया कि अब मुझे बोधिलाभ होगा। गया के निकट एक पीपल के वृक्ष के नीचे उन्होंने समाधि लगाई। मार ने बड़े प्रलोभन दिए, डराया, धमकाया और तरह-तरह के विघ्न उपस्थित किए। लेकिन उसकी एक न चली। वैशाखी पूर्णिमा के दिन बोधिसत्व गौतम—गौतमबुद्ध हो गए। उसके मुख से संतोष की वाणी निकली:—

"संसार में मैं बहुत भटका, बार-बार जन्म लेने के दुःख मैंने सहे, संसार के कारण को खोजता रहा। मुझे वह दिखाई पड़ गया। अब इस संसार में मुझे और जन्म नहीं लेना है। मेरे सब बंधन खुल गए हैं।"

अपना उद्धार तो बुद्ध कर चुके अब उन्हें जनसाधारण के हित की चिन्ता लगी। इसके लिए योग्य शिष्य का मिलना आवश्यक था। बुद्ध के निकट ऋषिपत्तन मृगदाव पहुँचे। वहाँ उन्हें पञ्चवर्गी भिक्षु मिले! बुद्ध ने उन्हें मध्यमा प्रतिपदा का ज्ञान कराया, चार आर्यसत्य बताए और अष्टांगिक मार्ग का उपदेश किया। वे बोले—

"भिक्षुओ दो, अन्तों का सेवन नहीं करना चाहिये। कौन से वे दो अन्त; एक तो भोग विलास में डूबे रहना जो अत्यन्त हीन और अनार्य है और दूसरा शरीर को क्लेश देकर व्यर्थ सुखाना जो अनर्थक है।"

बुद्ध के अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी, उनके शान्तिवाद ने बहुतों को प्रभावित किया। बुद्ध इतने से सन्तुष्ट न हुए। तथागत ने कहा—

"भिक्षुओ, चारों दिशाओं में जाओ, घूमो जनसाधारण के हित के लिए, जनसाधारण के सुख के लिए, देवों और मनुष्यों के कल्याण के लिए, हित के लिए, सुख के लिए, तुम लोग उस धर्म का उपदेश करो जो आदि में कल्याण है, मध्य में कल्याण है और अन्त में कल्याण है।"

धर्मचक्र-प्रवर्तन

करुणा और लोककल्याण की उत्कट भावना से बुद्ध सद्धर्म के प्रचार के लिए निकल पड़े। वे जहाँ कहीं जाते भूले-भटकों को संबोधते और उन्हें धर्म के पथ पर लगाते। साधारण जन से लेकर बड़े-बड़े दार्शनिक और मुकुटधारी राजा तक उनके धर्म में दीक्षित हो गए। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के साथ बुद्ध कपिलवस्तु भी पहुँचे। अपने पिता के राज्य में जब हाथ में भिक्षा-पात्र लेकर घर-घर जाकर उन्होंने भिक्षा माँगी तो शुद्धोदन ने कहा—"गौतम, हम क्षत्रिय हैं। हमारे कुल में किसी ने भिक्षा नहीं माँगी।"

बुद्ध ने उत्तर दिया—"महाराज, मैं अब राजवंश का नहीं, मेरा वंश बुद्धों का वंश है। भिक्षा माँगना हमारे वंश की रीति है।

बुद्ध यशोधरा के द्वार पर भी पहुँचे, राहुल को आगे कर के यशोधरा ने उनकी वंदना की। जब बुद्ध चलने लगे तो यशोधरा ने राहुल से कहा:—'बेटा, ये तुम्हारे पिता हैं इन से अपना पितृदाय माँगो।'

राहुल ने आगे बढ़कर बुद्ध से दाय माँगा। बुद्ध ने

सारिपुत्र से कहा—"कुमार को प्रव्रज्या दो।" राहुल भिक्षु हो गया। .

बुद्ध के धर्म में ब्राह्मण और शूद्र का भेद न था, वे वर्णभेद को अच्छा नहीं समझते थे। उनका मत था कि—

'ब्राह्मण आदि केवल नाम हैं जो मनुष्यों के रक्खे हुए हैं। जिस प्रकार सड़क पर खेलने वाले बालक मिट्टी के बहुत से खिलौने बनाकर उनके भिन्न-भिन्न नाम रख लेते हैं, किसी को दही और किसी को घी कहते हैं पर वे खिलौने वह नहीं बन जाते, वैसे ही भिन्न-भिन्न नाम रख लेने से मनुष्यों में भेद नहीं पैदा हो सकता।"

उपालि नाम के नाई को बुद्ध ने अपने संघ में सम्मिलित किया था। इस नाई को बौद्ध संघ में इतना आदर मिला कि वह संघ का धर्मभांडागारिक कहलाता था और बुद्ध के बाद वही संघ का प्रमुख चुना गया। चाण्डाल की लड़की प्रकृति को भी बुद्ध ने दीक्षा दी थी। उसकी कहानी इस प्रकार है:—

एक कुएँ पर चाण्डाल की बेटी, जिसका नाम प्रकृति था, पानी भर रही थी। आनन्द वहाँ से निकले और उन्होंने उससे पानी माँगा। लड़की संकोच में पड़ गई वह बोली—"भिक्षु, मैं चाण्डाल-कन्या हूँ तुम्हें पानी कैसे दे सकती हूँ?"

आनन्द ने कहा—"मैंने तुमसे पानी माँगा है यह तो नहीं पूछा कि तुम किस जाति की हो?" लड़की ने आनन्द को पानी दे दिया। बाद में वह लड़की बुद्ध के भिक्षुणी-संघ में सम्मिलित हो गई।

वैशाली की गणिका अम्बपाली के बुद्धभक्त होने की कहानी बहुत प्रसिद्ध है। वह उनके दर्शन को दौड़ी गई और उसने प्रार्थना की कि कल भिक्षु संघ सहित भगवान मेरे यहाँ भोजन करें। बुद्ध ने मौन रह कर उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

लौटने में अम्बपाली के रथ की लिच्छवि कुमारों के रथ से टक्कर हो गई। लिच्छवि कुमार बोले—"अम्बपाली, क्या बात है? आज तू लिच्छवि कुमारों के धुरा से धुरा टकराकर चल रही है?"

अम्बपाली ने प्रसन्न होकर कहा "आर्यपुत्रो! मैंने भगवान को संघ-सहित कल के भोजन के लिए निमंत्रित किया है।"

लिच्छवि कुमारों ने कहा—"अम्बपाली हम एक लाख मुद्रा देंगे यह भोजन हमें कराने दे।"

अम्बपाली ने उत्तर दिया "आर्यपुत्रो, यदि आप वैशाली का राज्य भी मुझे दे दें तो भी मैं यह भोजन नहीं दूँगी।" लिच्छवि कुमार निराश होकर कहने लगे 'अम्बपाली ने हमें हरा दिया।'

दूसरे दिन बुद्ध ने संघसहित अम्बपाली के घर पहुँच भोजन किया और उसे उपदेश किया। अम्बपाली ने संघ को अपना बगीचा दान कर दिया और स्वयं भिक्षुणी संघ में सम्मिलित हो गई।

इस प्रकार धर्म का उपदेश करते तथागत की अवस्था ८० वर्ष की हो चुकी, उनका शरीर जीर्ण हो गया और वे अस्वस्थ रहने लगे।

परिनिर्वाण

आनन्द ने चिन्ता प्रकट की। बुद्ध आनन्द की चिन्ता का कारण जान गए। आनन्द को बुलाकर उन्होंने कहा—

"आनन्द मैं बूढ़ा हो चुका, भिक्षु-संघ अब मुझसे क्या आशा करता है, मैंने पहले ही सब कुछ बता दिया है, तथागत के धर्म में कोई गाँठ नहीं है, सब स्पष्ट है, इसलिए आनन्द, अपनी ही ज्योति में चलो, अपना ही भरोसा करो, किसी दूसरे के भरोसे न रहो, धर्म की ज्योति में चलो, धर्म के भरोसे रहो।"

बुद्ध ने अन्तिम भोजन पावा में चुन्द सोनार के घर किया और फिर वे कुशीनगर की ओर चल दिए। वैशाखी पूर्णिमा के दिन वहीं उनका महापरिनिर्वाण हुआ। कुशीनगर के मल्लों ने चक्रवर्ती सम्राट जैसा बुद्ध का दाह-संस्कार किया और भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के क्षत्रिय राजाओं ने अपने-अपने राष्ट्र के लिए उनकी अस्थियाँ प्राप्त कीं, जिन पर उन्होंने स्तूप बनवाए।

इस प्रकार भगवान बुद्ध का सारा जीवन अपना कल्याण करने में तथा दूसरों को कल्याण का मार्ग दिखाने में बीता। उनकी पुण्य जयन्ती के अवसर पर हम श्रद्धा से विनम्र होकर उन्हें प्रणाम करते हैं, इसलिए कि हमें भी वह ज्योति प्राप्त हो!

बौद्ध-जगत्

आसाम के दो सौ व्यक्तियों ने बौद्धधर्म अपनाया

आसाम के दिघाली ग्राम के २० परिवार के २०० व्यक्तियों ने गत महीने सामूहिक रूप से पंचशील लेकर बौद्धधर्म ग्रहण किया। वे अहोम (= थाई) जाति के सांदिक, लुंपुरिया और अभोपुरिया कुल के हैं। दीक्षा-संस्कार बड़े समारोह के साथ हुआ। श्री पूर्णकान्त के सभापतित्व में समारोह का सारा कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। उक्त अवसर पर अनेक वक्ताओं के उत्साहवर्द्धक एवं सारगर्भित भाषण हुए, जिनमें श्री टी० आर० गोगया एम. एल. ए. का नाम विशेष रूप से उल्लेख्य है।

स्मरण रहे कि आसाम की अहोम जाति के लोग कुछ शताब्दी पूर्व तक बौद्ध थे, किन्तु बौद्ध भिक्षुओं के अभाव एवं बाह्य प्रभावों के कारण वे धीरे-धीरे बौद्ध-धर्म को भूल चुके थे और अपने को हिन्दू कहने लगे थे। अब पुनः उनमें नव-चेतना जागृत हुई है। वे अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास एवं बौद्ध देश स्याम से कुल-सूत्र से सम्बन्धित जानकर सामूहिक रूप से बौद्धधर्म अपना रहे हैं। आसाम में यह दूसरी बार सामूहिक रूप से दीक्षा-संस्कार हुआ है। हम अपने भूले-भटके तथा सद्-ज्ञान प्राप्त इन भाइयों का हार्दिक स्वागत करते हैं। त्रिरत्न के प्रताप से वे फलें-फूलें एवं सुखी हों।

बौद्ध सद्भावना-मण्डल का स्वागत—भारतीय महाबोधि सभा की ओर से कलकत्ते के धर्मराजिक विहार में स्याम से आये ५ व्यक्तियों के बौद्ध सद्भावना-मण्डल का पूर्ण आयोजन के साथ स्वागत किया गया। स्वागत-सभा श्री रामप्रसाद मुकर्जी के सभापतित्व में हुई। सभा में भिक्षु एन. जिनरत्न, श्री डी० एन० दास, भिक्षु शीलभद्र, श्री केशव चन्द्रगुप्त, श्री ज्योतिषचन्द्र घोष, डी० वलिसिंह और श्री मणिहर्ष ज्योति के भाषण हुए। सब वक्ताओं ने भारत-स्याम के सांस्कृतिक सम्बन्ध पर प्रकाश डाला। सद्भावना-मण्डल की ओर से भगवान् बुद्ध की दो भव्य मूर्तियाँ भारतीय महाबोधि-सभा एवं धर्मोदय सभा के कोषाध्यक्ष को प्रदान की गईं। महाबोधि-सभा की ओर से भी एक बुद्धमूर्ति सद्भावना-मण्डल के प्रधान भदन्त विमलधर्म को प्रदान की गई। सद्भावना-मण्डल ने इस स्वागत-समारोह के लिये कृतज्ञता प्रकाश किया एवं भारतीय महाबोधि सभा को धन्यवाद देते हुए परस्पर सदा दृढ़ सम्बन्ध बनाये रखने की इच्छा प्रकट की।

इस सद्भावना मण्डल में श्री करुणा कुसलासय भी थे, जो विगत अनेक वर्षों तक महाबोधि सभा में रहकर सहयोग प्रदान कर चुके हैं। यह मण्डल भारत के सभी बौद्ध-तीर्थों का परिभ्रमण कर स्याम लौट गया।

छठीं धर्म-संगीति—बर्मा में आगामी वैशाख पूर्णिमा के दिन छठीं धर्मसंगीति प्रारम्भ होनेवाली है, जिसके लिये बर्मा सरकार तथा वहाँ की बौद्ध जनता ने काफी धन व्यय किया है तथा व्यय करने का कार्यक्रम बनाया है। उक्त संगीति में प्रत्येक बौद्ध देश के भिक्षु सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रित किये गये हैं। चूँकि यह धर्म-संगीति स्थविरवादी बौद्धधर्म की है, अतः स्थविर-वादी बौद्ध देश स्याम, लंका, कम्बोडिया और लाओस के ही भिक्षु निमन्त्रित किये गये हैं। किन्तु भारत का नाम निमन्त्रण-पत्र में क्यों नहीं दिया गया, समझ में नहीं आता। यद्यपि भारत बौद्ध देश नहीं है, फिर भी यहाँ एक बड़ी संख्या में बौद्ध रहते हैं। भारतीय भिक्षुओं का भी अब अभाव नहीं है। भारतीय महाबोधि सभा जैसी संस्था विगत ६० वर्षों से यहाँ बौद्धधर्म का प्रचार एवं पुनरुद्धार करने में लगी है। कम से कम एक भी भारतीय भिक्षु को महाबोधि सभा की ओर से इस धर्म-संगीति में सम्मिलित होना चाहिए! बर्मा सरकार को इस पर विचार करना चाहिए और भारत के भिक्षु-संघ को भी धर्म-संगीति में अपने धर्मनेता को भेजने के लिये निमन्त्रित करना चाहिए।

एक उदार दान—जापान के सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री कोसेत्सु नोसु ने भारतीय महाबोधि सभा के जयन्ती-फण्ड के लिये चन्दा द्वारा एकत्र किये हुए १६० पौंड भेजा है। श्री नोसु ने ही सारनाथ के मूलगन्धकुटी विहार के भित्तिचित्रों को बनाया था। वे आजकल प्रव्रज्या ग्रहण कर नागनो के प्रसिद्ध विहार में रहते हैं। हम उनके

इस उदार दान का स्वागत करते हैं और उनके दीर्घ-जीवन की कामना !

बर्मा के वित्तमन्त्री—बर्मा के वित्त एवं माल मन्त्री श्री ऊ टिन वाणिज्य-मन्त्री श्री थाकिन था किन् एवं अपनी पार्टी के साथ गत मास में भारतीय महाबोधि सभा के प्रधान केन्द्र कलकत्ता के धर्मराजिक विहार में आये और उन्होंने वहाँ के कार्यों को देखकर सन्तोष प्रकट किया।

डा० कालिदास नाग—महाबोधि सभा के अँग्रेजी मासिक के प्रधान सम्पादक डा० कालिदास नाग गत अगस्त मास में अमेरिका से वापस लौट आये। १८ अगस्त को महाबोधि सभा की ओर से आपका स्वागत किया गया। इस स्वागत समारोह के उपलक्ष में धन्यवाद देते हुए डा० कालिदास नाग ने "बौद्धधर्म तथा विश्व-शान्ति" पर एक सारगर्भित भाषण किया।

कुशीनगर में सुरक्षा की व्यवस्था—भगवान् बुद्ध की परिनिर्वाण भूमि कुशीनगर में बार-बार की होने वाली चोरियों से विहारवासी एवं अन्य सभी लोग घबड़ा गये थे। कुशीनगर भिक्षु संघ के प्रधान मन्त्री भिक्षु धर्म रक्षित के आग्रह पर उत्तर प्रदेश की राज्य सरकार ने अब सुरक्षा का एक सुन्दर एवं स्थायी प्रबन्ध कर दिया है। कुशीनगर में दो सिपाहियों की इस प्रकार नियुक्ति हो गई है जो एक-एक सप्ताह के बाद बदला करते हैं और रातों-दिन कुशीनगर में रह कर पहरा देते हैं। स्मरण रहे कि गत वर्ष कुशीनगर के बौद्ध विहार पर चोरों के छः बार धावे हुए थे। प्रसन्नता की बात है कि उनमें से कई चोर पकड़े जा चुके हैं। दो को पकड़ने के लिए राज्य सरकार की ओर से पुरस्कार भी घोषित हुए हैं। चोरी गये हुए कुछ सामान भी बरामद हो चुके हैं। आशा है धीरे-धीरे सभी चोर पकड़े जा सकेंगे और फिर कुशीनगर में चोरियाँ न होंगी। इस कार्य में कसया थाने के दारोगा श्री चन्द्र-भूषण पाण्डेय ने बड़ी बहादुरी का कार्य किया है और बार-बार की चोरियों के आतंक से कुशीनगर को अब निर्भय बना दिया है।

सड़क बनकर तैयार—कुशीनगर से तथागत के अन्त्येष्टि-संस्कार-स्थान रामाभार तक जाने के लिए जो पक्की सड़क बन रही थी, वह अब बनकर तैयार हो गई है। इस नई सड़क का नाम 'मुकुटबन्धन रोड' रखा गया है। इस सड़क के दोनों किनारे शाल-वृक्षों की पंक्तियाँ लगायी जायेंगी, जिनसे प्राचीन 'शालवन-उपवत्तन' की स्मृति बनी रहे। इस सड़क के बनाने में कुल ५५०००) व्यय हुए हैं। भिक्षु धर्मरक्षित ने लगातार पाँच वर्षों तक इसके निर्माण हेतु प्रयत्न किया था। हम उत्तर प्रदेशीय राज्य सरकार के बड़े कृतज्ञ हैं, जिसने कि इस सड़क को बनवा कर बौद्ध यात्रियों के एक बहुत बड़े कष्ट को दूर किया है।

भारत में कोली राजपूतों की जनसंख्या—इस समय भारत में कोली राजपूतों की जनसंख्या लगभग ५ करोड़ है, जो अपने को कोलिय वंश का कहते हैं और बौद्धधर्म को अपना जातीय धर्म मानते हैं। यद्यपि विगत कुछ शताब्दियों तक वे अन्धकार में पड़े हुए थे किन्तु अजमेर के यशस्वी विद्वान् एवं 'कोलीराजपूत' मासिक पत्र के सम्पादक श्री मोहन कुमार नाथूसिंह तवँर एवं उनके सहयोगियों के सतत प्रयत्न से अब उनमें जागृति आ गई है और वे अपने को बौद्ध घोषित कर दिये हैं।

यहाँ कोलीराजपूतों की जो जनसंख्या दी जा रही है, उसे सौराष्ट्र के बौद्ध श्री मोहनलाल जी मानाजी सोलंकी ने भेजा है—

सौराष्ट्र	३,३०,४५०
कच्छ	१,६७,९७२
महेसाना, अहमदनगर, अहमदाबाद	२६,७४८
खेड़ा, खंभात	२,८१,२५२
बड़ोदा, भड़ौच	६८,९०१
सूरत, नवसारी	७८,६५१
खानदेश : १. धुलिया, २. जलगाम, ३. चालीस गाम, ४. भुसावल	३९,२०७
मुंबई	२१,०००
कोलावा	१४,९६३
पूना	४२,८२९

रत्नागिरि	३,९४९
बिहार, पंजाब, बंगाल छोटा नागपुर, उड़ीसा	७०,००,०००

भिक्षु धर्मरत्न जी—'धर्मदूत' के भूतपूर्व सम्पादक तथा 'महाबोधि' के वर्तमान सहायक सम्पादक भिक्षु धर्मरत्न जी रुग्ण होकर स्वदेश श्रीलंका चले गये थे। प्रसन्नता की बात है कि वे अब पूर्ण स्वस्थ हो गये हैं और पुनः शीघ्र ही भारत आ रहे हैं। हम उनका हार्दिक स्वागत करते हुए आशा करते हैं कि वे पुनः सारनाथ में रहकर धर्मदूत परिवार तथा विशेषकर यहाँ की शिक्षण-संस्थाओं को अपना योग-दान प्रदान करेंगे।

सारनाथ का उत्सव—इस वर्ष मूलगन्ध कुटी विहार सारनाथ का वार्षिकोत्सव २२ नवम्बर रविवार को पड़ा है। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी सभापति-पद ग्रहण करेंगे। उनकी स्वीकृति-सूचना महाबोधि सभा को प्राप्त हो चुकी है। पाठकगण इसे स्मरण कर लें और अभी से उत्सव में सम्मिलित होने की तैयारी कर लें।

मलाया में धर्म-प्रचार—मलाया के क्वालालामपुर के बौद्ध विहार में रहकर लंका के विनयाचार्य किरिन्दे श्री धम्मानन्द स्थविर बौद्धधर्म के प्रचार-कार्य में लगे हैं। आपके साथ पञ्ञासिरि भिक्षु भी प्रचार कार्य में सहयोग दे रहे हैं। स्मरण रहे कि धम्मानन्द जी सारनाथ में कई वर्षों तक रह चुके हैं और हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्ययन कार्य भी किये हैं। उन्होंने अपने एक पत्र में लिखा है—"मलाया में चीनी बौद्धों की जनसंख्या अधिक है। सिंहली लोग भी यहाँ काफी हैं। केवल क्वालालामपुर में ही सिंहली लोगों की संख्या लगभग ४०० है, जो बहुत पहले यहाँ आये थे। इस समय ये सिंहली भाषा तक भूल गए हैं। किन्तु, धर्म के प्रति इनकी आस्था पूर्ववत् है। चीनी तथा सिंहली बौद्ध परस्पर मिलकर रहते और धर्म-कार्य करते हैं। स्थान-स्थान पर धर्म-शिक्षण के लिए रविवासरीय स्कूल खोले गये हैं।"

पालि ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना—भारतीय महाबोधि सभा ने पालिग्रन्थों के प्रकाशन की एक बृहद् योजना बनाई है। योजना के अनुसार पहले 'अभिधम्म पिटक' के ग्रन्थों को प्रकाशित किया जायेगा। कथावत्थुप्पकरण के प्रकाशन का भार सेठ श्री युगलकिशोर बिड़ला ने लिया है। आशा है यह शीघ्र ही प्रेस में दे दिया जायेगा। अन्य ग्रन्थों का प्रकाशन-कार्य भी इसी प्रकार के दाताओं द्वारा सम्पादित होगा।

संयुत्त निकाय का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होने के निकट है। 'विसुद्धिमग्गो' का हिन्दी अनुवाद भी प्रेस में दिया जा चुका है। चरियापिटक तथा जातक निदान नामक ग्रन्थ मूलपालि एवं हिन्दी अनुवाद के साथ छप रहे हैं।

(१४० वें का शेषांश)

मणि चूड़ जातक—संशोधक : सूर्यलाल वज्राचार्य। प्रकाशक : त्रिरत्न दान पात्र संघ, पद्म चैत्य विहार, बुटवल बाजार, नेपाल। पृष्ठ संख्या ४७, मूल्य ।।।)

यह नेवारी भाषा की पुस्तिका है। इसमें मणिचूड़ जातक की कथा वर्णित है। मणिचूड़ जातक पालि-साहित्य में उपलब्ध नहीं है, इसका सम्बन्ध नेपाली वज्रयान बौद्ध-धर्म से है, क्योंकि महायान के जातक संग्रह 'जातकमाला' नामक ग्रन्थ में भी यह दृष्टिगत नहीं होता। फिर भी नेपाल के बौद्धों में इसका उसी प्रकार प्रचार है जिस प्रकार बर्मा, लंका आदि बौद्ध देशों में 'वेस्सन्तर जातक' का। संशोधक ने ग्रन्थ का सम्पादन बड़े सुन्दर ढंग से किया है, किन्तु भाषा सम्बन्धी तमाम अशुद्धियाँ भरी पड़ी हैं। प्रूफ की त्रुटियाँ तो हैं ही। प्रमुख पृष्ठ के ऊपर छपे हुए चित्र को देखकर हमें तो बड़ी हँसी आती है। चित्रकार ने भगवान् के चीवर को बायें कन्धे से उठा कर दायें पर कर दिया है जो सर्वथा ही हास्यास्पद है। आशा है अगले संस्करण में इन सब बातों का पूर्ण रूप से संशोधन करने का प्रयत्न किया जायेगा।

नये प्रकाशन

बुद्ध चरितावली—रचयिता : श्री रामचन्द्र लाल। प्रकाशक : महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस। पृष्ठ संख्या १२७। मूल्य १॥)

यह एक काव्य-ग्रन्थ है। इसमें भगवान् बुद्ध का जीवन-चरित ग्राम्यगीतों में लिखा गया है। ग्रन्थ २८ परिच्छेदों में विभक्त है। अन्त में 'बुद्धकीर्तन' शीर्षक से साहित्यिक हिन्दी में १२ कवितायें दी गई हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ बिरहा, लचारी, कँहरवा, कजली, सोहर, फाग, आल्हा, विदेसिया, नयकवा, पूर्वी, धोबी-गान, जोगी-गान आदि अधिक-से-अधिक सभी प्रचलित ग्राम्य-गीतों में लिखा गया है।

कवि ने ऐसे प्रामाणिक एवं उपयोगी ग्रन्थ की रचना कर ग्रामीण-जनता का बहुत बड़ा हित किया है। जहाँ आज ग्रामीण जनता में भरथरी तथा गोपीचन्द के विरह-गान बड़ी श्रद्धा से गाये जाते हैं, वहाँ भगवान् बुद्ध का जीवन-चरित भी इसके द्वारा गाया जाने लगेगा। कवि ने अपने अनुभव का इसमें पूर्ण परिचय दिया है। कवि की भाषा ग्रामीण जनता के लिए सरल, सुबोध एवं सुरुचि-पूर्ण गेय है। देखिये कवि ने सिद्धार्थ के महाभिनिष्क्रमण का वर्णन किन मार्मिक शब्दों में किया है—

"डगमग पग धरि अगवाँ बढ़न लागें,
पुत्र-प्रेम छेकै मग आय मोरे भाई जी।
'चलती की दइयाँ पुत्र हृदय लगाय लेहीं'
अस मन गइलें समाय मोरे भाई जी।
दबे पाँव पहुँचे यशोधरा महलिया से,
देखैं छवि कवरे लुकाय मोरे भाई जी।
फूलन की सेजिया पर सयन करत देवी,
जगमग दीपक जलाय मोरे भाई जी।
सुघर खिलवना सा अनुपम बलकवा कै,
आधा अंग अँचरे छिपाय मोरे भाई जी।
चाँद सा मुखड़वा निरखि प्रभु लालन कै,
चूमल चाहैं गोदिया उठाय मोरे भाई जी।
पर डर लागै 'कहीं जगलीं यशोधरा तै,
सकबै न इनसे छोड़ाय' मोरे भाई जी।
अस जिय जानि प्रभु रोकलैं सनेहिया से,
चितवत चलैं ललचाय मोरे भाई जी।"

यह "पूर्वी-गीत" का एक उदाहरण है। हम कवि की इस उत्तम एवं ऐतिहासिक कृति के लिए उसे बधाई देते हैं तथा उत्तर प्रदेशीय एवं बिहार सरकार से निवेदन करते हैं कि इस ग्रन्थ को हरेक ग्राम-पंचायत के पुस्तकालय में रखने का प्रबन्ध किया जाय। श्री रामचन्द्र लाल को इस कृति के लिए पुरस्कार भी मिलना चाहिए।

खण्डहरों का वैभव—लेखक : मुनि कान्ति सागर प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस। पृष्ठ संख्या ४३६, सजिल्द मूल्य, ६)

इस ग्रन्थ में लेखक की अनेक वर्षों की कठिन पुरातत्त्व-साधना के पश्चात् लिखे हुए १० लेख संग्रहीत हैं, जिनमें ३ लेख मध्यप्रदेश के जैन, बौद्ध और हिन्दू पुरातत्त्व से सम्बन्धित हैं और ३ लेख महाकोसल के पुरातत्त्व से। २ लेखों में प्रयाग-संग्रहालय तथा विन्ध्य भूमि की जैन मूर्तियों का दिग्दर्शन है। शेष २ निबन्ध हैं—जैन पुरातत्त्व तथा श्रमण संस्कृति और सौन्दर्य। सभी लेख गवेषणात्मक शैली से लिखे गए हैं। लेखक ने एक ऐसी शैली को अपनाया है, जिससे लेखों का महत्त्व और भी गरिष्ट हो गया है। 'खँडहरों का वैभव' क्या है भारतीय इतिहास एवं संस्कृति का वैभव है। जैन, बौद्ध एवं हिन्दू–इन तीनों संस्कृतियों के उत्थान-पतन का दिग्दर्शन है। लेखक अपने विषय में पूरे प्रौढ़ एवं सफल दृष्टिगत होते हैं, किन्तु जब कभी किसी भी पक्ष का प्रतिपादन पक्षपात-पूर्ण किया जाता है और वह भी पुरातत्त्व के साथ, तो उसे अनधिकार चेष्टा ही कहना समुचित होता है। यद्यपि लेखक ने जैन-पक्ष का सांगोपांग वर्णन किया है और ऐसा सुन्दर वर्णन किया है, जैसा कि विद्वान् लेखक से अपेक्षित था, किन्तु हिन्दू एवं बौद्ध पुरातत्त्व केवल नाममात्र के लिए गिनाये गये हैं। बौद्ध से तो मानो खेलवाड़ किया गया है! यदि हिन्दू और बौद्ध पुरातत्त्व को छोड़ दिया जाय, तो शेष ग्रन्थ की सारी सामग्री संतुलित, प्रौढ़ एवं सुन्दर है। ग्रन्थ के अन्त में दो दर्जन से भी अधिक जैन प्रतिमाओं के चित्र देकर ग्रन्थ को अत्यधिक सुन्दर बना दिया गया है। लेखक का यह प्रयास स्तुत्य है। हम इस कृति के लिए ग्रन्थ-लेखक तथा प्रकाशक—दोनों को बधाई देते हैं।

शेष १३९ वें के नीचे

"धर्मोदय"

या

ग्राहक जुयादिसँ ! ग्राहक यानादिसँ ! !

यदि भाषा, साहित्य व धर्मया खँ छेंसच्वना सयूके मन दुसा लयू लयू पत्तिकं पिहाँ वै च्वंगु, नेपाल राज्यभरी जक मखु, देश बिदेशे नं चले जुया च्वंगु ध्व पत्रिका व्वनादिसँ। ध्व नेपाल भाषाया दकसिबे पुलांगु एवं प्रसिद्धगु-लयू पो खः।

यदि नेपालया कान्तिपुर, ललितपुर, भक्तपुर, तान्सेन, बुटवल, भोजपुर, पोखरा आदि पूर्व-पश्चिम सारा जिल्लायू व देश-विदेशे थःगु व्यापार यायू मासा विज्ञापन वियादिसँ।

ग्राहक चन्दा दच्छिया ३) जक।

विज्ञापन दर आदि विशेष जानकारीया निंति पत्र व्यवहार याय्गु ठिकाना :—

व्यवस्थापक—'धर्मोदय'

नं० ४, रामजीदास जेटिया लेन, कलकत्ता—७

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की मासिक पत्रिका]

व्यवस्थापक	सम्पादक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	श्रीसुखदेव श्रीरामेश बेदी
मुख्याधिष्ठाता, गुरु०कांगड़ी	विद्यावाच० आयुर्वेदालंकार

ख्याति प्राप्त लेखकों और उच्चकोटि के विद्वानों की सुरुचिपूर्ण, रोचक तथा ज्ञानवर्धक रचनाएँ और गम्भीर तथा खोजपूर्ण लेखों को पढ़ने के लिए हिन्दी की इस साहित्यिक व सांस्कृतिक मासिक पत्रिका को पढ़िये। प्रत्येक अङ्क की पाठ्य-सामग्री हिन्दी का स्थिर साहित्य है। यह साहित्य आपको मानसिक तथा आध्यात्मिक भोजन प्रदान करेगा। स्वास्थ्य संबंधी उपयोगी लेख आपको स्वस्थ और आनन्दित रहने में सहायक होंगे। वार्षिक मूल्य—देश में ४), विदेश में ६), नमूने की प्रति।≈)। आज ही इस पते पर मनीआर्डर भेजिये—प्रबन्धक, गुरुकुल पत्रिका, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

आनन्द

उच्चकोटि की हिन्दी मासिक पत्रिका

[मध्यप्रदेश, त्रावणकोर, कोचीन, हैदराबाद, मद्रास तथा विहार सरकार द्वारा विद्यालयों तथा पुस्तकालयों में स्वीकृत]

'आनन्द' पढ़ें

क्योंकि :—

इसमें कविता, कहानी के अतिरिक्त धर्म, विज्ञान, दर्शन, कला, तत्वज्ञान आदि विविध विषयों पर अधिकारी विद्वानों द्वारा विवेचनात्मक एवं गवेषणापूर्ण लेख रहते हैं, जिनसे एक सुदृढ़ व्यक्तित्वमय समाज के निर्माण की प्रेरणा मिलती है।

वार्षिक मूल्य ६) रुपया : विदेशों के लिये १२ शिलिंग : एक अङ्क १० आना

आनन्द प्रकाशन लिमिटेड, कमच्छा, बनारस-१

उत्तरप्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत

भारतीय ज्ञानपीठ काशी के महान् प्रकाशन

१. वर्द्धमान - श्री अनूप शर्मा ६)
२. हमारे आराध्य —श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ३)
३. संस्मरण—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ३)
४. पथचिह्न—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी २)
५. वैदिक साहित्य—श्री रामगोविन्द त्रिवेदी ६)
६. शेरोशायरी—श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय ८)
७. शेरोसुखन श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय २॥)
८ रजतरश्मि - श्री रामकुमार वर्मा ८)
९. मिलन यामिनी—श्री बच्चन ४)

अन्य सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१. मुक्तिदूत ५)
२. भारतीय विचारधारा २)
३. ज्ञानगंगा ६)
४. गहरेपानीपैठ २॥)
५ भारतीय ज्योतिष ६)
६. आकाश के तारे धरती के फूल २)
७. रेखाचित्र ४)
८. खंडहरों का वैभव ६)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस—५

हिन्दी में बौद्धधर्म की पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य
दीघनिकाय—राहुल सांकृत्यायन	६)
मज्झिम निकाय— „ „	८)
विनय पिटक— „ „	८)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	२॥)
खुद्दकपाठ— „	।)
धम्मपद—अवधकिशोर नारायण	१॥)
जातक – भिक्षु आनन्द कौसल्यायन भाग १, २ ७॥), ७॥)	
„ „ (भाग ३)	१०)
पालि महाव्याकरण—भिक्षु जगदीश काश्यप	५॥)
भगवान् बुद्ध की शिक्षा—श्री देवमित्त धर्मपाल	।=)
तथागत—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	१॥)
बुद्ध और उनके अनुचर— „	१।।।)
बौद्धचर्या पद्धति—बोधानन्द महास्थविर	१॥)
बुद्धचर्या—राहुल सांकृत्यायन, सजिल्द	८)
सरल पालि शिक्षा—भिक्षु सद्धातिस्स	१॥)
बौद्ध कहानियाँ—व्यथित हृदय	१॥)
बुद्ध कीर्तन—प्रेमसिंह चौहान	१॥)
बुद्धार्चन— „ „	।)
बोधिद्रुम (कविता)—सुमन वात्स्यायन	।ॾ)
महाकारुणिक तथागत—वेदराज प्रसाद	।॥)
धम्मपद (कथाओं के साथ)—भिक्षु धर्मरक्षित	२॥)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध—प्रो० मनोरंजन प्रसाद	-)
बुद्धदेव—शरत् कुमार राय	१।।।)
थेरी गाथाएँ—भरतसिंह उपाध्याय	१॥)
बुद्ध और बौद्ध साधक— „	१॥)
तथागत का प्रथम उपदेश—भिक्षु धर्मरक्षित	।)
कुशीनगर का इतिहास— „	२॥)
पालि-पाठ-माला— „	१)
जातिभेद और बुद्ध— „	॥)
नेपाल यात्रा (सचित्र)— „	४॥)
तेलकटाह गाथा— „	।)
बौद्ध शिशु बोध— „	।)
बुद्ध धर्म के उपदेश— „	२)
कुशीनगर-दिग्दर्शन— „	।)
लंका-यात्रा— „	१॥)
पालि जातकावली—बटुकनाथ शर्मा	२)
बुद्ध वचन—भिक्षु आनन्द कौसल्यायन	॥)
बुद्ध-शतकम्— „ „	।)
महापरिनिर्वाण सूत्र—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
बुद्ध-अर्चना (कविता)—कुमारी विद्या	ॾ)
श्रद्धा के फूल (कहानी संग्रह)— „	।=)
तिब्बत में बौद्ध धर्म—राहुल सांकृत्यायन	१।)

नागरी लिपि में पालि ग्रन्थ

पुस्तक	मूल्य
जातककथा—भिक्षु धर्मरक्षित	६)
विसुद्धिमग्गदीपिका—धर्मानन्द कौशाम्बी	३॥)
नवनीत टीका— „ „	२॥)
अभिधम्मत्थ सङ्गहो— „ „	२॥)
महापरिनिब्बाणसुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा	१।)
तेलकटाह गाथा—भिक्षु धर्मरक्षित	।)
धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त— „	।)
पालि-पाठ-माला— „	१)
चरियापिटक—डा० विमलाचरण लाहा	५)
सुत्तनिपात—भिक्षु धर्मरत्न	२॥)
खुद्दकपाठ— „	।)
धम्मसंगणी—श्रीवापट	८)
अत्थसालिनी— „	८)
पातिमोक्ख— „	१)
सिङ्गाल सुत्त—भिक्षु ऊ कित्तिमा	॥)

सूचीपत्र के लिए =) की टिकट के साथ लिखें।

प्राप्ति-स्थान :—

महाबोधि पुस्तक भंडार, सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।

धर्मदूत
महाबोधि सभा सारनाथ
का
मुखपत्र
नवम्बर-दिसम्बर
१९५

विषय-सूची

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, (विनय-पिटक)

'भिक्षुओ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोक पर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिये विचरण करो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

वर्ष १८ | सारनाथ, नवम्बर-दिसम्बर | बु० सं० २४९७ / ई० सं० १९५३ | अङ्क ७-८

बुद्ध-वचनामृत

'नालायक पुत्रों से डण्डा ही अच्छा!'

'एक ब्राह्मण बड़ा आदमी गुदड़ी पहन जहाँ भगवान् थे वहाँ आया। आकर भगवान् का सम्मोदन किया और कुशल-क्षेम पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस ब्राह्मण को भगवान् ने कहा—'ब्राह्मण! इतनी गुदड़ी क्यों पहने हो?' 'हे गौतम! मेरे चार बेटे हैं। अपनी स्त्रियों की सलाह से उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया है।' 'तो हे ब्राह्मण! इन गाथाओं को तुम याद कर सभा खूब लग जाने पर अपने पुत्रों के वहाँ होते उठकर पढ़ना:—

"जिनके पैदा होने से मुझे बड़ा आनन्द हुआ था, जिनका बना रहना मेरा बड़ा अभीष्ट था, वे अपनी स्त्रियों की सलाह से हटा देते हैं, कुत्ता जैसे सूअर को। ये नीच और खोटे हैं, जो मुझे बाबूजी, बाबूजी कहकर पुकारते हैं, बेटे नहीं, राकस हैं, जो मुझे बुढ़ाई में छोड़ रहे हैं। जैसे बेकार बुड्ढे घोड़े को दाना मिलना बन्द हो जाता है, वैसे ही बेटों का यह बूढ़ा बाप दूसरों के दरवाजे भीख माँग रहा है। मेरा डण्डा ही यह कहीं अच्छा है, मगर ये नालायक बेटे नहीं, जो भड़के बैल को भगा देता है, और चण्ड कुत्तों को भी; अँधेरे में पहले-पहल यही चलता है, गहरे का भी थाह लगा देता है, इसी डण्डे के सहारे ठेस लगने पर भी गिरने से बच जाता हूँ।"

तब उस ब्राह्मण ने इन गाथाओं को सीख समय पर सभा में पढ़ा। तब उस ब्राह्मण को उसके पुत्रों ने घर ले जा नहलाकर प्रत्येक ने थान का जोड़ा भेंट चढ़ाया।

—संयुत्त निकाय ७, २, ४

भगवान् बुद्ध की शिक्षा और मानसिक चिकित्सा

श्री लालजीराम शुक्ल

बौद्धधर्म जीवनोपयोगी महान तत्वों से भरपूर है। यह एक परिपूर्ण व्यक्तित्व के जीवन के कटु और पारदर्शी अनुभवों का परिणाम है। इसके रहस्यों में मनुष्य जितनी गहरी डुबकी लगायेगा उसकी आँखें उतनी ही खुलती जायँगी। भगवान् बुद्ध के हुए सैकड़ों नहीं हजारों वर्ष बीत गये पर उनके दिखलाए हुए रास्ते पर चलकर हम आज भी इस संघर्षमय जीवन में शान्ति के दर्शन कर सकते हैं। हमें कितने ही व्यक्ति ऊपर से प्रसन्न-वदन, स्वस्थ-शरीर और विनयपूर्ण व्यवहारवाले देखने को मिलते हैं पर यदि उनके हृदय से पूछा जाय कि कहाँ तक वह सुखी हैं, तो मालूम होगा कि भीतर ही भीतर विषैले अशान्ति के कीटाणु अपना काम कर रहे हैं। जब तक मनुष्य के हृदय में शीतलता नहीं मिलती ऊपर का बनाव शृंगार, उसके हास्य दुखों के आवरण का ही काम करते हैं। भगवान बुद्ध ने हमें आत्मिक सुख की प्राप्ति का साधन बताया। उन्होंने बुद्धि और हृदय के सामंजस्य पर बल दिया। अति सर्वत्र वर्जयेत् के अनुसार मध्यम-मार्ग का अनुसरण करने की राय दी। उन्हें सामान्य जनता की मूर्छा को दूर करना था। इसलिए उन्होंने जनता की साधारण भाषा को ही अपने उपदेश का माध्यम बनाया। यही कारण है कि उनकी देखने में साधारण बातें भी अपना बड़ा महत्व रखती हैं, उनके प्रकाश में मनुष्य अपनी मस्तिष्क की कमजोरियों को दूर करने में समर्थ होता है।

भगवान बुद्ध ने बच्चे और वृद्ध, स्त्री तथा पुरुष सबके लिए समभाव से विभिन्न रूपों में अपने उपदेश दिये। साधारण घटनाओं के उदाहरणों द्वारा एवं कल्पित कथाओं के सहारे भी उन्होंने जनता की निद्रा भंग करने की चेष्टा की। उनका उद्देश्य यह भी नहीं था कि लोग उन्हीं की बातों को आँख मूँदकर मान लें। उनका मूल ध्येय था मनुष्य को अन्तर्मुखी होकर, अपने को समझ कर आगे बढ़ने की क्षमता प्रदान करना जिसमें कि वह जीवन का आनन्द भी तो ले सके। काशी मनोविज्ञान-शाला ने उन्हीं के विचारों को एक वास्तविक रूप दिया है। [उनके बताये गये मूलभूत साधनों—'मैत्री भावना' और 'आनापानसति'—को व्यवहार में लाया जाता है, जिसकी उपादेयता भी सिद्ध हो चुकी है। भगवान बुद्ध ने मैत्री भावना के अभ्यास के ग्यारह लाभ बतलाए हैं] हम अपनी मनोविज्ञानशाला में, सामाजिक मस्तिष्क में क्रान्ति लाने की चेष्टा करते हैं, नवयुवकों में नई चेतना, नया उत्साह और नयी शक्ति तथा जागृति उत्पन्न करने की चेष्टा करते हैं। उसमें सेवा की भावना और मनुष्यत्व की स्थापना करना है। इसके लिए प्रति रविवार को साधारण गोष्ठी की योजना की गई है। इसके अतिरिक्त मासिक पत्रिका का प्रकाशन अस्तित्व में लाया गया है जिससे हमारा सन्देश देश के कोने-कोने में पहुँच सके। बौद्धिक परतन्त्रता मनुष्य के जीवन ही के लिए घातक है। वैचारिक स्वातन्त्र्य की क्षमता प्रदान करना हमारी शाला का एक सबसे बड़ा ध्येय है।

भगवान बुद्ध के बताये गये मूलभूत साधन—'मैत्रीभावना' और 'आनापानसति'—व्यवहृत किये जाते हैं, जिनकी उपादेयता भी सिद्ध हो चुकी है। इनके अभ्यास से मनुष्य बहुत थोड़े ही समय में अपने में चमत्कारिक परिवर्तन देखने लग जाता है। इससे उसे अपूर्व आनन्द और शान्ति की अनुभूति होने लगती है। मैत्री भावना के अभ्यास से व्यक्ति की बहुत सी उलझनें अपने आप ही समाप्त हो जाती हैं। ऐसे तो प्रत्येक व्यक्ति 'मित्रता' का अर्थ समझता है, पर जो श्रद्धा के साथ इसका अभ्यास करता है वही इसके रहस्य को समझ सकता है। 'मैत्री भावना' एक ऐसा रहस्यमय शब्द है

जिसके द्वारा मानवजाति के लिए सभी प्रकार के सुख के मार्ग खुल जाते हैं। मनुष्य का अचेतन मन, जिसे भारतीय परिभाषा में आत्मा कह सकते हैं असीम और सर्वव्यापी है। उसकी शक्ति अपूर्व और अनन्त है। मैत्री भावना के अभ्यास से उसकी संकीर्णता समाप्त रोगी सभी को लाभ होता है। मैत्री भावना के अभ्यास से धनी और स्वस्थ व्यक्ति अपनी अवस्था को उपयुक्त बनाये रखने में समर्थ होते हैं और विपत्तियों से घिरे व्यक्ति को विश्राम मिलता है। इससे बाह्य सुख की वृद्धि तो होती ही है साथ ही मनुष्य के व्यक्तित्व के
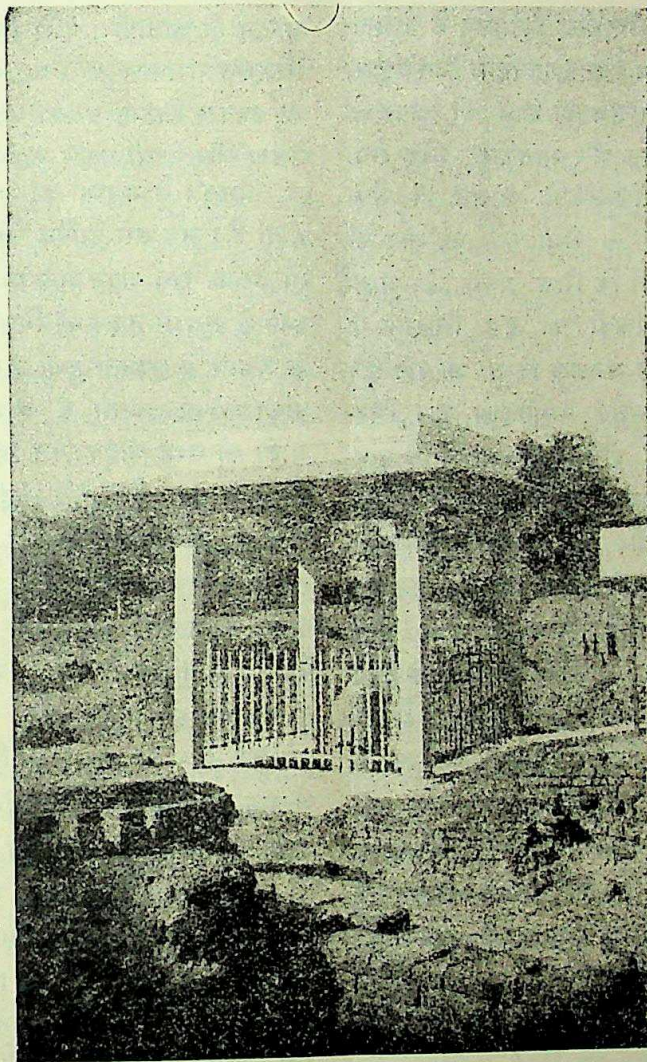
सारनाथ का खण्डित अशोक स्तम्भ

हो जाती है। वह सर्वत्र अपने ही रूप को देखने लगता है। तब उसे अपनी शक्ति का भान भी होने लगता है और वह सभी कठिनाइयों को पार कर जाता है। इस तरह इससे क्या धनी, क्या गरीब, क्या स्वस्थ और क्या विभिन्न तत्वों में समन्वय स्थापित होता है और उसमें परिपूर्णता आती है। भगवान् बुद्ध ने मैत्री भावना के ग्यारह लाभ बताये हैं, जिनमें भयानक स्वप्नों का निरोध एक है। हमने इस विश्वास के अर्थ को और आगे बढ़ाया

है। यह भयानक स्वप्नों को तो रोकने में सहायक होता ही है साथ ही जाग्रतावस्था की भयानक घड़ियों के निराकरण में भी चमत्कारिक कार्य करता है।

काशी मनोविज्ञान शाला ने शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार के रोगियों की चिकित्सा के लिये मैत्री भावना की बड़ी ही आश्चर्यजनक प्रणाली का पता लगाया है। इसके लिये वह अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री जगदीश काश्यप का चिरऋणी रहेगा जिनके द्वारा इस बात के व्यावहारिक परिणाम का ज्ञान हो सका कि मैत्री भावना के द्वारा शारीरिक और मानसिक, हरेक रोगों का निदान हो सकता है। संचालक के सामने ही मैत्री भावना से उसके एक अनिद्रा के रोगी को जब जादू की तरह लाभ हुआ तभी से यहाँ कि भिन्न प्रकार के मानसिक उन्मादों से पीड़ित व्यक्तियों को इस सिद्धान्त के अनुसार अच्छा किये जाने का अभ्यास किया जा रहा है। एक्जिमा, हठी विचार, दुश्चिन्तन्, स्मृतिह्रास, भय, सिरपीड़ा, हृदय की धड़कन जैसे रोग मैत्री भावना के द्वारा अच्छे हो जाते हैं। ऐसे जिन रोगों की चिकित्सा में महीनों विद्युद् आघात सहने पड़ते और मनोविश्लेषण चिकित्सा में वर्षों का समय लग जाता, वे आज भगवान बुद्ध की शिक्षा के अनुसरण से बहुत थोड़े समय में सुधर जाते हैं। भगवान बुद्ध का कहना था कि मानवता के लिये जीना ही जीना है दूसरी अवस्था में जीना मृत्यु ही है।

प्रत्येक मानसिक रोगी विश्व को शत्रु के रूप में देखता है। वह स्वयं अपने को भी अपना मित्र नहीं समझता। इस सन्देह की अवस्था में किसी भी प्रकार का मनोविश्लेषण संभव नहीं। जब तक उसकी सन्देह की मनोवृत्ति में परिवर्तन नहीं होगा वह अपने रहस्यों को खोलने के लिये तैयार नहीं हो सकता। भगवान बुद्ध ने कहा है कि मनुष्य की अशान्ति उसके गुप्त अथवा छिपे पापों का प्रतीक है। मनुष्य जब तक किसी श्रद्धेय व्यक्ति के समक्ष आत्मस्वीकृति नहीं कर लेगा तब तक उसकी अशान्ति कभी नहीं जा सकती।

मानसिक रोग की अवस्था में व्यक्ति एक कठपुतली जैसा बन जाता है। किसी वस्तु की अनिच्छा होते हुए भी वह इसे कर डालता है फिर बाद में उसे आत्मग्लानि भी होती रहती है। यह आत्मग्लानि अथवा बाहर से उपदेश और ताड़नायें उसके लिये हानि के सिवा लाभप्रद नहीं होतीं। उसकी अवस्था पर चिन्ता करना भी उसके लिये अशुभ निर्देश का काम करता है। उस समय उसका अचेतन मन बड़ा ही सतर्क रहता है। दूसरों के मन की बातें उससे न बताये जाने पर प्रतीक रूप से मालूम हो जाती हैं। ऐसी अवस्था में भगवान बुद्ध का सिद्धान्त रामबाण का काम करता है। मानसिक रोगी का उपकार जितना उसका एक सच्चा स्नेही कर सकता है उतना और किसी प्रकार का भी सम्भव नहीं।

वास्तव में मनुष्य का अचेतन मन प्रेम का भूखा होता है। जब उसे हार्दिक स्नेह का भान होने लगता है तो उसका रोग अपने आप ही नष्ट होने लगता है। इस स्नेह के सूत्र में हृदय का विकास निहित है। प्रेम-जल के अभाव में मुर्झाता हुआ हृदय का पौधा सच्चा स्नेही पाकर लहलहा उठता है और मनुष्य का अचेतन मन माली की तरह आह्लादित होकर अपने सभी विकारों को त्याग देता है। ऐसे स्नेही के लिये महान् आत्मिक शक्ति की आवश्यकता होती है। उसके रोम रोम में उदारता भरी रहनी चाहिये, नहीं तो वह घबड़ा कर स्वयं पागल हो जायेगा और रोगी का भी बड़ा अनिष्ट कर बैठेगा। मानसिक रोगी में प्रायः नैतिकता की भावना बड़ी ही बलवती हो जाती है और उसकी छिपी हुई अथवा उपेक्षिता पाप की भावना स्मृतिपटल पर आने पर उससे आत्महत्या कराकर ही छोड़ेगी, यदि उसका उपयुक्त प्रश्रय न मिला। जब रोगी का अचेतन मन अपने स्नेही को पहचान लेता है तो वह उससे इस प्रकार आत्मसात् कर लेता है कि उसके सामने अपना हृदय खोल देने के लिये तड़फड़ाने लगता है। इससे उसके गुप्त भावों का रेचन हो जाता है। अपने आस पास के लोगों से प्रेम करना अपने ही पति-प्रेम का द्योतक है। व्यक्ति किसी एक व्यक्ति को प्रेम करने लगता है, वह आत्म प्रेम का दूसरों पर विश्वास आत्म-विश्वास का। जब मनुष्य दूसरे को प्रेम और विश्वास की दृष्टि से देखने लगता है तो उसका आत्म-विश्वास स्वयं ही बढ़ जाता है और उसकी नीरसता समाप्त होने लगती है तथा जीवन की वाटिका में वसन्त की छटा आ जाती है।

जिस रहस्य का उद्घाटन भगवान बुद्ध ने आज से बहुत समय पहले किया उसी को प्रयोग में लाकर उसके तथ्यों को काशी मनोविज्ञानशाला प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा है। शारीरिक और मानसिक हर प्रकार के रोगी यहाँ नित्य ही पधारा करते हैं। उन्हें देखकर ऐसी अनुभूति होती है कि हमारे यहाँ भगवान बुद्ध ही पधारे हैं, जो सब प्रकार से अन्तर्यामी हैं। वह हमारे प्रेम की परीक्षा लेना चाहते हैं। वास्तव में प्रत्येक रोगी के अचेतन मन को यह ज्ञात होता है कि उसके रोग का क्या निदान है। उसके अचेतन मन से साम्य स्थापित करके उसके अनुकूल ही सभी प्रकार के व्यवहार किये जाते हैं। सन्देहजनक उपकरणों का सदा निवारण करना पड़ता है। इससे रोगी को सन्तोष मिलता है। वह स्वयं रोग के प्रति मैत्री स्थापित कर लेता है। जिससे उस रोग का प्रवाह ही बदल जाता है और व्यक्ति का रोग समाप्त ही नहीं होता वरन् उसकी मानसिक शक्ति में भी वृद्धि होती है।

भगवान बुद्ध की शिक्षा की दूसरी प्रयोग की दृष्टि से महत्व की वस्तु आनापानसति है। अनापानसति का अभ्यास देखने में तो बड़ा ही सरल, नीरस और अर्थविहीन मालूम होता है, परन्तु इसके मूल में बड़ी ही चमत्कारिक शक्ति छिपी हुई है। आनापानसति का अभ्यास हम उठते-बैठते, चलते-फिरते सब समय कर सकते हैं। इसमें श्वास पर ध्यान देना ही सब कुछ है। इसे प्रारम्भ में सोकर करना विशेष सुविधाजनक होता है। हाथ-पैर दण्डे की तरह फैलाकर चित्त सो जाना चाहिये और फिर साँस को इस तरह खींचना और छोड़ना चाहिये जैसा एक निद्रा मग्न व्यक्ति करता है। साँस छोड़ते समय अपने पैर से लेकर सिर तक क्रमशः सभी अंगों को शून्यवत् शिथिल करने का अनुभव करना चाहिये। खींचते समय हम किसी प्रकार का शुभ आत्मनिर्देश दे सकते हैं। यह भगवान बुद्ध की वस्तु होने के कारण इसके साथ स्वयं ही उनका सम्बन्ध हो जाता है जो निर्देश का काम करता है। इसे करते समय प्रारम्भ में तो तरह तरह के साधारण फिर भयानक प्रतीक स्मृति पटल पर आते हैं जो मन के भावों के रेचन का काम करते हैं। धीरे-धीरे ऐसे विचारों का आना समाप्त हो जाता है और साँस का ध्यान भी समाप्त होने पर मनुष्य को अपूर्व शान्ति की प्राप्ति होती है।

मानसिक रोगों के निराकरण करने में उपर्युक्त विधि से आनापानसति का अभ्यास बड़ा उपयोगी होता है, डा० विलियम ब्राउन ने इस प्रकार के अभ्यास की महत्ता अपनी पुस्तक 'साइकालाजी एन्ड साइको थीरेपी' नामक पुस्तक में दर्शायी है। उनका कथन है कि यदि कोई रोगी एक बिस्तर पर लेट कर अपने अंगों को शिथिल करके अपनी साँस को लम्बी लम्बी खींचे और छोड़े और प्रत्येक बार साँस छोड़ते समय भावना करे कि मेरे विभिन्न अंग शिथिल हो रहे हैं तो उसकी यह शिथिलता हाथ-पैर के अन्त से प्रारम्भ होकर धीरे-धीरे सारे शरीर में फैल जाती है और रोगी का शरीर शून्यवत् हो जाता है। ऐसी अवस्था में कुछ देर रहने से रोगी को भारी शारीरिक और मानसिक लाभ होता है। और ऐसी अवस्था में उसे नींद आ जाय तो और भी अधिक लाभ होता है। हिस्टीरिया, बाध्य विचार, झक और इल्लत और अनेक प्रकार के मनोविकारजन्य शारीरिक रोग इससे अच्छे हो जाते हैं। डा० विलियम ब्राउन का यह कथन मनोविज्ञानशाला के मानसिक चिकित्सा के प्रयोगों से ठीक सिद्ध उतरा। परन्तु आनापानासति की इस प्रकार की उपयोगिता की बहुत कुछ जानकारी भगवान बुद्ध के समय में ही हो चुकी थी।

———

कम्बोज में भारतीय घुमक्कड़ भट्ट दिवाकर

श्री राहुल सांकृत्यायन

इन्डो-चीन के तीन राज्यों में कम्बुज (कम्बोडिया) भी एक है जिसके राजा नरोत्तम ने फ्रेंच साम्राज्यवाद की नीति से तंग आकर अभी-अभी देश छोड़ सारी दुनिया का ध्यान कम्बुज की ओर आकृष्ट किया है। आज कम्बुज एक छोटा-सा देश है, जो आबादी और लम्बाई-चौड़ाई में हमारे देश के एक छोटे-से ज़िले के बराबर है, लेकिन ७वीं से १०वीं शताब्दी तक वह एक विशाल राज्य था, जिसमें आधुनिक इन्डो-चीन और स्याम (थाई-भूमि) ही नहीं, बल्कि मलाया भी सम्मिलित था। राजवैभव के साथ-साथ कम्बुज का सांस्कृतिक वैभव भी अपने मध्यान्ह पर था, जिसके चिन्हस्वरूप अंकोरवात, अंकोरथोम की महान् इमारतें अब भी यहाँ मौजूद हैं। उस समय के कम्बुज में अगर कोई जाता, तो उसे वह भारत का ही एक खण्ड दिखाई पड़ता। वही शैव (पाशुपत) धर्म वहाँ भी उस समय सर्वत्रव्यापी था, जो कि उस समय के उत्तरी तथा दक्षिणी भारत में व्याप्त था। वहाँ के लोग भी संस्कृत में अपनी प्रशस्तियाँ लिखते और देवाधिदेव महादेव की प्रशंसा करते हुए कहते—"उमा के कोख से निर्यंत्रित तरंगा गंगा जिसके सिर की माला बनी, उस चन्द्रशेखर की जय हो!" ६१६ ई० में कम्बुज दरबार में आए चीनी दूतमण्डल ने लिखा था—राजा सप्तरत्नमंडित पंचविधगंधसुगन्धित आसन पर बैठता है, गजदंत तथा सुवर्णपुष्प द्वारा मंडित बहुमूल्य दारुस्तम्भों पर तना चँदवा उसके ऊपर होता है। सिंहासन के दोनों तरफ एक-एक आदमी धूप जलाने की धूपदानी ले कर चलता है। राजा गोटेदार पाण्डुवर्ण रेशम का कपड़ा पहनता है, बहुमूल्य मणियों और मोतियों से अलंकृत मुकुट धारण करता है। उसके जूतों पर भी हाथीदाँत का काम होता है।"

कम्बुज राजाओं की प्रशस्तियाँ बिल्कुल समकालीन भारतीय राजाओं जैसी थीं। हर्षवर्द्धन शीलादित्य की मृत्यु की दो ही दशाब्दियों बाद ६६७ ई० (५८९ शकाब्द) में राजवैद्य सिंहदत्त ने अपने अभिलेख को सुन्दर संस्कृत में लिखवाते हुए कहा है—

"त्रिविक्रम (विष्णु) की भाँति अजेय राजा रुद्रवर्मा था, जिसका सुखमय शासन आज भी दिलीप की भाँति स्मरण किया जाता है। उसकी सेवा में ज्येष्ठ ब्रह्मदत्त और कनिष्ठ ब्रह्मसिंह दो भाई अश्विनीकुमारों की भाँति प्रधान वैद्य थे। इन दोनों के धर्मदेव ज्येष्ठ और सिंहदेव कनिष्ठ दो सौभाग्यशाली भागिनेय थे। राजा भववर्मा ने अपनी शक्ति से राज्य को ले लिया, उसके...ये दोनों मंत्री थे।"

नवीं शताब्दी के चीनी लेखकों ने कम्बुज के आदमियों के बारे में लिखा है: "आदमी कद में छोटे और काले रंग के होते हैं, लेकिन स्त्रियों में साफ़ रंग की भी कोई-कोई होती हैं। लोग अपने बालकों का जूड़ा बाँधते हैं और कानों में कुण्डल पहनते हैं। वह दृढ़ और कर्मठ होते हैं। उनके घर और घर के असबाब स्याम जैसे होते हैं। वह दाहिने हाथ को शुद्ध और बायें को अशुद्ध समझते हैं। वह प्रतिदिन सबेरे नहाते और वृक्ष की लकड़ी की दातुन से दाँत साफ करते हैं। पोथी पढ़ने के बाद वह प्रार्थना करते हैं और फिर नहाते हैं, तब भोजन ग्रहण करते हैं। भोजन के बाद वह फिर अपने दाँत धोते और एक बार और प्रार्थना करते हैं। अपने भोजन के लिये वह घी, मलाई, चीनी, चावल और बाजरा—जिसकी वह रोटी बनाते हैं—का इस्तेमाल करते हैं। विवाह में वह कन्या के पास सिर्फ एक परिधान ब्याह की भेंट के तौर पर भेजते हैं। तिथि निश्चित हो जाने पर घटक वधू के पास जाता है। वर-वधू के परिवार सप्ताह-भर बाहर नहीं निकलते। रात-दिन दीपक जलता रहता है। विवाह-संस्कार हो जाने पर पति, परिवार की सम्पत्ति में से अपना भाग ले अलग घर में रहने लगता है। सम्बन्धियों

के मरने पर जो बचा रहता है, वह सम्पत्ति उसे मिलती है, अन्यथा वह सरकारी कोष में चली जाती है। मरने का सूतक मनाते हैं—बिना खाये, बिना बाल कटाये, सात दिन तक स्त्री-पुरुष रोते-कानते हैं। बौद्ध भिक्षुओं और ब्राह्मण (ताव) पुरोहितों के साथ सम्बन्धी एकत्रित हो बाजे के साथ गान करते जलूस निकालते हैं। सुगंधित लकड़ी की चिता पर शव को फूँक दिया जाता है और चिता की राख सोने या चाँदी की डिबिया में रखी जाती है, जिसे नदी के बीच में फेंक दिया जाता है। गरीब, लोग चित्रित तथा नाना प्रकार से अलंकृत मिट्टी की डिबिया काम में लाते हैं। कभी-कभी शव को जीवों के खाने के लिये पहाड़ पर भी रख दिया जाता है।"

उपरोक्त वर्णन से मालूम होगा कि कम्बुज केवल नाम में ही भारतीय (कम्बोज) नहीं था, बल्कि अपनी संस्कृति में भी भारत का एक अंग था। उस समय वर्णाश्रम धर्म भारत की तरह ही वहाँ भी छाया हुआ था। लेकिन, आगे चलकर कम्बुज लोगों ने वर्णाश्रम-पक्षपाती धर्म को छोड़ कर बौद्ध धर्म को स्वीकार किया, जो कि अब भी वहाँ का जातीय धर्म है, लेकिन शैवों या हिन्दुओं का उच्छेद अब भी नहीं हो सका है।

उस समय के कम्बोज में भारतीय सांस्कृतिक दूतों और विद्वानों का जाना-आना बराबर होता रहता था। १०वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कम्बुज में राजेन्द्र वर्मा (मृत्यु ९६८ ई०) का शासन था, जो कि कन्नौज के प्रतिहार राजा विजयपाल (९६०-१०१८ ई०) का समकालीन था, जिसके राज्य में प्रायः सारा उत्तरी भारत था। इसी समय मथुरा भी उसके अधीन एक प्रसिद्ध नगरी थी। भट्ट दिवाकर ने स्वयं मथुरा के बारे में लिखा है—"जहाँ सुन्दर कालिन्दी (यमुना) प्रवाहित होती है, छत्तीस हजार ब्राह्मणों द्वारा तीनों शाम गाये जाते ऋक्, यजु और साम की मंत्रध्वनि से जहाँ की सारी भूमि प्रतिध्वनित होती है, जहाँ कृष्ण ने कालिनाग का मर्दन किया, दैत्यों को मारा और बचपन में बालक्रीड़ा की, वहीं यह भट्ट दिवाकर पैदा हुए।" इससे मालूम होगा, कि मथुरा १०वीं शताब्दी में कृष्ण की जन्मभूमि के नाते पवित्र और प्रसिद्ध हो चुकी थी। दिवाकर शायद मथुरा के चौबे रहे हों, क्योंकि छत्तीस हजार की भारी संख्या में रहनेवाले वहाँ के ब्राह्मण आज के मथुरिया चौबों के पूर्वज ही हो सकते थे। लेकिन भट्ट दिवाकर अपने आज के वंशजों से कहीं अधिक उदार थे और कूपमंडूकता की जगह घुमक्कड़ी उन्हें ज्यादा पसन्द थी। १०वीं शताब्दी का आधा बीत चुका था, जब कि दिवाकर ने अपनी प्रिय जन्मभूमि से विदाई ली। वह विद्वान् थे। कम्बुज में उस समय संस्कृत विद्वानों की कदर बड़ी थी। लोग भारत के संस्कृत कवियों के काव्यों का आनन्द लेते थे। पाणिनी-व्याकरण वहाँ चाव से पढ़ा जाता था। संस्कृत के प्रति वहाँ के सामन्त और पुरोहित वर्ग का वैसा ही अनुराग था, जैसा आज के कम्बुजवासियों का पालि के प्रति। भट्ट दिवाकर स्थल और जल-मार्ग से नाना देशों का पर्यटन करते, अभी तरुण ही थे, जब कि राजेन्द्रवर्मा के शासनकाल में कम्बुज पहुँचे। राजेन्द्रवर्मा के पुत्र जयवर्मा पंचम के बारे में कहा जाता है, कि उसने "वर्णों और आश्रमों को दृढ़ आधार पर स्थापित करके भगवान् को प्रसन्न किया"। किन्तु "इस प्रसिद्ध राजा की कनिष्ठ भगिनी राजेन्द्रवर्मा की कन्या इन्द्रलक्ष्मी एक प्रख्यात् ब्राह्मण (दिवाकर) की पत्नी थी, जिसने ८९० शकाब्द (९६८ ई०) में प्रेम के साथ अपनी माँ की मूर्ति स्थापित की। भूपाल राजेन्द्रवर्मा के जामाता और राजा जयवर्मा के भगिनी-पति देवभट्ट दिवाकर थे, जिन्होंने मधुवन में तीन देवता स्थापित करके भद्रेश्वर के रूप में उनकी प्रतिष्ठा की। भद्रेश्वर को सुवर्ण और दूसरे बहुमूल्य रत्नों के एक यान, अद्‌भुत रत्नआभूषण के साथ बहुत सी भूमि, ताँबा, चाँदी, सोना, गाय, दास-दासी, भैंस, घोड़े, हाथियों को प्रदान किया। ···देव दिवाकर ने स्वयं आज्ञा दी, कि इस स्थान पर आनेवालों के भोजन के लिए प्रतिवर्ष ६ खारी चावल दिया जाए।"

इस प्रकार मालूम होगा, कि देवभट्ट दिवाकर अपना पर्यटक-जीवन समाप्त करने के बाद एक वैभवशाली सामन्त-पुरोहित के रूप में कम्बुज में बस गये। और शायद उनकी सन्तानें भी कम्बुज राजाओं की अगली पीढ़ियों में राजपुरोहित तथा वैवाहिक-सम्बन्ध से राजवंश के साथ सम्बन्धित रहीं। यह स्पष्ट ही है कि कम्बुज में जहाँ

तक रोटी-बेटी का सवाल था, ब्राह्मण-क्षत्रिय एक थे, और केवल पिता की प्रधानता से वर्णाश्रम-धर्म-पालन किया जाता था।

कम्बुज राजा जयवर्मा सप्तम (११८२ ई०) की प्रथम रानी जयराजदेवी एक ब्राह्मण की लड़की थी, जिसे उसकी बहन पंडिता परम-श्रद्धालु बौद्ध महिला इन्द्रदेवी ने धर्म-ग्रंथ पढ़ाये थे। इस रानी ने संस्कृत में एक प्रशस्ति स्वयं रची थी, जो शिलालेख पर उत्कीर्ण आज भी मौजूद है। उस समय कम्बोज ही नहीं, बर्मा (नरपति) देश में भी विद्वान् ब्राह्मण हुआ करते थे। भरद्वाज-गोत्री हृषीकेश पंडित ने कम्बोज में वेदों का बहुत सम्मान सुनकर वहाँ की यात्रा की। जयवर्मा सप्तम ने उन्हें 'श्री जय महा-प्रधान' की उपाधि दे राजपुरोहित बनाया। हृषीकेश पीछे भीमपुर के शिवालय की यात्रा करने गए, जहाँ उन्होंने एक शैव-कुल कन्या श्रीप्रभा से ब्याह किया। श्रीप्रभा की द्वितीय कन्या 'चक्रवर्ती राजदेवी' की उपाधि से विभूषित हो राजा जयवर्मा अष्टम की रानी बनी। श्रीप्रभा की छोटी बहन सुभद्रा का ब्याह ब्राह्मण 'अध्यापकाधिप' मंगलार्थ से हुआ, जिनका पुत्र महानाथ एक भारी वैय्याकरण था, जिसे राजा जयवर्मा के शासनकाल में 'अध्यापकाधिप' की उपाधि से विभूषित किया गया था।

भट्ट दिवाकर के कुल में मथुरा में वर्णाश्रम-व्यवस्था कम्बुज की तरह उदार नहीं हो सकती थी, लेकिन पर्यटक कभी अनुदार नहीं हो सकता, इसलिये कालिन्दी, छत्तीस हज़ार वैदिक ब्राह्मणों और कृष्ण की बाललीला वाली भूमि का मधुर स्मरण करते हुए भी देवभट्ट दिवाकर अब कम्बुज के थे और अपनी विद्या और प्रतिभा से उन्होंने कम्बुज को समृद्ध करना अपने जीवन का लक्ष्य मान लिया था।

महाकाश्यप और आनन्द

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

बौद्ध वाङ्मय से कोई कितना भी अपरिचित क्यों न हो, भगवान् बुद्ध के दो प्रधान शिष्यों—दोनों अग्र-श्रावकों—सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन के नाम से वह परिचित हो ही गया होगा।

भगवान् बुद्ध के अस्सी प्रधान शिष्यों में से जिस प्रकार सारिपुत्र और मौद्गल्यायन सिंहल, बर्मा, स्याम आदि देशों में विशेष रूप से आदृत हैं, पूजित हैं; उसी प्रकार महाकाश्यप तथा आनन्द की युगल-मूर्ति चीन, जापान आदि देशों में विशेष रूप से आदृत तथा पूजित है।

थेर-गाथा, संयुक्त-निकाय तथा अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा में महाकाश्यप के पूर्व आश्रम की चर्चा इस प्रकार की गई है—

यह पिप्पली नामक ब्राह्मण-विद्यार्थी मगध देश के महातीर्थ नामक ब्राह्मणों के गाँव में कपिल ब्राह्मण की प्रधान भार्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ।

भद्रा कापिलायनी रावी और चनाब के बीच के देश में स्यालकोट नगर में कौशिक गोत्र ब्राह्मण की प्रमुख भार्या के गर्भ से उत्पन्न हुई।

क्रम से बढ़ते-बढ़ते पिप्पली माणवक बीस वर्ष और भद्रा कापिलायनी सोलह वर्ष की हुई।

माता-पिता ने पुत्र से जोर देकर कहा—"तात! तू वयः प्राप्त है, कुल-वंश को कायम रखना चाहिये।" ब्राह्मण-विद्यार्थी का उत्तर था—"मेरे कान में ऐसी बात मत कहें। जब तक आप लोग हैं, आप लोगों की सेवा करूँगा। आप लोगों के बाद निकल कर प्रव्रजित होऊँगा।" वे कुछ दिन ठहर कर फिर बोले। किन्तु उसने नहीं ही कहा। फिर कहा, फिर भी इन्कार ही किया।

उधर भद्रा कापिलायनी भी अविवाहित रहने की इच्छुक थी। दोनों की एक न चली। दोनों की सारी चतुराई के बावजूद इच्छा न रहते हुए भी दोनों विवाह के बन्धन में बँध गये।

एक दिन पिप्पली माणवक अलंकृत घोड़े पर चढ़, लोगों से घिरा जा रहा था। उसने खेत पर जा, खेत की

मेंड़ पर खड़े हो, हलों द्वारा विदारित स्थानों से कौवे आदि पक्षियों को कीड़े-केंचुवे प्राणियों को निकाल कर खाते देखा। उसने पूछा—"तात ! यह क्या खाते हैं ?"

"आर्य ! केंचुओं को।"

"इनका पाप किसको लगेगा ?"

"आर्य ! तुम्हें।"

उसने सोचा—'यदि इनका किया पाप मुझे होता है, तो सत्तासी करोड़ धन मेरा क्या करेगा ? बारह योजन की खेती क्या करेगी ? चौदह दास-ग्राम क्या करेंगे ? यह सब भद्रा कापिलायनी को सुपुर्द कर, निकल कर प्रव्रजित हो जाऊँ।'

भद्रा कापिलायनी भी उस समय हवेली के भीतर तिल के तीन घड़ों को फैलवा कर दाइयों के साथ बैठी थी। उसने तिल के कीड़ों को खाये जाते देख, पूछा—"अम्म ! यह क्या खाते हैं ?"

"आर्या ! प्राणियों को।"

"पाप किसको होगा ?"

"तुम्हीं को होगा।"

उसने सोचा—'मुझे तो सिर्फ चार हाथ वस्त्र और कुछ भात चाहिये। यदि इनका किया पाप मुझे ही होता है, तो हजार जन्म में भी सिर भँवर से ऊपर नहीं किया जा सकता। आर्यपुत्र के आते ही यह सब उन्हें सुपुर्द कर निकल कर प्रव्रजित होऊँगी।'

पिप्पली माणवक आ कर, नहा कर प्रासाद पर चढ़, बहुमूल्य पलंग पर बैठा। तब उसके लिये भोजन सजाया गया। दोनों भोजन कर, परिजनों के चले जाने पर, एकान्त में अनुकूल स्थान में बैठे। तब पिप्पली ने भद्रा से कहा—"मैं प्रव्रजित होऊँगा।"

"आर्य ! मैं भी तुम्हारे ही आने की प्रतीक्षा में बैठी थी, मैं भी प्रव्रजित होऊँगी।"

वे, 'हमें तीनों लोक जलती हुई फूँस की झोंपड़ी के सदृश मालूम पड़ते हैं, हम प्रव्रजित होंगे' सोच, बाजार से वस्त्र और मिट्टी का भिक्षा-पात्र मँगवा, एक दूसरे के केशों को काट; 'संसार में जो अर्हत हैं, उन्हीं के उद्देश्य से हमारी यह प्रव्रज्या है'; सोच, प्रव्रजित हो, झोली में पात्र रख कर कन्धे से लटका, महल से उतरे।

घर में दासों या कमकरों में से किसी ने भी न जाना। तब वह ब्राह्मण ग्राम से निकल दासों के ग्राम के द्वार से जाने लगे। आकार-प्रकार से दास-ग्रामवासियों ने उन्हें पहचाना। वे रोते हुए पैरों में गिर कर बोले—"आर्य ! हमें क्या अनाथ बना रहे हैं ?"

"हम तीनों भवों को जलती झोंपड़ी-सा समझ प्रव्रजित हुए हैं। यदि तुम में से एक-एक को पृथक्-पृथक् दासता से मुक्त करें, तो सौ वर्ष में भी न हो सकेगा। तुम्हीं अपने आप सिरों को धोकर दासता से मुक्त हो जाओ।"

यह कह उन्हें रोते छोड़ चले गये।

आगे-आगे चलते परिव्राजक ने पीछे घूम कर देखा तो सोचा—इस भद्रा कापिलायनी को मेरे पीछे आते देख, हो सकता है, कोई सोचे—'यह प्रव्रजित हो कर भी अलग नहीं हो सकते। अनुचित कर रहे हैं।' कोई पाप से मन बिगाड़ नरकगामी भी हो सकता है। इस लिये इसे छोड़ कर ही मुझे जाना चाहिये।

वह सामने रास्ते को दो तरफ कटता देख, उस पर खड़े हो गये। भद्रा भी जाकर वन्दना कर खड़ी हुई। पिप्पली ने कहा—"भद्रे ! तुझ स्त्री को मेरे पीछे आते देख, 'यह प्रव्रजित होकर भी अलग नहीं हो सकते' सोच, लोग हमारे विषय में दूषित-चित्त हो, नरकगामी बन सकते हैं। इन दो रास्तों में से एक तू पकड़ ले और एक मैं पकड़ लूँ।"

"हाँ आर्य ! प्रव्रजितों के लिये स्त्रीजन बाधक होते हैं। लोग हम में दोष देखेंगे।...आप दक्षिण-जाति के हैं, इसलिये आपका मार्ग दक्षिण का है, हम स्त्रियाँ वाम-जाति की हैं, इसलिये हमारा मार्ग वाम का है।"

यह कह दोनों दो रास्तों पर चल पड़े।

सम्यक् सम्बुद्ध ने; वेणुवन महाविहार की गन्धकुटी में बैठे हुए, (ध्यान में) देखा—पिप्पली माणवक और भद्रा कापिलायनी अपार सम्पत्ति छोड़ प्रव्रजित हुए हैं। मुझे इनका संग्रह करना चाहिये। ऐसा सोच गन्धकुटी से निकल, स्वयं पात्र-चीवर ले, महास्थविरों में से किसी को भी बिना कहे, पौन योजन मार्ग अगवानी करके, राजगृह और नालन्दा के बीच 'बहु-पुत्रक' नामक बरगद के वृक्ष के नीचे आसन मार कर बैठ गये।

महाकाश्यप ने—ये हमारे शास्ता होंगे, इन्हीं को उद्देश्य कर हम प्रव्रजित हुए—सोच, दिखाई देने के स्थान से ही झुके-झुके जाकर, वन्दना कर कहा—

"भगवान् मेरे शास्ता (गुरु) हैं, मैं आपका श्रावक (शिष्य) हूँ।"

तब भगवान् ने उन्हें तीन उपदेश दे उपसम्पदा दी। उपसम्पन्न कर 'बहु-पुत्रक' बरगद के नीचे से निकल स्थविर को अनुचर-श्रमण बना रास्ता पकड़ा।

शास्ता ने थोड़ा मार्ग चल कर, मार्ग से हट, किसी पेड़ के नीचे बैठने जैसा संकेत किया। स्थविर ने—शास्ता बैठना चाहते हैं—जान, अपनी पहनी रेशमी संघाटी चौपेत कर बिछा दी।

शास्ता उस पर बैठ कर हाथ से चीवर को मलते हुए बोले—

"काश्यप! तेरी यह रेशमी संघाटी मुलायम है।"

शास्ता मेरी संघाटी के मुलायमपन को बखान रहे हैं। (शायद) पहनना चाहते होंगे, समझ कर कहा—

"भन्ते! भगवान् संघाटी को धारण करें।"

"काश्यप! तुम क्या पहनोगे?"

"भन्ते! यदि आपका वस्त्र मिलेगा तो पहनूँगा।"

"काश्यप! क्या तुम इसे पहनते-पहनते जीर्ण हो गये, पांसुकूल (गुदड़ी) को धारण कर सकते हो? यह बुद्धों का पहनते-पहनते जीर्ण हुआ चीवर है। थोड़े गुणोंवाला मनुष्य इसे धारण नहीं कर सकता।"

इस प्रकार स्थविर के चीवर को भगवान् ने धारण किया और शास्ता के चीवर को स्थविर ने।

स्थविर, 'बुद्ध का चीवर पा लिया, अब मुझे क्या करना है?' इस प्रकार के अभिमान को बिना मन में स्थान दिये योगारूढ़ रहे।

इसके बाद वे केवल सात दिन 'पृथक् जन' रहे।

आठवें दिन ज्ञान-सहित अर्हत् पद को प्राप्त हो गये।

× × ×

अंगुत्तर-निकाय अट्ठकथा में आनन्द के पूर्व-आश्रम की कथा इस प्रकार है—

उस समय भगवान् मल्लों के कस्बे (निगम) अनूपिया में विहार करते थे। उस समय कुलीन-कुलीन शाक्यकुमार भगवान् के प्रव्रजित होने पर अनुप्रव्रजित हो रहे थे...

तब अनुरुद्ध शाक्य जहाँ माता थी, वहाँ गया। जाकर माता से बोला—

"अम्मा! मैं घर से बेघर हो प्रव्रजित होना चाहता हूँ। मुझे प्रव्रज्या के लिये आज्ञा दें।"

"तात! जीते जी प्रव्रज्या की स्वीकृति कैसे दूँगी?"

उस समय भद्दिय नामक शाक्य राजा शाक्यों पर राज्य करता था, वह अनुरुद्ध शाक्य का मित्र था। अनुरुद्ध शाक्य की माता ने सोचा—यह भद्दिय शाक्य राजा अनुरुद्ध का मित्र है। यह प्रव्रजित होना नहीं चाहेगा। इसलिये वह बोली—

"तात अनुरुद्ध! यदि भद्दिय शाक्य राजा प्रव्रजित हो, तो तुम भी प्रव्रजित होना।"

तब भद्दिय शाक्य राजा, अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल, देवदत्त और सातवाँ उपाली बगीचे ले जाये गये। वे दूर तक जा, दूसरे के राज्य में पहुँच, आभूषण उतार, गठरी बाँध, उपाली नाई से बोले—

"उपाली! तुम लौटो। तुम्हारी जीविका के लिये इतना काफी है।"

लौटते वक्त उपाली नाई के मन में आया—

"शाक्य चण्ड (क्रोधी) होते हैं। 'इसने कुमार मार डाले' समझ मुझे मरवा डालेंगे। ये राजकुमार हो प्रव्रजित होंगे, तो फिर मुझे क्या?"

उसने गठरी खोल कर, आभूषणों को वृक्ष पर लटका दिया और कहा—"जो देखे, वह ले जाय, उसी को दिया।" इतना कर, वह जहाँ शाक्य राजकुमार थे, वहीं गया। शाक्य कुमारों ने दूर से ही देखा कि उपाली नाई चला आ रहा है। देख कर उपाली नाई से बोले—

"उपाली! किस लिये लौट आये?"

"आर्यपुत्रो! वापस लौटते वक्त मुझे यूँ हुआ, शाक्य चण्ड होते हैं, कहीं मुझे मरवा न डालें। इसलिये गठरी खोल कर आभूषणों को वृक्ष पर लटका लौट आया हूँ"

"उपाली! अच्छा किया जो लौट आये?"

तब वे शाक्य कुमार उपाली नाई सहित वहाँ गये जहाँ भगवान् थे। जाकर भगवान् को वन्दना कर एक

और बैठ गये। उन शाक्य कुमारों ने भगवान् से कहा—"भन्ते! हम शाक्य अभिमानी होते हैं। यह उपाली नाई चिरकाल तक हमारा सेवक रहा है। इसे भगवान् पहले प्रव्रजित करायें, जिसमें कि हम इसका अभिवादन, हाथ जोड़ना आदि करें। इस प्रकार हम शाक्यों का शाक्य होने का अभिमान मर्दित होगा।"

भगवान् ने उपाली नाई को ही पहले प्रव्रजित कराया। पीछे छः शाक्य कुमारों को।

महाकाश्यप का स्वयं आनन्द कितना आदर करते थे, यह महावग्ग में वर्णित एक भिक्षु-नियम के इतिहास से स्पष्ट है। लिखा है

उस समय आयुष्मान् महाकाश्यप के पास एक उपसंपदा चाहने वाला था। तब आयुष्मान् महाकाश्य ने आयुष्मान् आनन्द के पास दूत भेजा—"आनन्द! आयें और इस पुरुष के लिये अनुश्रावण करें अर्थात् संघ की उपस्थिति में आचार्य तथा उपाध्याय के नाम ऊँचे स्वर से लें।"
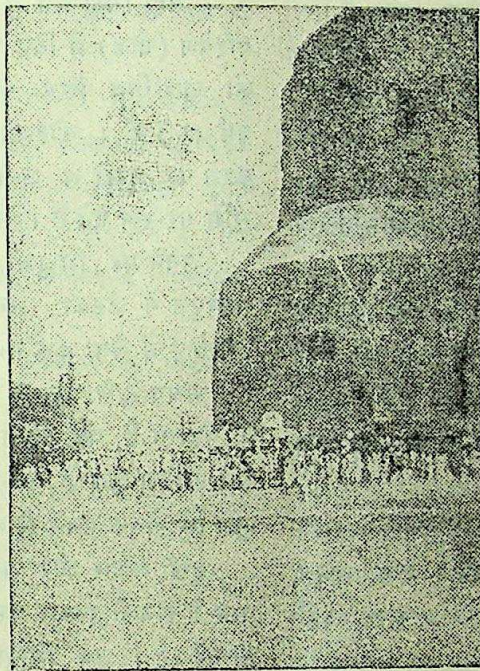
सारनाथ के जुलूस का एक दृश्य

प्रव्रजित होनेवाले छः शाक्य कुमारों में एक आनन्द थे।

भगवान् बुद्ध के अस्सी प्रधान शिष्यों में महाकाश्यप और आनन्द दोनों के व्यक्तित्व की अपनी-अपनी अपील है। एक का व्यक्तित्व जहाँ खरादे हुए शंख की तरह अत्यन्त स्वच्छ होने के कारण विशेष आदरणीय है, वहाँ दूसरे का व्यक्तित्व सहज मानवता की प्रतिमूर्ति होने के कारण अत्यन्त स्पृहणीय है।

एक को मन चाहता है कि पूजें, दूसरे को चाहता है कि प्रेम करे। यह कहना न सरल है, न सहज कि किसका दर्जा ऊँचा है?

× × ×

आयुष्मान् आनन्द का उत्तर था—"स्थविर (महाकाश्यप) का नाम भी लेने में असमर्थ हूँ। स्थविर मेरे गुरु हैं।" भगवान् से यह बात कही गई। भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, गोत्र के नाम से पुकारने की।"

× × ×

दूसरी ओर महाकश्यप का भी आनन्द के प्रति बड़ा ही स्नेह का भाव रहा होगा। बिना वैसे स्नेह के भाव के कभी किसी को वैसी फटकार सुनाने का अधिकार प्राप्त ही नहीं होता, जैसी एक बार महाकाश्यप ने आनन्द को सुनाई थी। लिखा है—एक समय आयुष्मान् महाकाश्यप राजगृह

के वेणुवन कलन्दक-निवाप में विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् आनन्द बड़े भारी भिक्षु-संघ के साथ, दक्षिण-गिरि में विचर रहे थे। उस समय आयुष्मान् आनन्द के तीस शिष्य भिक्षु-भाव छोड़ कर गृहस्थ हो गये। उनमें विशेष संख्या तरुणों की थी।......

आयुष्मान् महाकाश्यप ने कहा—"आवुस आनन्द! तू क्यों इन असंयत, भोजन में परिमाण न जाननेवाले, जागरण में तत्पर न रहने वाले, नये भिक्षुओं के साथ चारिका करता है। मानो तू कुलों का घात करता है।...... आवुस आनन्द! तेरी मंडली भंग हो रही है। अधिकतर नये भिक्षुओं वाली तेरी मंडली टूट रही है।"

× × ×

ऐसा लगता है कि आनन्द अपने सम्प्रदाय से बाहर भी काफी आदर तथा प्रेम के भाजन थे। मज्झिम-निकाय के ऐक सूत्र में उल्लेख है—

आयुष्मान् आनन्द ने सायंकाल ध्यान से उठकर, भिक्षुओं को संबोधित किया—"आवुसो! आओ, जहाँ स्वाभाविक अगम-कूप है, वहाँ देखने के लिये चलें।"

"अच्छा आवुस!" कह उन भिक्षुओं ने आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दिया।

तब आयुष्मान् आनन्द बहुत से भिक्षुओं के साथ जहाँ स्वाभाविक अगम-कूप था, वहाँ गये। उस समय सन्दक परिव्राजक बड़ी भारी परिषद् के साथ वहाँ बैठा था।

तब आयुष्मान् जहाँ सन्दक परिव्राजक था, वहाँ गये। सन्दक परिव्राजक ने आयुष्मान् आनन्द को कहा—

"आइये आप आनन्द! स्वागत है आप आनन्द का। चिरकाल बाद आप आनन्द यहाँ आये। बैठिये आप आनन्द, यह आसन बिछा है।"

आयुष्मान् आनन्द बिछे आसन पर बैठे। संदक परिव्राजक भी एक नीचा आसन ले एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे, सन्दक परिव्राजक को आयुष्मान् आनन्द ने कहा—"सन्दक! किस कथा में बैठे थे, बीच में क्या कथा हो रही थी?"

"जाने दीजिये इस कथा को, हे आनन्द! जिस कथा में कि हम इस समय बैठे थे। ऐसी कथा आप आनन्द को पीछे भी सुनने को दुर्लभ न होगी। अच्छा हो आप आनन्द ही अपनी धर्म-विषयक धार्मिक कथा कहें।"

यह सन्दक की आनन्द के प्रति आदर-भावना का ही चित्र नहीं है, किन्तु दो धार्मिक सम्प्रदायों की भी परस्पर एक दूसरे के प्रति आदर-भावना का चित्र है।

आनन्द भगवान् बुद्ध के स्थायी-सेवक थे। किन्तु उन्हें यह पद कैसे प्राप्त हुआ, इसकी कथा बड़ी ही असाधारण है—

"वहाँ भिक्षु-संघ से घिरे (भगवान् ने) गंधकुटी के परिवेण (चौक) में बिछे उत्तम बुद्धासन पर बैठ, भिक्षुओं को आमंत्रित किया—"भिक्षुओ, अब मैं वृद्ध (५६ वर्ष का) हूँ। कोई-कोई भिक्षु, 'इस मार्ग से चलो' कहने पर दूसरे से जाते हैं, कोई-कोई मेरा पात्र-चीवर भूमि पर रख देते हैं। मेरे लिये एक नियत-सेवक खोजो।"

सुनने पर भिक्षुओं को खेद हुआ। तब आयुष्मान् सारिपुत्र ने उठकर, भगवान् को वन्दना कर कहा—"भन्ते! मैं सेवा करूँगा"

भगवान् ने कहा—"नहीं सारिपुत्र! जिस दिशा में तू विहरता है, वह दिशा मुझ से अशून्य होती है। तेरा धर्म-उपदेश बुद्ध के धर्म-उपदेश के समान है। इसलिये मुझे तेरे सेवक बनने से काम नहीं।"

इसी प्रकार और अनेक महाश्रावक खड़े हुए। भगवान् ने सबको इन्कार कर दिया। आनन्द स्थविर चुपचाप ही बैठे रहे। तब भिक्षुओं ने उनसे कहा—"आवुस! भिक्षु-संघ सेवकपद माँग रहा है। तुम भी माँगो।"

"आवुसो! माँग कर स्थान पाया तो क्या पाया?"

भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ, आनन्द को दूसरा कोई उत्साहित मत करे। स्वयं जान कर यह मेरी सेवा करेगा।"

तब भिक्षुओं ने कहा—"उठो, आनन्द सेवक-पद माँगो।" स्थविर आनन्द ने सेवक-पद स्वीकार करने से पहले तथागत से आठ बातों की स्वीकृति ली—

(१) भगवान् अपने पाये उत्तम चीवर को मुझे न दें।
(२) भगवान् अपने पाये उत्तम भोजन को मुझे न दें।
(३) भगवान् अपनी गंधकुटी में मुझे निवास न दें।
(४) भगवान् अपने साथ निमंत्रण में लेकर न जायें।
(५) भगवान् मेरे स्वीकार किये निमंत्रण में जायें।

(६) जब मेरी इच्छा हो, तब भगवान् का दर्शन कर पाऊँ।

(७) जब दूसरे राष्ट्र या दूसरे जनपद से कोई दर्शनार्थी आये तो उसे आने के समय ही दर्शन करा पाऊँ।

(८) मेरे परोक्ष में भगवान् जो धर्मोपदेश करें, उसे बाद में मुझे भी बता दें।

शायद ही किसी ने आज तक किसी का प्राइवेट सैक्रेट्री बनने से पहले ऐसी शर्तें स्वीकार कराई हों!

इन शर्तों की विशेषता यह है कि इन में एक भी लोभमूलक नहीं है।

आनन्द ने अपनी एकनिष्ठा से संघ में और समाज में कितना प्रभाव जमा लिया था, बौद्ध वाङ्मय का पन्ना-पन्ना इसका साक्षी है। कभी-कभी भगवान् बुद्ध अपनी बजाय आनन्द को ही धर्मोपदेश देने को कह देते थे। एक जगह राजा प्रसेनजित् और स्थविर आनन्द के वार्तालाप का उल्लेख है—

"भन्ते! क्या भगवान् ऐसा आचरण कर सकते हैं, जो निन्दनीय हो?"

"नहीं महाराज!"

"कौन आचरण निन्दनीय हैं?"

"जो अकुशल आचरण है।"

"कौन अकुशल आचरण है?"

"जो सदोष है।"

"कौन सदोष है?"

"जो अपनी पीड़ा के लिये होता है, पर-पीड़ा के लिये होता है, उभय-पीड़ा के लिये होता है।"

× × ×

अजातशत्रु के अमात्य वर्षकार ब्राह्मण और स्थविर आनन्द की बातचीत भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वर्षकार ब्राह्मण बोला—

"भो आनन्द! क्या आप सब में एक भिक्षु को भी उन गौतम ने आप (यह कह) स्थापित किया है—"मेरे बाद यह तुम्हारा शरण-स्थान होगा।"

"नहीं ब्राह्मण! उन भगवान् ने किसी एक भिक्षु को भी ऐसे स्थापित नहीं किया कि मेरे बाद यह तुम्हारा शरण-स्थान होगा।"

"भो आनन्द! क्या संघ ने भी किसी एक भिक्षु को सम्मत किया है कि भगवान् के बाद यह हमारा शरण-स्थान होगा?"

"नहीं ब्राह्मण! संघ ने किसी एक भिक्षु को भी सम्मत नहीं किया है कि भगवान् के बाद यह हमारा शरण-स्थान होगा।"

"भो आनन्द! इस प्रकार शरण-रहित होने पर एकता का क्या रहस्य है?"

"ब्राह्मण हम शरण-रहित नहीं हैं। हम धर्म की शरण हैं।"

सिद्धार्थ-गौतम की माता महामाया देवी तो सिद्धार्थ को जन्म देने के सात दिन बाद ही परलोक सिधार गई थीं। उन्हें पाला था उनकी मौसी प्रजापति गौतमी ने। बुद्धशासन में महाप्रजापति गौतमी ही प्रथम भिक्षुणी हुईं। कैसे? महावग्ग के भिक्षुणी-स्कन्धक में यह प्रकरण इस प्रकार आया है—

भगवान् वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे। तब महाप्रजापति गौतमी, केशों को कटाकर, काषायवस्त्र पहन, बहुत-सी शाक्य-स्त्रियों के साथ, जिधर वैशाली थी, उधर चली। क्रमशः चलकर वैशाली में जहाँ महावन की कूटागारशाला थी, वहाँ पहुँची। महाप्रजापति गौतमी फूले पैरों, धूल भरे शरीर से, दुःखी, अश्रुमुख, द्वार-कोष्ठक के बाहर जा खड़ी हुई। आयुष्मान् आनन्द ने पूछा—"गौतमी! तू क्यों दुःखी है?"

"भन्ते आनन्द! भगवान् स्त्रियों को भिक्षुणी बनने की अनुज्ञा नहीं देते।"

"गौतमी! तू यहीं रह। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ।"

तब आयुष्मान आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान् को अभिवादन कर बोले—भन्ते! क्या तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म के अनुसार स्त्रियाँ सकृदागामि, अनागामि, अर्हत नहीं हो सकती हैं?"

"आनन्द! हो सकती हैं।"

"भन्ते! यदि हो सकती हैं; तो महाप्रजापति गौतमी भगवान् की अभिभाविका, पोषिका, क्षीर-दायिका है। भगवान् की मौसी प्रजापति गौतमी बहुत उपकार करने-

वाली है। जननी के मरने पर उसी ने भगवान् को दूध पिलाया। अच्छा हो भन्ते! यदि स्त्रियों को भी भिक्षुणी बनने की आज्ञा मिले।"

भगवान् ने भिक्षुणियों के लिए आठ अतिरिक्त-नियम बनाकर उनके लिये भिक्षुणी बनने का रास्ता खोल दिया।

बुद्ध-शासन में भिक्षुणी-संघ की स्थापना का श्रेय आनन्द को ही है। आश्चर्य नहीं कि जेतवन महाविहार में भिक्षुणियाँ आनन्दबोधि की विशेष पूजा करती रही हैं।

राजा उदयन के रनिवास द्वारा स्थविर आनन्द को पाँच सौ चादरें दिये जाने की कथा भी बड़ी रोचक है। वह इस प्रकार है—

तब राजा उदयन के रनिवास ने आयुष्मान् आनन्द को पाँच सौ उत्तरासंग (चादरें) दीं।

राजा उदयन ने आयुष्मान् आनन्द से जाकर प्रश्न किया—"आप आनन्द! इतने अधिक चीवर क्या करेंगे?"

"महाराज! जिन भिक्षुओं के चीवर फट गये हैं, उन्हें बाँटेंगे।"

"और उनके जो वे पुराने चीवर हैं, उनका वे क्या करेंगे?"

"महाराज! बिछौने की चादर बनायेंगे।"

"पुरानी बिछौने की चादरों का क्या करेंगे?"

"महाराज! गद्दे का गिलाफ बनायेंगे।"

"पुराने गद्दों के गिलाफों का क्या करेंगे?"

"महाराज! फर्श बनायेंगे।"

"पुराने फर्शों का क्या करेंगे?"

"महाराज! पायंदाज बनायेंगे।"

"पुराने पायंदाजों का क्या करेंगे?"

"महाराज! झाड़न बनायेंगे।"

"पुराने झाड़नों का क्या करेंगे?"

"उनको कूट कर, कीचड़ के साथ मर्दन कर पलस्तर करेंगे।"

राजा उदयन को विश्वास हो गया—शाक्य-पुत्र कार्य-कारण के हिसाब से काम करते हैं। कुछ भी तो व्यर्थ नहीं जाने देते।

बौद्ध संघ में महाकाश्यप का क्या स्थान था, इसे जानने-समझने के लिए बौद्ध-वाङ्मय की यह अनुश्रुति बड़े ही महत्त्व की है—

उस समय आयुष्मान् महाकाश्यप पाँच सौ भिक्षुओं के महाभिक्षु-संघ के साथ पावा और कुसीनारा के बीच में जा रहे थे। तब आयुष्मान् महाकाश्यप मार्ग से हटकर एक वृक्ष के नीचे बैठे। उस समय एक आजीवक-परिव्राजक कुसीनारा से मन्दार पुष्प ले पावा के रास्ते पर जा रहा था। आयुष्मान् महाकाश्यप ने उस आजीवक को दूर से आते देखा। देखकर पूछा—"क्या हमारे शास्ता को भी जानते हो?"

"हाँ, आवुस! जानता हूँ, श्रमण गौतम को परिनिर्वृत हुए आज एक सप्ताह हो गया। मैंने यह मंदार-पुष्प वहीं से पाया।"

उस समय चार मल्ल-प्रमुख सिर से नहा कर, नया वस्त्र पहिन, भगवान् की चिता को लीपना चाहते थे, किन्तु न लीप सकते थे...

आयुष्मान् अनुरुद्ध ने कारण बताते हुए कहा—आयुष्मान् महाकाश्यप पाँच सौ भिक्षुओं के महाभिक्षु-संघ के साथ पावा और कुसीनारा के बीच रास्ते में आ रहे हैं। भगवान् की चिता तब तक न जलेगी, जब तक आयुष्मान् महाकाश्यप स्वयं भगवान् के चरणों की सिर से वन्दना न कर लेंगे!"

आयुष्मान् काश्यप और उन पाँच सौ भिक्षुओं के वन्दना कर लेते ही चिता स्वयं जल उठी।

निस्सन्देह महाकाश्यप जैसे संघ-नायक की इतनी प्रतीक्षा की ही गई होगी।

हमें आनन्द स्थविर के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की सबसे अधिक झाँकी, उन 'भूलों' में मिलती है, जिनका बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद उन पर दोषारोपण किया गया। कुछ भूलें थीं—

(१) भगवान् से उन छोटे-मोटे शिक्षापादों के बारे में न पूछना, जिन्हें संघ उनके बाद छोड़ सकता है।

(२) भगवान् के वर्षा-ऋतु में नहाने के कपड़े को पैर से दबाकर सीना।

(३) भगवान् के शरीर की प्रथम स्त्री से वन्दना करवाना।

(४) भगवान् से कल्प भर बने रहने की प्रार्थना न करना।

(५) भगवान् के धर्म में स्त्रियों का प्रवेश कराना।

आनन्द ने प्रत्येक दोषारोपण के उत्तर में यही कहा—"मैं इसे दोष स्वीकार नहीं करता, किन्तु संघ-गौरव से क्षमा-प्रार्थना करता हूँ।"

स्वतन्त्र-चिंतन-प्रधान व्यक्तित्व और नम्रता का क्या सुन्दर सामञ्जस्य है!

भगवान् का परिनिर्वाण हो जाने पर जब धर्म की चिरस्थिति के लिए महान् भिक्षु-संघ को धर्म का संगायन करने की आवश्यकता हुई तो उन्होंने महाकाश्यप से ही निवेदन किया—"तो भन्ते! आप स्थविर भिक्षुओं को चुन लें।"

आयुष्मान् महाकाश्यप ने एक कम पाँच सौ अर्हत् भिक्षुओं को चुना।

तब भिक्षु-संघ को महाकाश्यप से प्रार्थना करनी पड़ी—"भन्ते! यह आनन्द यद्यपि शैक्ष्य (अनु-अर्हत्) हैं, तो भी छंद (राग), द्वेष, मोह, भय तथा दूसरे बुरे मार्ग पर जानेवाले नहीं हैं। इन्होंने भगवान् के पास बहुत धर्म (सूत्र) और विनय प्राप्त किया है। इसलिये भन्ते! स्थविर आयुष्मान् को भी चुन लें।"

अपने धर्म-ज्ञान के कारण आनन्द-स्थविर अर्हत न होने पर भी संगायन के लिये अनिवार्य माने गये।

यह दूसरी बात है कि संगायन के आरम्भ से पहले उन्होंने असाधारण प्रयत्न द्वारा अपने को 'अर्हत्' बना लिया था।

संगीत के प्रधान महाकाश्यप और भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म के विषय में सर्वाधिक प्रमाण आयुष्मान् आनन्द की युगल-मूर्ति को शतशः नमस्कार!

धर्म की चिरस्थिति का सर्वोपरि श्रेय महाकश्यप तथा आनन्द को ही है।

लाट प्रदेश का काम्पिल्य महाविहार

श्री मणिभाई द्विवेदी, पुरातत्व-प्रवीण

बौद्ध दर्शन के इतिहास के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण से प्रियदर्शी अशोक के राज्यकाल तक बौद्ध धर्म इस देश के सुदूर प्रान्तों में पहुँच गया। सम्राट् अशोक के शासन-काल में तो उस महाकारुणिक का संदेश सागर की लहरें विदेशों में भी खींच ले गई थीं। उन दिनों लाट प्रदेश के नाम से प्रसिद्ध वर्तमान दक्षिण गुजरात में बौद्ध धर्म का खूब प्रचार हुआ था, इस बात के प्रमाण मिलते हैं। यदि यह सत्य न होता तो भृगुकच्छ, संजयन्ति, और शूर्पारक के नाम बौद्ध गाथाओं में गुँथे न मिलते।

ईस्वी सन् प्रारंभ होने से पहले भारतवर्ष से सिंहल-द्वीप में जानेवाले सर्व प्रथम गुजराती ही थे। वे लोग अपने साथ बौद्ध धर्म में अति-प्रमाणभूत त्रिपिटक में से आचार व्यवहार की विवेचना करने वाले "विनय पिटक" जैसे ग्रन्थ लेते गये—किमखाब की थैली में रेशम की डोरी से बाँध कर नहीं अपितु जिह्वाग्र प्राणवान स्वरूप में।

महापंडित श्री राहुल सांकृत्यायन विनय पिटक के हिन्दी अनुवाद में लिखते हैं:—"महेन्द्र के सिंहल-आगमन (२४७ ई० पू०) से प्रायः ढाई सौ वर्ष तक त्रिपिटक के कंठस्थ का भार सिंहल के गुजराती-प्रवासियों को मिला था × × × एक प्रकार से वर्तमान पाली त्रिपिटक मागधी न होकर गुजराती भाषा का त्रिपिटक है।[१]

बौद्ध धर्म लाट प्रदेश में एक हजार वर्ष से अधिक काल तक सघन या विरल स्वरूप में अस्तित्व में था, इसके प्रमाण मिलते हैं। काल प्रवाह के साथ प्रारंभिक बौद्ध धर्म शाखा प्रशाखाएं फूटने लगीं। अकेले स्थविरवाद में अठारह सम्प्रदाय हो गये। सम्राट् हर्ष-वर्द्धन के शासन काल में इन सम्प्रदायों में से 'सम्मितीय' शाखा का प्रभूत मात्रा में हुआ।[२] उस काल के आसपास भारत में

---

१. श्री राहुल सांकृत्यायन हिन्दी अनु० विनय पिटक पृ-७

२. श्री बलदेव उपाध्याय, एम. ए. कृत बौद्ध दर्शन पृ. १२२.

यात्रा के लिये आये हुए चीनी यात्री इत्सिंग के प्रवास वर्णन से मालूम होता है कि "उस समय लाट प्रदेश में सम्मितीय निकाय के अनुयायियों की संख्या बहुत अधिक थी।[३]

यह वह काल था जब कि राष्ट्रकूटों की एक नई और प्रबल सत्ता बदामी के चालुक्यों की सत्ता के विरोध में मान्यखेटक को केन्द्र बनाकर अपनी शक्ति बढ़ा रही थी। आठवीं शताब्दी में तो इस सत्ता ने चालुक्य सत्ता को नाम-शेष कर दिया। इसीलिये लाट प्रदेश में स्थित नागमंडल की राजधानी 'नवसारिका'[४] में रह कर लाट प्रदेश पर शासन करने वाले बदामी के चालुक्य शाखा के मांडलिकों के शासन का भी अन्त हो गया। इस प्रकार राजसत्ताएँ परिवर्तित होती रहीं परन्तु ई० पू० से फैला हुआ बौद्ध धर्म इस भूमि पर स्थिर रहकर मैत्री और करुणा का संदेश देता रहा। नदी के किनारे प्रशान्त वातावरण में निर्मित विहारों में रहकर बौद्ध भिक्षुओं का संघ ध्यान, भावना और ज्ञान-वितरण का प्रयत्न करता रहा, यह तथ्य राष्ट्रकूट राजाओं द्वारा लाट प्रदेश के इन महाविहार और उनके विद्यालय के परिपालन के दिये गये दानपत्रों से प्रमाणित होता है।

गुजरात के राष्ट्रकूट राजा दन्तिवर्मा का शक संवत् ७८९ अर्थात् आज से १०८५ वर्ष पहले का एक दानपत्र मिला है। इस दानपत्र में लेख का प्रारम्भ "ओं ओं नमो बुद्धाय" इस वंदना से किया गया है। इस दानपत्र में काम्पिल्य विहार में निवास करनेवाले आर्यसंघ के शिष्यों के उपभोगार्थ विहार के खंडित भागों के "पुनः संस्कार" के लिये एक ग्राम दिया गया है। विहार के स्थल इत्यादि का विवरण अन्य दानपत्रों के समान इसमें भी दिया गया है।[५]

इसके बाद एक अन्य दानपत्र गुजरात के राष्ट्रकूट राजा ध्रुव द्वितीय का शक संवत् ८०६ का प्राप्त हुआ है। इस दानपत्र के अनुसार भिक्षु स्थिरमति को काम्पिल्य मुनि द्वारा स्थापित महाविहार के निभाने के लिये महुवा परगने में स्थित (जि० सूरत) ढुँढेसा गाँव दान में दिया गया था। इस दानपत्र की चर्चा करते हुए श्रीमान डॉ० अल्तेकर महोदय लिखते हैं:—Kampilya monastery of Gujrat probably represented one of the last strong-holds of Buddhism × × × Our record state that five hundred monks were living in the monastery."[६] उपर्युक्त दानपत्र की तरह इस दानपत्र में भी विहार के स्थल के विषय में विवरण दिया गया है।

दानपत्रों में सूचित विवरणों से इतना तो स्पष्ट मालूम होता है कि यह महाविहार नवसारी परगनों में स्थित 'पूर्णा' नदी के उत्तर में और उसी परगने की 'मींढोला' नदी के तट के पास कहीं है। परन्तु वह स्थल वस्तुतः किस जगह था। यह ढूँढना अभी बाकी है। इसी कारण इस प्रदेश में प्राचीन अवशेषों वाला कोई स्थान है या नहीं यह जानना भी आवश्यक है। नवसारी से इशान कोण में लगभग सात मील दूर सरोणा गाँव के पास कपिलेश्वर नामक एक प्रसिद्ध मन्दिर है। मन्दिर में यद्यपि बहुत से परिवर्त्तन हुए हैं फिर भी इसकी रचना और खंडित मूर्त्तियों में चालुक्य शिल्प के बहुत से चिन्ह मिलते हैं। डॉ० अलतेकरके मतानुसार दानपत्र में निर्दिष्ट काम्पिल्य विहार इस स्थल के आसपास ही कहीं होना चाहिये। ये प्रसिद्ध विहार नवसारी (जि० सूरत) के इशान कोण में और कपिलेश्वर से तीन, साढ़े तीन मील उत्तर में 'मींढोला' नदी के पास वर्त्तमान सीसोदरा (आरक) गाँव के निकट होना चाहिये, वहाँ से निकलने वाले अवशेषों से मुझे ऐसा प्रतीत होता है।

पहले इस स्थल पर 'ढगर' नाम का एक गाँव था जैसा कि गायकवाड सरकार के पुराने लेखों (Records) से मालूम होता है। काल क्रम से यह गाँव उजड़ गया और उसके बाद इसका पुनः निर्माण सीसोदरा के नाम से हुआ। विख्यात भूस्तर शास्त्री ब्रुसफूट साहब उस स्थान पर पाई गई सामग्री के आधार पर परिणाम निकालते हैं

३. इत्सिंग की भारत यात्रा पृ० ७
४. गुजरातना ऐतिहासिक लेखो–भा. १ (गुजराती)
५. गुजरातना ऐतिहासिक लेखो–भा. २ पृ. ७९
६. Epigraphia Indica. Vol. XII. No. 12-1935 A. D.

कि बहुत प्राचीन समय में वहाँ लोहा गलाने का व्यवसाय रहा होगा। इसी प्रकार उस गाँव के बहार 'गभाणीआ वगा' के नाम से प्रसिद्ध सीमाक्षेत्र में पाषाण-युग के हथियार, हाथ से बनाकर धूप में सुखाये गये मिट्टी के बर्त्तनों के अवशेष और शूपरिक में प्राप्त जिन मिट्टी की गोलियों को संशोधकों ने बौद्धों की पूजा का कोई प्रतीक माना है वैसी गोलियाँ (Votiva Balls of clay) इत्यादि अनेक वस्तुएँ यहाँ मिली हैं। इन वस्तुओं के सिवाय यहाँ से मिट्टी की एक सवा इंच व्यासकी असमान गोल मुद्रा—clay Tablet—भी मुझे मिली है। इस मुद्रा में बारीक अक्षरों में आठ पंक्तियाँ लिखी हैं। लेख में खुदे कितने ही अक्षर पुराने हो कर टूट गये हैं। ऐसा समझा गया है कि यह मुद्रा ईसा की सातवीं शताब्दी के अन्तिम भाग की है।[७] लेख में खुदे कितने ही अक्षर पुराने होकर टूट गये हैं। उसमें उदयपद्म नामक भिक्षु का नाम है बौद्ध संघ के किसी अग्रणी के नाम का भी उल्लेख है।

इस प्रकार देखा जाय तो यह मुद्रा दन्तिवर्मा के दानपत्र की अपेक्षा दो तीन दशक पहले की होनी चाहिये, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

इस सब साधनों से स्वाभाविक रूप से यह परिणाम निकलता है कि यह विहार वर्त्तमान सीसोदरा गाँव के 'गभाणीआ वगा' के ओर के विस्तार में होने चाहिये। प्रवाह बदलने में विख्यात मींढोला नदी यद्यपि अब 'वगा' से सटकर नहीं बहती परन्तु मिट्टी के स्तरों के नीचे नदी के काली रेती के पड़ तक देखने को मिलते हैं जो प्रमाणित करते हैं कि नदी का प्रवाह कभी वहाँ रहा होगा। इसलिये विहार के स्थान के विषय में इस प्रकार एक हल मिल जाता है।

ये विहार इस स्थल पर बहुत लम्बे समय से अस्तित्व में रहे होंगे। दन्तिवर्मा ने इन विहारों के जीर्णोद्धार के लिये दान दिया है यह इस बात का प्रमाण है कि उस समय तक वे सम्हालने योग्य हो गये होंगे।

इस प्रकार दक्षिण गुजरात की गोद में जन्म लेकर, पनपकर और अन्त में काल के प्रवाह में विनष्ट होकर विस्मृत हुए इस विहार के सम्बन्ध में दो बातों का निश्चय नहीं हो सका है। इस विहार के संस्थापक काम्पिल्य मुनि थे यह दानपत्र के उल्लेख से स्पष्ट मालुम होता है; परन्तु वह किस शताब्दि में स्थापित हुआ इस बात को जानने का कोई सूत्र नहीं मिलता। एक तो यह और दूसरा यह कि इस स्थान का नाश कब और किस प्रकार हुआ। उसका नाश तो हुआ ही परन्तु इतनी हद तक कि 'गभाणीआ' वगा जाने पर वहाँ टूटे फूटे अवशेषों के सिवाय अन्य कोई वस्तु देखने को नहीं मिलती; काल की लीला ने इन सबको समाप्त कर दिया है। यह लीला खेलने और खिलानेवाले महाकाल को नमस्कार!

७. विस्तृत विवरण के लिये लेखक के "पुरातन दक्षिण गुजरात" नाम की पुस्तक का 'सीसोदरानी धरतीना गर्भमाँ' प्रकरण देखो।

तुर्किस्तान के बौद्ध भित्ति-चित्र

श्री विजय श्रीवास्तव

भारतीय कला परम्परा का इतिहास बौद्ध कला के इतिहास से प्रारम्भ होता है; अथवा यह भी कहा जा सकता है कि जिस कला को हम आज भारतीय कला की संज्ञा देते हैं वह यथार्थ में बौद्ध ही है और यदि भारतीय-कला को बौद्ध-कला से ही संबोधित किया जाय तो अधिक उत्तम होगा। यह ठीक है कि भारतीय कला कहने से उसके अंतर्गत मुगल, राजपूत, पहाड़ी, इत्यादि अनेक शैलियों का समावेश हो जाता है पर यदि कला का मूल रूप और उसके प्राचीनता के इतिहास पर भी ध्यान देकर विचार किया जाय तो जिसे हम भारतीय कहते हैं वह बौद्ध ही कहा जा सकता है।

भारतीय (अथवा बौद्ध) कला के प्राचीनतम आगार अजन्ता, सिग्रिया, एलोरा आदि स्थानों में भित्तिचित्रों की ही प्रधानता है जो अत्यन्त ही विशाल हैं, भव्य हैं, सुन्द-

रता में अद्वितीय हैं और शैली में अग्रगण्य। इस लेख में केवल चित्रकला सम्बन्धी विचारविमर्ष ही प्रधान है इसलिये मूर्तिकला विषयक विचार यदि छूट जाँय तो त्रुटि न मानी जाय।

यह सर्वमान्य है कि बौद्ध-कला अपने मूल रूप में अलंकारिक है, भावप्रधान है, धर्म, आध्यात्मिकता अथवा दर्शन सम्बन्धी विषयों से प्रभावित है। साथ ही ये अत्यन्त ही विशाल पट पर अंकित होते हैं जैसे दीवारों पर, छतों पर अथवा ऐसे ही अन्य सतहों पर। इस कारण कलायोगी को कार्य सम्पादन करने में अत्यन्त सरलता और स्वतन्त्रता का अनुभव होता था। अपने सामने वह एक बड़ी सतह देख कर सचमुच ही एक स्वतन्त्र स्रष्टा की असीम भावना की मधुर कल्पना उसके हृदय के अन्दर उठती और उसकी कला गंगा की धारा के समान इस छोर से दूसरे छोर तक प्रवाहित हो जाती थी। उस कला में बन्धन नहीं होता था और कलायोगी अपने को सीमित भी अनुभव नहीं करता था। और भारतीय कला के बन्धन रहित होने का ही यह परिणाम था कि जापान, चीन, ग्रीस, ईरान, मंगोलिया, तुर्किस्तान, कोरिया आदि दूरदेश भी इसके प्रभावशाली संदेश से वंचित न रह सके और भारतीय रंग में रंग गये जिसका प्रमाण है वहाँ की कला और साहित्य।

तुर्किस्तान कि कला पर नया प्रकाश डालने का श्रेय डोनर, क्लीमेंट्ज तथा विन्टरनिट्ज जैसे विद्वानों को है जिससे भारतीय बौद्ध कला का एक बिल्कुल ही नया और रोचक अध्याय हमारे सामने आता है। जिन चित्रों का वर्णन यहाँ किया जायगा वे भित्तिचित्र हैं तथा इन चित्रों के नीचे ही इनके विषय सम्बन्धी संस्कृत श्लोक भी अंकित हैं। कहीं कहीं तो चित्रों और इन संस्कृत श्लोकों का कोई संबन्ध नहीं प्रतीत होता। संस्कृत के ये श्लोक ब्राह्मी लिपि में हैं और उन लेखों से, बने हुये चित्रों के बारे में, जो अधिकतर प्रणधिचर्या से संबन्धित हैं, जानकारी होती है।

ग्रुनवेडेल महोदय की खोज और भी प्रभावशाली और सुन्दर हैं। जो बाजक्लिक के मन्दिर में पाई गई। इन भित्तिचित्रों में, एक को छोड़कर प्रायः सभी में, संस्कृत के श्लोक अंकित हैं जिनके द्वारा चित्रों की विषय-संबन्धी जानकारी होती है। ये चित्र सुमेध पंडित के जीवन से संबन्ध रखते हैं जब उन्हें दीपंकर बुद्ध द्वारा—असंख्य कल्प बीतने पर बुद्ध होंगे, ऐसा आशीर्वाद प्राप्त हुआ था। निदान कथा में इसका वर्णन बहुत ही सुन्दर रूप से हुआ है :—

…बोये जोते अनाजों को (पंडित सुमेध ने बिल्कुल त्याग दिया और अनेक गुणों से युक्त वृक्षों से गिरे फल को ग्रहण किया। वहाँ बैठे, खड़े और टहलते योगभ्यास में लगे रह सप्ताह के अन्दर आठ समापत्तियों[1] और पाँच अभिज्ञाओं[2] को प्राप्त किया।

उसी समय दीपंकर बुद्ध संसार में उत्पन्न हुये। उनके गर्भ-प्रवेश, जन्म, बुद्धत्व प्राप्ति तथा धर्मचक्र प्रवर्त्तन के समय सारे दस सहस्र ब्रह्माण्ड कम्पायमान हुये। पूर्व-निमित्त[3] दिखाई पड़े। परन्तु पंडित सुमेध के समाधिस्थ होने के कारण यह सब कुछ दिखाई न पड़ा।…

१—एकाग्रचित्त, परिशुद्ध, परियोदात, अंगण रहित, उपक्लेश-रहित, मृदु, कर्म्मनाय, स्थिरता प्राप्त।

२—दिव्य-चक्षु, दिव्य-श्रोत, पूर्वजन्म को स्मृति, ऋद्धि-बल, पर-चित्त का ज्ञान।

३—अंधे देखने लगे। बहरे सुनने लगे। गूँगे बोलने लगे। कुबड़े सीधे हो गये। लँगड़े सीधे हो चलने लगे। बन्धनों में पड़े सभी प्राणी मुक्त हो गये। समस्त नरकों की आग बुझ गई। प्रेतों की क्षुधा-पिपासा शान्त हो गई। पशुओं को भय न रहा। सब प्राणियों के रोग शान्त हो गये। सभी प्रिय भाषी हो गये। घोड़े मधुर स्वर से हिनहिनाने लगे। हाथी चिंघाड़ने लगे। बाद्य-यन्त्र स्वंय बजने लगे। मनुष्यों के आभरण बिना टकराये ही शब्द करने लगे। सब दिशायें शान्त हो गई हवा बहने लगी। पक्षियों ने आकाश में उड़ना छोड़ दिया। नदियों का बहना बन्द हो गया। महासागर का जल मीठा हो गया। सब जगह पाँच रंग के कमलों से ढक गई। सभी प्रकार के पुष्प खिल पड़े। स्कंध-कमल, शाखा-कमल, लता-कमल पुष्पित हुये। शिलाओं को फाड़कर दण्ड कमल निकले। आकाश में लटकने वाले कमल उत्पन्न हुये। चारों ओर से पुष्पों की वर्षा हुई। आकाश में दिव्य बाद्य बजने लगे।

उस समय चार लाख अर्हतों के साथ चारिका करते बुद्ध दीपंकर रम्मक नगर पहुँचे और वहीं सुदर्शन महाविहार में रहने लगे। नगरवासियों ने उनका समुचित आदर-सत्कार किया। बुद्ध दीपंकर का उपदेश सुनकर दूसरे दिन के के लिये भोजन का निमन्त्रण दे चले गये।···दीपंकर के आगमन में सारा नगर सजाया गया। पानी बहने से टूटे-फूटे स्थानों में रेत डाली गई, भूमि को समतल बनाया गया। नाना रंगों की ध्वजायें फहराई गईं। केला और जल से भरे घट रक्खे गये। उस समय तपस्वी सुमेध ने अपने आश्रम से ऊपर उठे आकाश मार्ग से जाते उन प्रसन्न नगर-वासियों को कुतूहल-वश देखा और वहीं उतर पड़े और पूछा—"यह जन-समूह प्रमुदित, प्रसन्न, सन्तुष्ट हो किसके आने के लिये मार्ग ठीक कर रहा है ?"

पण्डित सुमेध के शब्दों में—"उन्होंने मेरे पूछने पर बताया कि अनुपम लोक-नायक दीपंकर नामक बुद्ध (शास्ता) लोक में उत्पन्न हुये हैं और यह मार्ग उनके ही लिये प्रशस्त किया जा रहा है। "बुद्ध"—यह सुनते ही बुद्ध-बुद्ध कहते हुये मैं गद्गद् हो गया और खड़े खड़े सोचा—मैं यहाँ पुण्य का बीज रोपूँगा, यह क्षण हाथ से चला न जाय और लोगों से कहा—यदि यह मार्ग बुद्ध के लिये साफ कर रहे हो तो इसका एक हिस्सा मुझे भी दे दो और उन्होंने मुझे भी साफ करने के लिये एक ओर स्थान दे दिया। मेरे हिस्से को तैयार होने के पहले ही महामुनि दीपंकर अपने चार लाख अर्हतों के साथ उस मार्ग पर चले आये। देवता और मनुष्य एक दूसरे को देखते और "साधु", "साधु" कहते थे। आकाश-मण्डल में अवस्थित देवता मन्दार, पद्म, पारिजात आदि दिव्य पुष्पों को चारों ओर बरसा रहे थे। भूमितल पर मनुष्य चम्पक, सलल, नीप, नाग, पुन्नाग, केतक आदि के पुष्प चारों ओर बिखेर रहे थे। मैं वहाँ अपने केशों को खोल, वल्कल वस्त्र और आसन वाले चर्म खण्ड को कीचड़ पर फैला, मुँह के बल लेट गया जिससे कि शिष्यों सहित बुद्ध बिना कीचड़ लगे मेरे ऊपर से चले जायँ।······

"पृथ्वी पर लेटे हुए मुझे विचार आया कि यदि मेरी इच्छा हो तो मैं आज अपने क्लेशों का नाश कर सकता हूँ। मैं बुद्ध पद प्राप्त कर देवताओं सहित सारे लोक का बुद्ध होऊँगा। वीर्य-दर्शी हो मेरे अकेले संसार-सागर से पार होने से क्या ? बुद्ध पद प्राप्त कर मैं देवताओं सहित समस्त लोक को पार उतारूँगा। नर-श्रेष्ठ दीपंकर की इस की गई पूजा के प्रताप से बुद्ध पद प्राप्त कर मैं आवा-गमन की धारा से सभी को मुक्त कर दूँगा······।

इतने में ही भगवान् दीपंकर आकर, तपस्वी सुमेध के सिर की ओर खड़े हुये और उनको देखा पड़े हुए कीचड़ में। फिर उनका भविष्य विचार कर जाना कि अब से चार अंसखेय्य कल्प बीतने पर गौतम नाम के बुद्ध होंगे। और मण्डली के बीच कहा—यह तपस्वी बुद्ध-पद प्राप्ति के लिये दृढ़-संकल्प करके पड़ा है। इसकी कामना पूरी होगी। उस जन्म में उसका निवास कपिलवस्तु नगर होगा। माया देवी इसकी माता, शुद्धोदन नामक राजा इसका पिता। उपतिष्य तथा कोलित अग्रश्रावक तथा श्रावक होंगे। आनन्द उपस्थायक तथा खेमा नामक प्रधान शिष्या होगी। न्यग्रोध वृक्ष के नीचे खीर ग्रहण कर नेरंजरा (नीलाजन, जिला गया) नदी के किनारे उसे ग्रहण कर, बोधिमण्ड पर चढ़ अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बुद्ध-पद प्राप्त करेगा।

दीपंकर बुद्ध भी बोधिसत्व (सुमेध) की प्रशंसा कर, आठ मुट्ठी फूल से पूजा कर, प्रदक्षिणा कर चल दिये। वे चार लाख अर्हत भी गन्ध और माला से बोधिसत्व की पूजा और प्रदक्षिणा कर आगे बढ़े। देवता और मनुष्यों ने भी वैसा ही किया।

तुर्किस्तान के गुफा मन्दिर में पाये गये इन भित्ति-चित्रों का महत्व इसलिये और भी अधिक बढ़ जाता है कि सुमेध तथा दीपंकर बुद्ध की कथा और कहीं भी चित्रित नहीं पाई गई। साथ ही इन चित्रों की शैली भी अन्य बौद्ध शैलियों से भिन्न हैं। कहीं भी बौद्ध शैली के चित्रों में किसी प्रकार का हाशिया अथवा किसी प्रकार की लिखावट का समावेश नहीं दीख पड़ा। चित्रों में लिखना अथवा हाशिया देने की प्रथा तो मुगलों के समय प्रचलित हुई कही जाती है जो ईरान से ली गई थी। ईरानी कलाकार अच्छे लिपिक भी होते थे और इसी कारण वे अपने चित्रों को लिखावट द्वारा भी अलंकृत कर अपने कला-चातुर्य का परिचय देते। मुगल दर्बार में इन

कलाकारों को राजकीय प्रश्रय प्रदान किया गया जिससे मुगलकाल में भारतीय कला ने एक नया ही रूप दिखलाया।

तुर्किस्तान के इन चित्रों की प्राचीनता का अन्दाज इस बात से लगेगा कि यहाँ के रेगिस्तानी प्रदेश के उत्तरी भाग के विहारों को ह्वेनसांग अपनी यात्रा वर्णन में लिखा है। लूडर्स महोदय के अनुसार इन भित्तिचित्रों के वर्णन स्वरूप जो संस्कृत श्लोक उनके नीचे नीचे लिखे गये हैं उनकी भाषा का रूप शुद्ध संस्कृत नहीं। संभवतः यही बिगड़ी हुई भाषा उस समय वहाँ प्रचलित रही हो। लूडर्स महोदय ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि ये श्लोक मुख्यतः महावस्तु और दिव्यावदान ग्रन्थों से लिये गये हैं। कहीं कहीं तो संस्कृत की अशुद्ध भाषा इस बात को असंभव बना देती है कि यह जाना जा सके कि अमुक श्लोक क्या कहता है। हुनर महोदय ने ऐसे स्थानों पर उन पुस्तकों के मूल चीनी पाठ से सहायता ली और आसानी से उन श्लोकों की अशुद्धियों को ठीक कर उनके सही अर्थ निकाले।

जो कुछ भी हो, चित्रों को लिपि-अलंकार से मुक्त करने की पद्धति जिसे हम मुगल काल में इतने उन्नत रूप में पाते हैं, यदि इन बौद्ध भित्ति-चित्रों से ली गई हों तो क्या आश्चर्य। चित्रांकन की पद्धति, शैली अथवा विषय संबंधी अन्य बातें उनकी भौगोलिक स्थितियों के अनुसार भिन्न थी और उनकी छाप भी अलग अलग थी। इसी कारणमुगल चित्रों में केवल पक्षियों, पशुओं, और दर्बारियों के सुन्दर चित्र ही अधिक प्रौढ़ शैली में मिलते हैं क्योंकि मुगल कला दर्बारी-रूप में पनपी और बढ़ी। यह जनता के लिये न रह कर धनिकों के ही ऐश के लिये रही। इसी के विपरीत बौद्ध कला जनता की थी और उसके मनोरंजन का भी ध्यान मुख्य था। इनके विषय भी ऐसे होते थे कि जनता के हृदय पर अपना असर डालें जैसे धर्म, दर्शन, शास्त्र और नैतिकता संबन्धी चित्र। दैनिक जीवन के भी चित्र कम नहीं मिलते।

तुर्किस्तान के इन भित्ति-चित्रों में लिखे संस्कृत के श्लोक अभी पूरी तौर पर पढ़े नहीं जा सके हैं। क्योंकि जिन पुस्तकों के आधार पर वे हैं उनकी प्रमाणित पुस्तक उपलब्ध नहीं। तिब्बती भाषा में कुछ हैं और जब तक उनका सहारा नहीं मिलता कुछ ठीक प्रकार से निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। जो भी हो, ये चित्र निश्चय ही बौद्ध कला पर एक नया प्रकाश डालते हैं।

एकांकी

श्वेत नाग

श्री० पी० वी० राजमन्नार

[इस एकांकी के लेखक माननीय पी० वी० राजमन्नार मद्रास हाई कोर्ट के चीफजस्टिस (प्रधान न्यायाधीश) हैं। वे कानून के धुरंधर पण्डित हैं ही, साथ ही तेलगु के भी महान् साहित्यिक हैं। आधुनिक तेलगु के नाटककारों में उनका एक विशिष्ट स्थान है। आन्ध्र रंगमञ्च पर उनके नाटक, एकांकी, सफलतापूर्वक खेले गये हैं। 'श्वेतनाग' श्री जस्टिस राजमन्नार की नवीन कलाकृति है। वह रंगमञ्च पर सफलतापूर्वक खेला गया है।]

(अजन्ता के पर्वतों में एक बौद्ध चैत्य के अन्दर धातु गर्भ का स्थान। चैत्य नया बना है। कक्ष की एक भित्ति पर माया देवी का स्वप्न और बुद्ध का जन्म चित्रित है। सामने दीवार पर कोई चित्र नहीं है। चित्रण के लिये दीवार तैयार की गई है। दो सेवक रंग के बर्तन, तूलिकाएँ और छोटी सी मेजें दीवार के सामने रखते हैं। पास ही में बौद्ध सूत्रों का पारायण अस्पष्ट रूप से सुनाई पड़ता है।)

पहला सेवक--अरे! नागसुन्दर के हाथ में कितना कौशल है?

दूसरा सेवक--वह सिद्धहस्त है। कितना छोटा है! अभी तो मसें भीग ही रही हैं।

प० से०—वह कितना सुन्दर है ! इसके एक ही नयन-कटाक्ष में कितनी ही सुन्दरियाँ पैरों पड़ेंगी। लेकिन न जाने, इतनी छोटी-सी उम्र में ही संघ में यह क्यों सम्मिलित हो गया ? सुनते हैं, सन्यास लेकर भिक्षु बन जायगा।

दू० से०—भई ! वह बात हम तुम कैसे समझ सकते हैं।

प० से०—(सोचते हुए) भगवान् बुद्ध जब राज-पाट छोड़ कर चले तब क्या वे युवक नहीं थे ?

दू० से०—सभी को यह वैराग्य हुआ करता है। अपनी श्रीमती जी से अपने राम का झगड़ा होता है तब मुझे भी ऐसा लगता है कि सन्यासी हो जाऊँ। लेकिन जब वह पास आकर कहने लगती है कि आज जंगली सुअर के मांस का पुलाव तैयार किया है, देखो कितना अच्छा है, तब सारा वैराग्य काफूर हो जाता है।

प० से०—चुप !

(सूत्रों का पठन रुक जाता है। उच्च स्वर से कुछ लोग बोलते हैं।)

बुद्धं सरणं गच्छामि।
धम्मं सरणं गच्छामि।
संघं सरणं गच्छामि।

(सेवक चुपचाप सिर झुकाए खड़े रहते हैं।)

(उसके बाद आनन्दहित, दो भिक्षुओं और नाग-सुन्दर का प्रवेश।)

(आनन्दहित के मुख पर तेज और शान्ति विराज-मान है। आँखों में करुणा, भाल में हृदय की विशालता और ओठों में दया स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। नाग-सुन्दर युवक तथा तेजस्वी है। अभी भिक्षु नहीं बना है। उपासक है। बार बार आँखें बन्द करके खोलता है। तब ऐसा मालूम होता है कि दूसरे लोक में जाकर इस लोक में आया है।)

आनन्दहित—(प्रेम से) वत्स ! नागसुन्दर ! (दीवार पर दिखाते हुए) इस स्थान पर "काम की पराजय" का चित्र चित्रित करने का चैत्य के अधिकारियों ने निश्चय किया है। उसके लिये मैंने तुम्हीं को शिल्पी नियुक्त करने को कहा तो उन्होंने स्वीकार किया। क्या तुमको स्वीकार है ?

नागसुन्दर—(परवशता से) अहोभाग्य है मेरा ! महाप्रसाद है। धन्य हूँ। (कुछ संकोच से) लेकिन डरता हूँ कि क्या मैं इस कार्य के योग्य हूँ ? मेरी शक्ति पर्याप्त होगी ?

आनन्द०—(मुस्कराते हुए) तुम्हारा यह संदेह स्वाभाविक है, लेकिन डरो नहीं। हमारा विश्वास है कि तुम्हारी शिल्प-निपुणता और प्रतिभा के लिए कोई असाध्य नहीं है।

पहला भिक्षु—सुनता हूँ कि राज-नर्तकी के पश्चा-त्ताप का जो चित्र तुमने खींचा है उसे राजकुमारी जयश्री ने बहुत पसन्द किया है।

नाग०—राजकुमारी जयश्री ने !

दूसरा भिक्षु—आन्ध्र राजकुमारी की कला की आरा-धना और तथागत की उपासना प्रसिद्ध है न ?

आनन्द०—हमारा विश्वास तथा बोधिसत्व की कृपा पर्याप्त है। नागसुन्दर ! महात्माओं को भी कोई बड़ा कार्य आरम्भ करने के पहले संकोच का होना स्वाभा-विक है।

नाग०—(आँखें बन्दकर फिर खोलकर) अर्हत का अनुराग, बुद्धदेव की कृपा मेरा भाग्य है।

आनन्द०—अच्छा हमारा समय हो गया। (सब जाते हैं)

❀ ❀ ❀

(कुछ दिनों के बाद। वही स्थान। दीवार के सामने एक छोटे आसन पर नागसुन्दर आँखें बन्द किये बैठा है। दीवार पर जहाँ-तहाँ कुछ रेखायें खिंची हैं।)

[धीरे-धीरे राजकुमारी जयश्री तथा पहले भिक्षु का प्रवेश। उनकी आहट पाकर नागसुन्दर चौंक कर आँखें खोलता है।]

पहला भिक्षु—नागसुन्दर ! यह आन्ध्र-राजकुमारी देवी जयश्री हैं।

नाग०—(उठना चाहता है)

जयश्री—(उसे रोककर) नहीं, नहीं। यद्यपि मैं राजकुमारी हूँ तो भी चैत्य में सब सामान हैं। उस पर

तुम तो उपासक ठहरे। शिल्पी-सम्राट हो। मुझसे कहीं अधिक तुम्हीं आदर के पात्र हो।

प० भि०—नागसुन्दर! देर हो गई। राजकुमारी को राह दिखाने भर को आया हूँ। यह संगीत, साहित्य नृत्य आदि कलाओं में बड़ी निपुण हैं। मैंने कहा न था—उस दिन तुम्हारे चित्र को बहुत पसन्द किया। नये चित्र की रचना करने जा रहे हो, यह सुनकर बड़े उत्साह से चली आयीं। देवी मैं जाता हूँ। (जाता है)

(जयश्री पूर्ण युवती है। सुगठित शरीर। सौन्दर्य की साक्षात् मूर्ति। उसकी वक्र गति और नेत्र, श्वेतनाग का स्मरण कराते हैं।)

जयश्री :—(नागसुन्दर को एक टक देखती हुई) कितने दिनों के बाद! (खिल-खिला कर हँसती हुई नागसुन्दर की आँखें देख कर) क्या है? ऐसा क्यों देख रहे हो?

नाग० :—(संकोच के साथ) कुछ नहीं। आप की हँसी में निर्झर का कल-कल नाद सुनाई पड़ता है।

जयश्री :—क्या ही अच्छा कहा! लेकिन क्या तुम जानना नहीं चाहते कि मैं क्यों हँसी और कितने दिनों के बाद क्या हुआ?

नाग० :—चाहता हूँ।

जयश्री :—तुम तो भोले हो।

नाग :—सच है। आप को यह कैसे मालूम हुआ?

जयश्री :—स्त्रियों की बुद्धि सूक्ष्मग्राहिणी होती है। तो भी कहती हूँ, सुनो! जब कभी मैं कोई अच्छा चित्र देखती थी तब उस चित्रकार के आकार की कल्पना करती थी। उसके बाद उसको देखने पर मेरी धारणा गलत निकलती थी। एक बार मेरी कल्पना के अनुसार चित्रकार छरहरा शरीर, लंबा, सुन्दर-नाक और नेत्र वाला था। लेकिन असली चित्रकार जब मेरे सामने आया, नाटा, मोटा, चपटी नाक तथा धँसी आँखों वाला था। उस पराजय का स्मरण कर के ही हँस पड़ी और तुम्हें देख कर कहा कि अहा कितने दिनों के बाद।

नाग०:—मतलब?

जयश्री :—इतने दिनों के बाद मुझे अपने काल्पनिक चित्रकार का साक्षात्कार हुआ।

नाग० :—कहाँ? कौन?

जयश्री :—अरे भोले! यहीं! तुम्हीं।

नाग० :—(लज्जित हो इधर उधर देखता है)

जयश्री :—हाय! अपनी व्यर्थ की बातों से तुम्हारे काम में बाधा डालती हूँ। "काम की पराजय" तुम्हारे चित्र की वस्तु है ना! किस दृश्य को चित्रित करने जा रहे हो? क्या वही दृश्य, जिस में बोधिसत्व के सामने तृष्णा, रति, तथा रगा सुन्दरी ने नृत्य किया।

नाग० :—(सिर हिलाता है स्वीकार पूर्वक।)

जयश्री :—फिर क्या? यह तो तुम्हारी शिल्पकला प्रतिभा के अनुकूल ही है।

नाग० :—नहीं नहीं, यह मत कहिये। वे सुन्दरियाँ अतिशय सुन्दरी हैं। नृत्य कला में निपुण हैं। स्त्री की सुन्दरता तथा विलास विभ्रमों से मेरा विशेष परिचय नहीं है। थोड़ा बहुत नाट्यशास्त्र का अध्ययन किया है। किन्तु अभ्यास नहीं है। नर्तकियों का नृत्य नहीं देखा। शायद अयोग्य होते हुए भी मैंने यह जिम्मेवारी ली है। कुछ सूझ नहीं पड़ता कि क्या करूँ?

जयश्री :—तुम को सहायता चाहिये वह मैं दूँगी। देखो, (मुस्कुराती हुई) मुझे अच्छी तरह देखो। अपनी कलामय सौन्दर्योपासक दृष्टि से मुझे देखो। लोग मुझे परम सुन्दरी कहते हैं। देखो।

(उठ कर अपने अवयव सौन्दर्य-सौभाग्य को दिखाती हुई टहलती है) देखा?

नाग० :—(आँखें फाड़कर सौन्दर्य का पान करते हुये) अहोभाग्य है। सारी सुन्दरता आप में अवतरित हुई है। अन्धता के कारण नहीं देख सका (यों कहकर अपनी आश्चर्य चमत्कृति के लिये जीभ दाँतों तले दबा लेता है) देवी! कृपा कीजिये।

जयश्री :—(हँसती हुई) इतना ही नहीं। नाट्य शास्त्र का अध्ययन ही नहीं; बल्कि अच्छी तरह अभ्यास किया। अगर राजकुमारी न होती तो शायद राजनर्तकी हुई होती। तुम को विश्वास नहीं है न? (ओढ़नी हटाकर) लो, (नृत्य की मुद्रायें प्रदर्शित करती है)—यह नितंब है। यह जनित है। यह त्रिपताका है। यह मयूर है। यह शिखर है। यह चक्र भ्रमरी है। यह एक-

पाद भ्रमरी है। सब मुद्राओं का अभ्यास किया। देखो यह सर्पित है। यह नागापसर्पित है। यह विवर्तित है। (भिन्न-भिन्न हस्तविन्यासों की मुद्रा प्रदर्शित करती है।)

नाग० :—अद्भुत है! अवर्णनीय है! गिरा अनयन नयन बिनु बाणी!

जयश्री :—बस इसी के लिये। पाठ के उदाहरण की तरह करके दिखाया। मैंने तो नृत्य किया ही नहीं। नृत्य जब राग, भाव लयान्वित किया जाता है तभी न रस-निष्पत्ति होती है। (इधर उधर देखकर) यहाँ मैं कैसे नाच सकती हूँ। (हँस कर) बोलो?

नाग० :—(उन्मत्त की तरह टकटकी लगा कर देखता है।)

जयश्री :—(अचानक) हाँ, ऐसा करो। आज रात को अन्तःपुर में आओ। नृत्य करूँगी। नृत्य-शाला में ताल, गीत, वाद्यों के लिये मेरी सखियाँ रहेंगी। हमारे अतिथि की तरह आओगे तो तुम्हारा सत्कार करेंगी। डरने की कोई बात नहीं।

नाग :—(सन्देह के साथ मौन धारण करता है।)

जयश्री :—ओहो? कदाचित् संकोच करते हो। मैंने तुम को अन्तःपुर में आने का निमंत्रण दिया है। वेश्या-भवन में नहीं। स्वयं सिद्धार्थ ने ही आम्रपाली जैसी वेश्या के यहाँ भोजन स्वीकार किया था। (हँसती हुई) क्या मैं आम्रपाली से भी कम हूँ? क्या तुम भी एकदम बुद्ध जैसे बन गये हो? इन अर्थहीन संकोचों को छोड़ कर अवश्य आओगे न! अब मेरे जाने का समय हो गया है। तुम्हारी प्रतीक्षा करती रहूँगी।

(ओढ़नी ओढ़कर चली जाती है।)

(व्यथित उद्विग्न मन से नागसुन्दर टहलने लगता है)

[पहले भिक्षु का प्रवेश]

प० भि० :—नागसुन्दर। यह कैसी गहरी चिन्ता है?

नाग० :—(दीनता से भिक्षु का हाथ पकड़ कर) मैं क्या करूँ? राजकुमारी का अन्तःपुर में आने का आदेश है आज का नृत्य देखने। यह भी कहा है कि वह मेरे चित्र के लिये उपयोगी होगा। क्या करूँ?

प० भि० :—तो जाओ! राजकुमारी का आह्वान तुम्हारे लिये आज्ञा है। प्रसिद्ध है कि वह श्रेष्ठ नर्तकी है। तुम तो बड़े भाग्यवान निकले।

नाग० :—(आशा के साथ) तो जाऊँ?

प० भि० :—जाओ। लेकिन (नागसुन्दर के दोनों हाथ पकड़ कर) अजी, भगवान् बुद्ध ने जो कहा है उसे याद रखना।

कामतो जायते सोको
कामतो जायते भयं,
कामतो विप्पमुत्तस्स,
नत्थि सोको कुतो भयं।

नाग० :—क्या मैं कभी भूल सकता हूँ?

प० भि० :—बुद्धं सरणं गच्छामि।

❀ ❀ ❀

(दूसरा दिन, वही स्थान। नागसुन्दर दीवार के सामने आँखें मूँदे बैठा स्वप्न देख रहा है)

(पहले भिक्षु का प्रवेश, लेकिन नागसुन्दर को पता नहीं।

प० भि० :—नागसुन्दर! कोई स्वप्न देख रहे हो?

नाग० :—(चौंक कर) प्रणाम!

प० भि० :—कल रात का नृत्य अच्छा था?

नाग० :—(उत्साह से) उस चमत्कार और निपुणता के लिये नृत्य शब्द पर्याप्त नहीं है। मैंने कल ही जान लिया है कि आनन्द का अनुभव कलाओं के द्वारा होगा, अन्यथा नहीं। वाह कैसी सुन्दरता है! कैसा है अंग-सौष्ठव! कैसी रमणीयता! लय-बद्ध रस का वह उत्कर्ष! मैं तो परवश हो गया था। इस लोक को छोड़ कर आकाश मार्ग से किसी दूसरे लोक में उड़ गया था। जब से नृत्य समाप्त हुआ तब से संसार की सभी वस्तुएँ और मनुष्य निःसत्व और नीरस दिखाई देते हैं।

प० भि० :—बस है वर्णन! एक रात में थोड़ी देर के लिये ही सही, काफी अनुभव प्राप्त कर लिया तुमने। अब बस है। अपना काम करो। मुझे भी काम है। (प्रस्थान)

नाग० :—ठीक है। समय को व्यर्थ गँवा रहा हूँ।

(तूलिका से एक नर्तकी का चित्र अंकित करने लगता है)।

(जयश्री का प्रवेश)

जयश्री :—क्यों? पसन्द आया कल का नृत्य?

ना० :—हाँ, मैं तो तन्मय हो गया।

जयश्री :—हाँ, मुझे बहुत संतोष हुआ है। अभ्यास और प्रशंसा के बिना मेरी विद्या आलबाल रहित अशोक द्रुम की भाँति जब शुष्क होती जा रही थी तब तुमने मुझमें एक नया उत्साह, नया जीवन भर दिया। फिर से तुमने मुझ में नृत्य के प्रति अनुराग उत्पन्न किया। तुमको देखते हुए नाचते समय नृत्य में लीन हो गयी। तुम्हारे साथ…

नाग०:—इस प्रकार मत बोलो देवी ! किसी के प्रति अनुराग नहीं होना चाहिये। अनुराग शोक का कारण है।

जयश्री :—हूँ ! ये सब ग्रन्थों की बातें हैं। तुम्हारे हृदय से निकली हुई नहीं हैं। सौन्दर्य की पिपासा सहज व नैसर्गिक है। आनन्द का अनुभव सभी लोगों को समान है न !

नाग०:—यह बात नहीं। यह राग तृष्णा है। काम तृष्णा है। भव तृष्णा है। भगवान् का यह उपदेश क्या तुमको ज्ञात नहीं है कि तृष्णा रूपी लता को जड़ जमाकर बाहर रेंग कर फैलने से पहले ही काट देना चाहिये। यदि मैं उसमें फँस जाऊँ तो मैं बाहर नहीं निकल सकूँगा।

जयश्री:—क्या तुम भी ?

नाग०:—हाँ ! कौन जाने ?

जयश्री:—(चुपचाप दीवार की ओर देखती हुई) उस नर्तकी की वह मुद्रा क्या कल के मेरे नृत्य की नहीं है ?

नाग०:—(चौंक कर) ऐसा हो सकता है।

जयश्री—तब और क्या मेरे गर्व की सीमा नहीं है। (फिर दिखाकर) देखो उरोजों को। उस ओर कुछ शिथिल से मालूम होते हैं ? (समीप में खड़ी होती है।)

नाग०:—(मन कुछ चंचल होता है) हाँ, ठीक करूँगा। देर हुई। शायद आपको जाना है।

जयश्री:—नहीं, नहीं ! मेरे रहते तुम्हारा काम नहीं होगा। क्यों यही ना ?

नाग०:—(सिर झुका कर) हाँ।

जयश्री:—(जोर से हँसती हुई) तो जाऊँगी। (उसका हाथ पकड़ लेती है)।

नाग०:—(झिझक के साथ अपना हाथ खींच लेता है)

जयश्री:—क्यों ? डरते हो क्या कि काट खाऊँगी ? क्या मैं नागिन हूँ ?

नाग०:—(प्रणाम कर) क्षमा करो देवी !

जयश्री:—(हँसती हुई जाती है।)

नाग० :—(कान बन्द कर लेता है कि उस हँसी की गूँज को न सुन सके। उसके बाद अपना हाँथ देख लेता है जिसे जयश्री ने पकड़ा)

(कुछ दिनों के बाद नागसुन्दर सायंकल के समय, रंग की प्यालियों और तूलिकाओं से घिरा बैठा है। नाचती हुई रतिका चित्र पूरा हुआ। तूलिका उठाता है, लेकिन उसे फेंक कर आँखें बन्द कर लेता है।)

(जयश्री का प्रवेश। चुपचाप उसके पीछे खड़ी होती है और रतिका चित्र देखकर उसमें अपना रूप पहिचान लेती है। आनन्द के साथ धीरे-धीरे उसकी भुजा को छूती है।)

नाग०:—(चौंककर जयश्री को देखकर) कितनी देर हुई यहाँ आये सुन्दरी !

जयश्री : – अभी आई।

नाग०:—क्यों आयीं ?

जयश्री :—तुम्हें देखे चार दिन हो गये हैं।

नाग० :—तब ?

जयश्री :—बस इतना ही ! समझ नहीं सके ! बड़े शिल्पी हो। कला के उपासक हो। मनोभावों को समझे बिना शिल्पी कैसे बने ? नहीं समझते ? बोलो, सच बोलो। क्या तुमको मालूम नहीं है कि तुम्हारे बिना मेरा जीवन शून्य है, व्यर्थ है, निरर्थक है ! अन्धकारमय है ! मैं तुम्हारे लिये राजकुमारी नहीं हूँ, दासी हूँ।

नाग० :—नहीं ऐसा मत कहो। ज्ञानी होकर तुम्हीं ऐसा कहोगी तो मैं क्या करूँ ? मैं कला का उपासक नहीं। भगवान् तथागत के धर्म का उपासक हूँ। मुझ जैसे के जीवन में तुम्हारे जैसों के लिये स्थान नहीं है।

जयश्री :—क्या तुम्हारे धर्म में हृदय के लिये स्थान ही नहीं है ?

नाग० :—गलत धारणा है देवी ! अहिंसा को ही परम धर्म मानने वाले बौद्ध धर्म में हृदय को स्थान नहीं ! सैकड़ों और सहस्रों दुखियों पर अपनी निस्सीम करुणा

की वर्षा करने वाले बुद्ध भगवान् के धर्म में हृदय को ही स्थान नहीं है। कैसी भूल करती हो ?

जयश्री :—(करुणा से) मैं इस दुःख में दुःखी हूँ। क्या मेरे दुःख को दूर करना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है ?

नाग० :—अवश्य इस दुःख को दूर करने का मार्ग है, लेकिन वह तुम्हारा इच्छित मार्ग नहीं है। इस दुःख का कारण है तृष्णा, काम और शारीरिक सुख की लालसा, वासना ! उस कारण का नाश करने पर दुःख दूर हो जायगा। हम दोनों के लिये तथागत का उपदेश किया हुआ अष्ट-मार्ग ही अनुसरणीय है।

जयश्री :—(ठण्डी आह भरकर) बस इतना ही। उस रति के उतनी सुन्दरता से नाचने पर भी बुद्धदेव जैसे अविचल रहे वैसे ही कदाचित् तुम्हारा मन भी मेरे नृत्य करने पर भी चंचल नहीं हुआ होगा।

नाग० :—बड़ा अपराध है (पाप क्षम्य हो) देवी ! कहाँ बुद्धदेव और कहाँ मैं (दीनता से जयश्री की ओर देखता है)

जयश्री—(अश्रुमोचन करती हुई खड़ी रहती है !)

नाग० :—(हृदय पिघल जाता है। उठकर चादर से उसके आँसू पोछता है !

जयश्री :—(एकाएक उसका हाथ पकड़ लेती है और जोर से चूमकर हृदय से लगा लेती है।)

नाग०—(एक क्षण तक चुप रहता है। उसके बाद हाथ छुड़ा लेता है।)

जयश्री :—(अपराध हुआ, क्षमा प्रार्थिनी हूँ। अब तुमको तंग न करूँगी। विश्वास करो······तुम्हारे पीछे खड़ी होकर तुम्हारा शिल्प-वैभव देखती रहूँगी।)

नाग० :—(भ्रान्त व्यक्ति की भाँति आसन पर बैठ जाता है। रंग की प्याली में तूलिका डुबोता है और दीवार तक उठाकर नीचे फेंक देता है। जहाँ जयश्री ने चुम्बन लिया था उस जगह को देखता रहता है। तूलिका नीचे गिरकर कोने में लुढ़क जाती है, उसे उठाने के लिए हाथ बढ़ाता है। उसी क्षण एक श्वेतनाग दीवार के कोने में से सरसराता हुआ आता है और उसके हाथ पर डस कर भाग जाता है) (जोर से) आह ! (दूसरे हाथ से उस हाथ को पकड़कर तीव्र वेदना से धरती पर लोटकर बेहोश हो जाता है)

जयश्री :—(देखकर) आः कष्टम् ! श्वेतनाग !! (यों चिल्लाकर तत्क्षण घुटनों के बल बैठ जाती है और नागसुन्दर के दाहिने हाथ पर उस दंशित स्थान को अपने दाँतों से खून निकलने तक काटकर ओठों से खून के साथ सर्पविष को भी चूसने लगती है। कुछ देर में विष का प्रभाव दिखाई देता है। असह्य वेदना से अपने कण्ठ को दोनों हाथों से पकड़कर गिर जाती है। मुँह से झाग निकलते हैं।)

(उसी समय त्रिपिटक से किसी पद की ध्वनि अस्पष्ट रूप से सुनाई पड़ती है और बन्द हो जाती है) (उसके बाद आनंदार्हत का प्रवेश पहले भिक्षु के साथ)

आनन्द :—नागसुन्दर ! (दोनों को बेहोश देखकर) मशाल ! मशाल ! (पहला भिक्षु दोनों के मुँह के पास अपना हाथ रखकर देखता है। जयश्री को श्वासरहित देख कर मुँह पर निराशा की छाया दौड़ जाती है। नागसुन्दर की श्वास अभी चलती है। इतने में मशालों के साथ सेवक आते हैं। उसके प्रकाश में श्वेतनाग दिखाई देता है और भाग जाता है।

आनन्द :—शीघ्रता ! शीघ्रता करो ! विषहारिणी ! (विषहारिणी नागसुन्दर के मुँह पर पानी छिड़ककर औषधि, रक्त आने के स्थान पर लगाती है। थोड़ी देर में नागसुन्दर आखें खोलता है।

नाग० —(आनन्द को देखकर) भगवन्, श्वेतनाग......। जयश्री का क्या हुआ ?

आनन्द :—(सब समझकर) लो, तुम्हारे प्राणों के लिये अपने प्राण देने वाली महात्यागी को देखो। जिसने तुम्हारी रक्षा करके अपने प्राण दे दिये।)

नाग० :—ओह ! (आँखें बन्द कर लेता है)

आनन्द और सब :—

बुद्धं सरणं गच्छामि !
धम्मं सरणं गच्छामि।
संघं सरणं गच्छामि।

['विश्ववाणी' से उद्धृत]

राजपूताने में बौद्ध-धर्म

श्री मोहनकुमार नाथूसिंह तँवर
सम्पादक 'कोलिय राजपूत', अजमेर

एक समय सारे भारत में ही नहीं बल्कि समस्त संसार के प्रमुख राष्ट्रों में भगवान् बुद्ध की अमरवाणी व उनके धर्म की तेजोमयी रश्मियाँ आलोकमान् हुई थीं, यद्यपि स्वयं भगवान् तथागत विदेशों में धर्म के प्रचारार्थ नहीं पहुँचे थे और न वे अपने जीवनकाल में भारत में ही सम्पूर्णतः विचर सके। उनके धर्म-प्रचार का प्रमुख-क्षेत्र तत्समय भारत का 'मज्झिम देश' (मध्य प्रदेश) ही रहा और वे जैसा कि त्रिपिटक के अध्ययन से विदित होता है—कोसी-कुरुक्षेत्र विन्ध्य-हिमालय से घिरे मध्य प्रदेश के बाहर नहीं गये। उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम ४५ वर्षों में इसी "कोसी-कुरुक्षेत्र और हिमालय विन्ध्याचल" के भीतर ही विचरते हुए प्रचार-कार्य किया।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन अपनी 'बुद्धचर्या' में लिखते हैं—इस धर्म के अनुयायी चिरकाल तक, महान् सम्राटों से लेकर साधारण जन तक सारे भारत में, बहुत अधिकता से फैले हुए थे। इससे भिक्षुओं के मठों और विहारों से देश का शायद ही कोई भाग रिक्त रहा हो। इसके विचारक व दार्शनिक हजारों वर्षों तक अपने विचारों से भारत के विचार को प्रभावित करते रहे। इसके कला-विशारदों ने भारतीय कला पर अमिट छाप लगायी। इसके वास्तु शास्त्री और प्रस्तर-शिल्पी हजारों वर्षों तक सजीव पर्वत-वृक्षों को मोम की तरह काटकर, अजन्ता, एलौरा, कार्लें, नासिक जैसे गुहा-विहारों को बनाते रहे। इसके गम्भीर मन्तव्यों को अपनाने के लिए यवन और चीन जैसी समुन्नत जातियाँ लालायित रहती रहीं। इसके दार्शनिक और सदाचार के नियमों को आरम्भ से अब तक सभी विद्वान् आदर की दृष्टि से देखते रहे। इसके अनुयायियों की संख्या के बराबर आज भी किसी दूसरे धर्म की संख्या नहीं है।'

उक्त उदाहरण से हम इस बात में कोई सन्देह नहीं पाते कि बौद्ध-धर्म का राजपूताने में कोई विकास नहीं हुआ हो, ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि यहाँ की थोड़ी आबादी के कारण इस महान् धर्म का इतना संचार न हुआ हो। फिर भी हमें यहाँ ऐसे प्रचुर प्रमाण मिलते हैं जिससे कि यह सिद्ध किया जा सकता है कि बौद्ध धर्म से राजपूताना भी अछूता नहीं था।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'बुद्ध और बौद्ध धर्म' नामक पुस्तक के–बौद्धों के धर्म साम्राज्य का विस्तार–नामक अध्याय में लिखा है, विदेश में बौद्ध-धर्म का प्रचार सबसे प्रथम सम्राट अशोक ने किया। उसने गान्धार व काश्मीर में, मिस्र में, राजपूताने में, पश्चिमी पंजाब में बैक्ट्रिया और यूनान में, मध्य हिमालय के प्रान्तों में, बर्मा और लंका में धार्मिक उपदेशकों को भेजा। अशोक की प्रशस्तियों के विषय में प्रकाश डालते हुए, वे आगे लिखते हैं—इनके सिवा कई शिलालेख मैसूर, बंगाल मध्य प्रदेश और राजपूताने में भी पाये गये हैं, जो अभिषेक के ३८ वर्ष बाद तक के मिलते हैं।

वास्तव में बात यह है कि जिस रूप में आज 'राजपूताना' नाम की ईकाई है वैसी यह ईकाई प्राचीन काल में नहीं रही। इसके कई एक विभाग दूसरे प्रान्तों के अन्तर्गत थे और कितने ही अंशों के नाम-समय समय पर विभिन्न थे। जैसा कि राजस्थान के सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा ने बताया है—अलवर राज्य का उत्तरी विभाग कुरुदेश, के दक्षिणी और पश्चिमी मत्स्यदेश के और पूर्वी विभाग शूरसेन के अन्तर्गत था; शूरसेन देश की राजधानी मथुरा थी। जयपुर राज्य का उत्तरी विभाग मत्स्य देश में, दक्षिणी विभाग चौहानों के राज्य-समय सपादलक्ष में गिना जाता था। मत्स्य देश की राजधानी वैराट् नगर (जयपुर) थी। उदयपुर राज्य का प्रचीन नाम शिवि देश था जिसकी

राजधानी मध्यमिका नगरी थी। गुर्जरों के अधीन का, जोधपुर राज्य की उत्तरी सीमा से लगाकर दक्षिणी सीमा तक का सारा मारवाड़ गुर्जरत्रा या गुर्जर (गुजरात) के नाम से प्रसिद्ध था, झालावाड़ राज्य और टोंक के छबड़ा, पिरावा तथा सिरोंज मालव देश के अन्तर्गत थे।

इन राज्यों पर और अधिक प्रकाश, हमें इन्हें समझने में निम्नतः सहायक होगा।—प्राचीन भारतीय संस्कृति के सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० बी०सी० लाहा की 'ट्राइब्स इन एन्सिएन्ट इण्डिया'—नामक पुस्तक से उक्त प्रान्तीयकरण का और भी स्पष्टीकरण हो जाता है यथा–(१) मत्स्य—…हमने देखा है, मनु के अनुसार मत्स्य देश ब्रह्मर्षि देश-पवित्र ऋषियों का–ही एक भाग था और जैसा कि श्री रैपसन बतलाते हैं, उसमें पटियाला स्टेट तथा पंजाब से देहली डिवीजन का आधा पूर्वी भाग, अलवर रियासत तथा राजपूताना में निकटवर्ती प्रदेश जो कि गंगा और यमुना के बीच पड़ता है। (Included the eastern half of the state of Patiala and of the Delhi division of the Punjab, the Alwar state and adjacent territory in Rajputana, the reign which lies between the Ganges and Jumna and the Muttra district in the united provinces.) तथा उत्तरप्रदेश का मथुरा जिला इसमें सम्मिलित हों। जैसा कि कनिंघम निर्देशित करते हैं—इस ब्रह्मर्षि देश में, प्राचीन काल में वह सारा देश जो कि अलवर की अरावली पहाड़ियों और

लेखक

जमुना नदी के बीच में है, पश्चिम में मत्स्य, पूर्व में शूरसेन और दक्षिण व दक्षिणपूर्व में दक्षिणी सीमाओं से विभाजित था; उस समय मत्स्य देश अपने अन्दर वर्तमान अलवर को सम्पूर्णतः जयपुर और भरतपुर के कुछ हिस्सों सहित सम्मिलित करता था। वैराट् और माचारी भी दोनों मत्स्य देश ही में थे। (कनिंघम, रिपोर्ट, आर्कियाला०सर्वे आफ् इण्डिया, वाल्यूम् २०, पृ० २१)

आगे बतलाते हैं—पीछे मत्स्य देश 'विराट्' अथवा 'वैराट्' नाम से भी कहा जाने लगा। ह्वेनसांग उसे वैराट्

ही कहता था। कनिंघम उसी आधार पर चलते हुए बतलाते हैं—अतः इस प्रकार वैराट् में वर्तमान जयपुर रियासत का अधिक भाग सम्मिलित था, उसे हम अनुमानतः यों मान सकते हैं—उत्तर में झूँझनू (Jhunjun) से कोट कासिम ७० मील, पश्चिम में झूँझनू से अजमेर १२० मील, दक्षिण में अजमेर से बनारस और चम्बल के संगम तक १५० मील तथा पूर्व में संगम से कोट कासिम तक १५० मील सब मिलाकर ४९० मील था। (कनिंघम, एन्सिएन्ट ज्यॉग्राफी, पृ० ३४४–५)

(२) शिविदेश—(वही पृष्ठ ८३)—शिव अथवा शिवि लोग राजपूताने के दक्षिणी प्रदेश में भी आकर बसे थे अथवा उनकी एक व अधिक सन्तति वहाँ पहुँची। जातकों (यथा शिवि, सं० ४९९, उम्मादन्ती सं० ५२७ तथा वैस्सन्तर सं० ५४७) में शिवि राजा तथा उसके देश के दो नगर—अरिट्ठपुर तथा जितुत्तर (Jetuttara) का वर्णन आता है। श्री एन० एल० डे० (ज्यो० डिक्स; पृ० ८१) ने इस जेतुत्तर को चित्तौर ११ मील उत्तर में पड़नेवाले नागरी स्थान को बतलाया है। यह स्पष्टतः अलबेरूनी का जत्तररुर (Jahararur) मेवाड़ की राजधानी है। (अलबे. इण्डिया, १, पृ० २०२)

चित्तौर के पास शिवियों का इलाका था, यह और स्रोतों से भी प्रमाणित होता है बहुत से सिक्के जिन पर कि 'मज्झमिकाय शिविजनपदस्' (Majhamikaya-Sivijanpada's) अंकित है—नागरी के पास वाले स्थानों पर मिले हैं—जो कि यह संकेत करते हैं कि शिवियों का जनपद या आवास राजपूताना में चित्तौर के पास मध्यमिका में था।

(३) मालव देश—(वही पृ० ६२-६३)—परन्तु बहुत पहले वे दक्षिण (पंजाब से) की ओर बढ़ते गये। (Migrated southward) और कहीं राजपूताना में बसे। कोटा से ४५ मील उत्तर में नगर नामक स्थान से भारी संख्या में प्राप्त सिक्कों पर "मालवानां जय" अंकित है। राजपूताने में जयपुर के समीप नगर क्षेत्र में मालव अधिकार हुआ था यह उश्वदात (Usavadata) के अभिलेख से भी पुष्टित होता है। और भी—मालवों का अधिकार राजपूताने में जयपुर राज्य के दक्षिणी अंश, कोटा तथा झालावाड़ राज्यों पर जो मालवे से मिले हुए थे, रहा हो ऐसा अनुमान होता है। (देखो ओझा, राजपूताना का इतिहास पृ० १०८-९)

(४) गुजरात—ह्वेनसांग ने पश्चिमी भारत का द्वितीय राज्य-किउ-चे-लो, या गुर्जर बताया है जो कि गुजरात कहा जाने लगा। कनिंघम उस पर विचार करते हुए कहते हैं कि इस गुर्जर प्रान्त में वर्तमान बीकानेर, जैसलमेर तथा जोधपुर रियासतों के अधिकतर भाग का समावेश था। यथा लगभग अरब भूगोल-विदों के अनुसार भी वे बतलाते हैं कि उनसे वर्णित गुर्जर देश भी पश्चिमी राजपूताना से ही परिलक्षित हैं। (देखो विशेष अध्ययन के लिए, कनिंघम, एन्सिएण्ट ज्योग्राफी पृ० ३५७-३६३) यह शुद्धतया गुर्जर ही है और वर्तमानकाल के राजपूताना और मालवा के दक्षिणी भाग में जहाँ तक गुजराती भाषा का प्रचार है, यह स्थान माना गया है। (देखो, लैसन, इण्डि० एण्टी० भा० १, पृ० १३६, कोलब्रुक एसेज भाग २, पृ० ३१ नो; तथा राजतरंगिणी ५-१४४)

अतः वर्तमान राजपूताने में बौद्ध-धर्म का अध्ययन करने के हेतु हमें उपरोक्त विभागों को अपनी दृष्टि में रखना पड़ेगा और देखना पड़ेगा कि समय-समय पर इन विभागों में बौद्ध-धर्म का क्या महत्त्वपूर्ण अस्तित्व रहा है। सर्वप्रथम इस दृष्टि से हम भगवान् बुद्ध ही को लेते हैं।

बौद्ध-ग्रन्थों-विशेषतः त्रिपिटक व उसकी अट्ठकथाओं का अध्ययन हमें सूचित करता है कि भगवान् बुद्ध ने अपने जीवन के अन्तिम ४५ वर्ष 'मज्झिम मण्डल' मध्यप्रदेश में ही सत्योपदेश करते बिताये। उस समय का मध्यप्रदेश, विद्वानों की सम्मति व प्रमाणों के आधार पर कोसी और कुरुक्षेत्र तथा हिमांचल व विन्ध्याचल से आवेष्टित प्रदेश था। भगवान् इस सीमा से परे नहीं गये।

भगवान् स्वयं मथुरा नगर तक गये थे (अंगुत्तर निकाय, २, ५७; विमानवत्थु अट्ठकथा पृ० ११८-९) तथा मथुरा शताब्दियों तक बौद्ध-धर्म का केन्द्र रहा था। (इलियट, हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म वा. २, पृ० १५९) ऐसा इतिहासों के अध्ययन से प्रमाणित होता है तथापि वे स्वयं तात्कालिक राजपूताने के उक्त राज्यों में गये हों,

ऐसा नहीं दीखता। हाँ, भगवान् तथागत का धर्मोपदेश के लिए उत्तर पूर्वी भारत ही प्रमुख क्षेत्र था तथापि बौद्ध-ग्रथों से ऐसा लगता है कि वे उत्तरी भारत के स्थानों में भी पर्याप्त घूमे थे और कुरु देश भी उनके धार्मिक प्रवचनों से लाभान्वित हुआ था। (देखो अंगुत्तर निकाय, वॉ० ५, पृ० २९-३२; संयुक्त निकाय वॉ. २, पृ० ९२-९३ मज्झिमनिकाय, वॉ० पृ० २५३, वॉ० २, पृ० २६१ तथा पृ० ५४...; धम्मपदट्ठ कथा, वॉ० १ पृ० १९९-२०३ तथा दीघनिकाय, वॉ० २, पृ० ५३ तथा २९०...।

कम्मासदम्म नामक नगर, या कस्बा ही अधिकतर भगवान् के प्रवचनों का स्थान रहा है। ह्वेनसांग जो कि वि० सं० ६९७ [ई० सं० ६४०] के आसपास राजपूताने में आया—ने जिस पो-लि-ये-टो-लो-(=पर्यात्र) अर्थात् वैराट् का नाम लेता है और जो कि निस्संदेह राजपूताना में है, निम्नतः वर्णन करता है—इस राज्य का क्षेत्र-फल ३,००० ली और राजधानी का १४-१५ ली है। अन्य बातों के साथ वह उनके धर्म के विषय में लिखता है, 'मनुष्यों का आचरण दृढ़ व कठोर है, इनको विद्या से प्रेम नहीं है तथा धर्म भी बौद्ध नहीं है। यहाँ का राजा वैश जाति का था जो वीर,बली व बड़ा लड़ाकू था। कुल ८ संघाराम उजड़े पुजड़े हैं जिनमें थोड़े से, हीनयान सम्प्रदायि भिक्षु निवास करते हैं आदि। (देखो हुएन० का भ्रमण वृतान्त पृ० १८०)

अतः उक्त विवरण से विदित होता है कि राजपूताने के जयपुर (वैराट्) या उसके आस पास के भाग में हीनयान (बौद्ध) सम्प्रदाय का समागम, जो कि उस समय पतनावस्था में था अवश्य था, और वहाँ ८ टूटे फूटे संघाराम (बौद्ध मठ) भी थे। श्री कनिंघम चीनी यात्री के उक्त वर्णन से ऐसा सार निकालते हैं कि आठों मठों में प्रतिमठ ५० बौद्ध साधु के हिसाब से लगभग ४०० भिक्षु थे, और उनकी भिक्षावृत्ति की निर्भरता के हिसाब से लगभग १२०० बौद्ध परिवार थे। इस प्रकार लगभग ६,००० बौद्ध-गृहस्थ व ४०० भिक्षु थे। (देखो कनि० एन्सि० ज्यो०, पृ० ३९३ [संस्करण १९२४]

राजपूताने में अवस्थित जयपुर राज्य के इस वैराट् नामक प्राचीन नगर में चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक के लेख भी मिले हैं।

राजपूताने के शिवि देशान्तर्गत भी जैसा कि जातक कथाओं से विदित होता है, बौद्ध धर्म का प्रवेश था।

इसी प्रकार नागवंशियों का भी कुछ-न-कुछ अधिकार पुराने समय में था। नागोर (नागपुर, जोधपुर राज्य) जिसको अहिच्छत्रपुर भी कहते थे, नागों का वहाँ अधिकार होना प्रगट करता है। कोटाराज्य में शेरगढ़ कस्बे के दरवाजे के पास एक शिलालेख वि० सं० ८४७ माघ सुदी ६ (ई० स० ७९१ ता० १५ जनवरी) का लगा हुआ है जिसमें नीचे लिखे हमें नागवंशियों के चार नाम क्रमशः मिलते हैं—

बिन्दुनाग, पद्मनाग, सर्वनाग और देवदत्त। सर्वनाग की रानी का नाम (श्री देवी) था। देवदत्त वि० सं० ८४७ (ई० स० ७९१) में विद्यमान था। उसने वहाँ कौशवर्द्धन पर्वत के पूर्व में एक बौद्ध मन्दिर व मठ बनवाया था, जिससे अनुमान होता है कि वह बौद्ध धर्मावलम्बी था और उस समय तक राजपूताने में बौद्ध मत का अस्तित्व किसी प्रकार बना हुआ था। (देखो ओझा, राज० का इतिहास, प्रथम जिल्द, पृ० २६३।)

मालव देशान्तर्गत भी जैसा कि पहले लिखा गया है, राजपूताने का पर्याप्त हिस्सा था। यात्री हुएनसांग के अनुसार मालव देश की क्या धार्मिक स्थिति थी वह हम उसके शब्दों में ही पढ़ते हैं—"भारत के दो ही देश विद्वत्ता के लिए अधिक प्रसिद्ध हैं, दक्षिण पश्चिम में मालवा और उत्तर पूर्व में मगध। इस देश में लोग धर्म और सदाचार की ओर विशेष लक्ष्य रखते हैं। ये लोग स्वभाव से ही बुद्धिमान और विद्याव्यसनी हैं तथा जिस प्रकार विरुद्ध मत का अनुसरण करनेवाले लोग हैं उसी प्रकार सत्यधर्म (बौद्ध) के भी अनुयायी अनेक हैं और सब लोग परस्पर मिल-जुलकर निवास करते हैं। कोई १०० संघाराम हैं जिनमें २००० साधु निवास करते हैं, ये लोग सम्मतीय संस्थानुसार हीनयान सम्प्रदाय का अनुमान करते हैं।......" आगे यहाँ के शिलादित्य नामक एक महान बौद्ध नरेश का भी विशद वर्णन है, जिसने अपने भवन के निकट ही एक विहार बनवाया था जिसके बनवाने में कारीगर की सम्पूर्ण बुद्धि खर्च हो गई थी तथा सब प्रकार की वस्तुओं से वह सजाया गया.

था। इसमें संसाराधिपति सातों बुद्धों की प्रतिमाएँ स्थापित की गई थीं। प्रत्येक वर्ष वह 'मोक्ष महापरिषद्' नाम की सभा एकत्र करता था जिसमें चारों दिशाओं के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध महात्मा बुलाये जाते थे। उन लोगों को धार्मिक दान के स्वरूप में चारों प्रकार की वस्तुओं और उनके धार्मिक कृत्यों में काम आने योग्य तीनों प्रकार के वस्त्र भी राजा प्रदान करता था। इसके अतिरिक्त बहुमूल्य सप्त धातु और अद्भुत प्रकार के रत्न आदि भी वह उनको देता था। यह पुण्य कार्य उस समय से अब तक चला आता है।

आगे और भी बतलाता है—यह राजा आज से साठ वर्ष पूर्व इस देश में हुआ था। यह बड़ा ही विद्वान् और बुद्धिमान् था। विशुद्ध शास्त्रीय ज्ञान के लिए इसकी बड़ी ख्याति थी। यह जिस प्रकार की सृष्टि की रक्षा और पालन करता था उसी प्रकार तीनों रत्नों (बुद्ध, धर्म, संघ) का भी हार्दिक भक्त था। जन्म समय से लेकर मरण-पर्यन्त उसके मुख पर कभी भी क्रोध की झलक दिखलाई न पड़ी और न उसके हाथ से कभी किसी प्राणी को कुछ कष्ट ही पहुँचा। यहाँ तक कि घोड़ों व हाथियों को भी जल छानकर पिलाया जाता था ताकि पानी के भीतर के किसी जन्तु को कुछ क्लेश न पहुँचे। उसके प्रेम और उसकी दया का यह हाल था। उसके पचास वर्ष से अधिक के शासनकाल में जंगली पशु तक मनुष्यों के मित्र हो गये थे, कोई भी आदमी न उनको मार सकता था और न किसी प्रकार का कष्ट पहुँचा सकता था।

अतः मालव देश में यात्री के समय तक बौद्ध-धर्म का बाहुल्य था जिससे कि राजपूताना के सम्बन्धित क्षेत्र भी वंचित नहीं थे।

शमन ह्वी-ली लिखित "चीनी यात्री सुयेन च्वाँग, जीवन वृत्तान्त और भारत यात्रा", में भी शिलादित्य और आचार्य सुयेन च्वाँग का लम्बा चौड़ा और मनोरंजक वर्णन है। देखो, वही शारदा प्रेस, प्रयाग, पृ० १७३-१८२ तथा मालव पर पृ० १४९-५०।

इसी प्रकार गुर्जर देश (गुजरात) के विषय में भी हम यात्री की साक्षी का अवलोकन करते हैं—"इस राजधानी का क्षेत्रफल ५००० ली और राजधानी जिसका नाम पि-लो-मो लो है (राजपूताना का 'बाड़मेर' नामक स्थान जहाँ से काठियावाड़ की अनेक जातियों के जाने का पता चलता है, देखो, हुएनसाँग का भ्रमण वृत्तान्त, पृ० ६३३; श्री ओझा इसी को 'भीनमाल लिखते हैं, राज० का इतिहास, प्रथम जिल्द, पृ० ११), लगभग ३० ली के घेरे में है। भूमि की उपज और मनुष्यों का चलन व्यवहार सुराष्ट्र वालों से बहुत मिलता जुलता है। आबादी घनी तथा निवासी धनी और सब प्रकार की सम्पत्ति से सम्पन्न हैं।

अधिकतर लोग अन्य धर्मावलम्बी हैं, केवल थोड़े से ऐसे हैं जो बुद्धधर्म का मनन करते हैं। एक संघाराम है जिसमें १०० सन्यासी सबके सब सर्वास्ति वाद संस्था के हीनयान सम्प्रदायी हैं।......राजा जाति का क्षत्रिय है। इसकी अवस्था २० साल की है तथा बड़ा साहसी और बुद्धिमान है। बुद्धधर्म में उसकी भक्ति बहुत है तथा योग्य महात्माओं की बड़ी प्रतिष्ठा करता है।

सुलेमान सौदागर जो कि सन् ईसवी नवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अवश्य ही सन् ८५१ ई० से पहले ही यहाँ आया था, वह भी इस गुर्जर देश का वर्णन करता है। "सुलैमान सौदागर का यात्रा विवरण" नामक पुस्तक के पृ० ५२ टिप्पणी १ में लिखा है—जुरुज़ या जुज़र पाठ अरबी पुस्तकों में मिलता है। यह नाम प्राचीन गुजरात (गुर्जर, गुर्जरत्रा) देश का सूचक है। इस समय गुजरात से राजपूताने के दक्षिण के उक्त नाम के देश का ग्रहण किया जाता है पहले मारवाड़ के उत्तरी विभाग से लगाकर लाट देश की उत्तरी सीमा तक का सारा देश गुर्जर देश कहलाता था। (देखो, वही काशी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।)

राजपूताने में बौद्धधर्म की अवधि

महामहोपाध्याय रा० ब० स्व० गौरीशंकर हीराचन्द्र जी ओझा ने अपने 'राजपूताने का इतिहास, प्रथम जिल्द, पृष्ठ १०–११ पर, यहाँ के निवासियों का 'धर्म' बतलाते हुए लिखा है—महाभारत के युद्ध से पूर्व और बहुत पीछे तक भी भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों के समान राज-

पूताने में भी वैदिक धर्म का प्रचार था। वैदिक धर्म में यज्ञ ही मुख्य था और राजा लोग बहुधा अश्वमेध यज्ञ आदि किया करते थे। यज्ञों में जीवहिंसा होती थी और मांस भक्षण का प्रचार भी बढ़ा हुआ था। जीव-दया का प्रचार करनेवाले भी समय-समय पर हुए किन्तु उनका लोगों पर विशेष प्रभाव न पड़ा। वि० सं० के पूर्व की पाँचवीं शताब्दी में मगध के राजा अजातशत्रु के समय गौतम-बुद्ध ने बौद्ध-धर्म और उसी समय महावीर स्वामी ने जैन-धर्म के प्रचार को बढ़ाने का बीड़ा उठाया। इन दोनों धर्मों के सिद्धान्तों में जीव-दया मुख्य थी और वैदिक वर्णाश्रम को तोड़, साधर्म्य अर्थात् उस धर्म के समस्त अनुयायी एक श्रेणी के गिने जावें, ऐसी व्यवस्था की गई जिसमें ऊँच नीच का भाव न रहा।

गौतम ने जीवमात्र की भलाई के विचार से अपने सिद्धान्तों का प्रचार बड़े उत्साह के साथ किया। उनकी जीवित दशा में ही अनेक ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा अन्य वर्ग के लोगों ने उक्त धर्म को स्वीकार किया और दिन-दिन उसकी उन्नति होती गई। मौर्य-वंशी राजा अशोक ने कलिंग युद्ध में लाखों मनुष्यों का संहार किया, जिससे पीछे उसकी बौद्ध धर्म की ओर रुचि बढ़ी। उसने उस धर्म को स्वीकार कर उसे बड़ी उन्नति दी। अपने विस्तृत राज्य में यज्ञों का होना बन्द कर दिया और हिंसा को भी बहुत कुछ रोका।

राजपूताने में भी उसी के समय से बौद्ध-धर्म का प्रचार बढ़ा। बौद्ध-धर्म के सामने वैदिक धर्म की सुदृढ़ नींव हिलने लगी, तो ब्राह्मण लोग अपने धर्म को फिर से उन्नत करने का प्रयत्न करने लगे। मौर्य वंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ को मारकर उसका शुंगवंशी सेनापति पुष्यमित्र मौर्य साम्राज्य का स्वामी बना। उसने फिर वैदिक धर्म का पक्ष ग्रहण कर दो अश्वमेध यज्ञ किये! उसने बौद्धों पर अत्याचार भी किया, ऐसा बौद्ध ग्रन्थों में पाया जाता है। राजपूताने में मध्यमिका नगरी (चित्तौड़ के प्रसिद्ध किले से ७ मील उत्तर) के राजा सर्वतात ने (जो सम्भवतः शुंगवंशी था) भी वि० सं० पूर्व की दूसरी शताब्दी के आस पास अश्वमेध यज्ञ किया जिसके पीछे राजपूताने में प्राचीन शैली से अश्वमेध करने का कोई उदाहरण नहीं मिलता। गुप्तों के राज्य के आरम्भ तक बौद्ध-धर्म की उन्नति होती रही फिर समुद्रगुप्त ने बहुत समय से न होने वाला अश्वमेध यज्ञ किया। गुप्तों के समय से ही बौद्ध-धर्म का पतन और वैदिक धर्म का पुनरुत्थान होने लगा।

आगे हुएन-सांग द्वारा कहा गया गुर्जर देश की राजधानी भीनमाल व वैराट् नगर का वर्णन है जो कि पाठकों के समक्ष पूर्व ही रखा जा चुका है। आगे ओझा जी लिखते हैं—

राजपूताने से वि. सं. की नवींशताब्दी के आस-पास बौद्ध-धर्म का नामनिशान भी उठ गया और जो लोग बौद्ध हो गये थे वे समय समय पर फिर वैदिक धर्म ग्रहण करते रहे। वे अपनी टिप्पणी में भी बताते हैं—बौद्ध धर्म की उन्नति के समय में करोड़ों वैदिक मतावलम्बी (हिन्दू) बौद्ध हो गये थे, परन्तु उक्त धर्म की अवनति के समय वे फिर हिन्दू धर्म को ग्रहण करते गये। उन्होंने पुनः आगे लिखा है (पृ० १३) बौद्ध व जैन धर्मों के प्रचार से वैदिक धर्म को बड़ी हानि पहुँची, इतना ही नहीं, किन्तु उसमें परिवर्तन करना पड़ा और वह एक नये साँचे में ढलकर "पौराणिक धर्म" बन गया, उसमें बौद्ध और जैनों से मिलती जुलती धर्म-सम्बन्धी बहुत सी नई बातें घुस गईं, इतना ही नहीं, किन्तु बुद्धदेव, आदिनाथ (ऋषभदेव) की गणना विष्णु के अवतारों में हुई और मांस-भक्षण का भी बहुत कुछ निषेध किया गया।

राजपूताने में मौर्यवंश

चन्द्रगुप्त मौर्य-वंश के प्रतापी राज्य का संस्थापक हुआ और नंद वंश का राज्य छीनकर वि० सं० से २६४ वर्ष पूर्व (ई० सं० से ३२१ वर्ष पूर्व) पाटलिपुत्र (पटना, बिहार) के राज्य सिंहासन पर बैठा। उसने क्रमशः सिन्धु से गंगा के मुख तक और हिमालय से विंध्याचल के दक्षिण तक के देश अर्थात् सारा उत्तरी हिन्दुस्तान अपने अधीन किया जिससे राजपूताना भी उसके राज्य के अन्तर्गत रहा, (पृ० ९८-९९)।

चन्द्रगुप्त का २४ वर्ष राज्य करना पुराणों से पाया जाता है। उसने अपने राज्याभिषेक के वर्ष से "मौर्य सम्वत्" भी चलाया था।

बिन्दुसार ने अपने पिता के राज्य को ज्यों का त्यों कायम रखा, उसने २५ वर्ष राज्य किया। बिन्दुसार का उत्तराधिकारी उसका पुत्र 'अशोक महान्' के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है। वह महान् प्रतापी और बौद्ध धर्म का प्रबलतम व आदर्श सम्राट् हुआ। उसने भारत की अखण्डता को और भी विशद व सुदृढ़ बना दिया। सारे देश में उसकी धर्माज्ञा चट्टानों तथा पाषाण के विशाल स्तम्भों पर मिलती हैं जिनमें एक राजपूताना की वैराट् नगरी में भी मिली है। पुराणों में बताया गया है कि अशोक ने ३६ वर्ष राज्य किया।

उसके बाद कुणाल, दशरथ, सम्प्रति आदि ने राज्य किया जो कि अधिक महत्वशाली नहीं हुए। पुराणों के अनुसार दशरथ के पीछे पाटलिपुत्र की गद्दी पर संगत (इन्द्रपालित), सोमशर्मा (दैववर्मा), शतधन्वा (शतधर) और बृहद्रथ राजा हुए। बृहद्रथ के सेनापति शुंगवंशी पुष्यमित्र ने उसे मार कर उसका राज्य छीन लिया।

राजपूताने में विक्रम की आठवीं शताब्दी तक मौर्यों का कुछ कुछ अधिकार रहने का पता चलता है।

चित्तौड़ का किला मौर्य राजा चित्रांग (चित्रांगद) का बनवाया हुआ है, ऐसा प्रसिद्ध है और जैन ग्रन्थों में भी लिखा मिलता है।

तत्र चित्रांगदश्चक्रे दुर्गं चित्रनगोपरि ।१०।
नगरं चित्रकूटाख्यं देवेनतदधिष्ठितम्...।११।

कुमारपाल प्रबन्ध, पत्र ३०।२।

कोटा के निकट कणसवा (कण्वाश्रम) के शिवालय में एक शिलालेख मालव (विक्रमी सं० ७९५ ई० सन् ७३८) का लगा हुआ है, जिसमें मौर्यवंशी राजा धवल का नाम है। उसके पीछे राजपूताने के मौर्यों का कुछ भी वृत्तान्त नहीं मिलता।

अतः ऐसे महान् प्रतापी बौद्ध-सम्राटों के अधीन राजपूताना में बौद्धधर्म अवश्य ही खूब बढ़ा-चढ़ा था परन्तु समय की गति और ब्राह्मण धर्म की उसके प्रति निरन्तर कटुता, अत्याचार व स्वयं की भी प्रमादप्रियता के कारण वह शनैः शनैः लोप होता चला गया जिस प्रकार कि मौर्यों को बौद्ध धर्मावलम्बी होने के कारण ब्राह्मणों ने बदनाम किया, यथा मुद्राराक्षस के टीकाकार ढुंढिराज ने शक संवत् १६३५ (वि० सं० १७७० ई० स० १७१३) में शायद विशाखदत्त के 'वृषल' शब्द के आधार पर या किसी प्रचलित दन्तकथा के अनुसार नहीं तो अपनी कल्पना के आधार पर, अपनी टीका में यह लिख दिया--

"नन्दवंश के अन्तिम राजा सर्वार्थसिद्धि (नन्द) की वृषल (शूद्र) जाति की मुरा नामक रानी से चन्द्रगुप्त उत्पन्न हुआ जो अपनी माता के नाम से "मौर्य" कहलाया।

कल्यादौ नन्दनामानः केचिदासन्महीभुजः ॥२३॥
सर्वार्थसिद्धि नामासीत्तेषु विख्यात पौरुष...॥२४॥
राज्ञः पत्नी सुनन्दासीज्येष्ठान्या वृषलात्मजा ।
मुराख्या सा प्रिया भर्तुः शीललावण्यसम्पदा ॥२५॥
मुराप्रसूतं तनयं मौर्याख्यं गुणाकरं ।...॥३१॥
—मुद्राराक्षस की टीका का उपोद्‌घात, पृ० ४ ।

उसके लिए स्वयं ओझा जी लिखते हैं—'चन्द्रगुप्त का नन्दवंश के साथ न तो कोई सम्बन्ध ही था और न वह मुरा नाम की शूद्रा स्त्री से उत्पन्न हुआ था। वह तो हिमालय के निकट के एक प्रदेश का जो मोर पक्षियों के अधिकता के कारण मौर्य राज्य कहलाता था, उच्च कुल का क्षत्रिय कुमार था जैसा कि बौद्ध ग्रंथों से पाया जाता है। मौर्य वंश नन्दवंश की अपेक्षा प्राचीन था क्योंकि ई० स० पूर्व ४७७ (वि० सं० पूर्व ४२०) में जब बुद्धदेव का निर्वाण हुआ तो उनकी अस्थियों का भाग लेने में अन्य क्षत्रियों के समान पिप्पलिवन के मौर्य क्षत्रियों ने भी दावा किया था। बौद्ध लेखक मौर्यों का उसी (सूर्य) वंश में होना बतलाते हैं जिसमें भगवान् बुद्धदेव का जन्म हुआ था। ऐसे ही जैन लेखक भी उनका सूर्यवंशी क्षत्रिय होना मानते हैं।

मौर्य राजा अशोक के समय बौद्ध धर्म का प्रचार भारत में बहुत बढ़ गया, जिससे ब्राह्मणों का मत निर्बल होता जाता था, अतएव धर्म-द्वेष के कारण महापद्म के शूद्रा स्त्री से उत्पन्न होने और मौर्यों के बौद्ध धर्म को अंगीकार कर लेने से ब्राह्मणों ने ऐसा लिख दिया हो कि नन्द-वंश के राजा शूद्र प्रायः अधर्मी होंगे। बौद्ध धर्म ग्रहण

के कारण और भी क्षत्रिय वर्णों को ब्राह्मणों ने शूद्र लिखा ऐसा अनेक स्थानों पर है—

(१) मध्य एशिया में बौद्ध-धर्म का प्राबल्य था और हूणों ने भी उसे स्वीकार कर लिया जिससे ब्राह्मण लेखकों ने धर्म-द्वेष के कारण मध्य एशिया की अन्य जातियों के समान उनकी गणना भी म्लेच्छों में की।

(२) इन शकों के समय के शिलालेख एवं सिक्कों पर के चिह्नों आदि से पाया जाता है कि उनमें से बौद्ध धर्म के अनुयायी थे⋯⋯आजकल जैसा ब्राह्मण धर्म और जैन धर्म के बीच-वर्ताव है, वैसा ही जनता में उस समय वैदिक और बौद्ध धर्म वालों के बीच था।

(३) पुराणों के कथन से स्पष्ट है कि शक आदि जातियाँ क्षत्रिय थीं और राजा सगर के समय में भी वे विद्यमान् थीं। पीछे के बौद्ध-धर्म स्वीकार करने पर वैदिक मतवालों ने उनकी गणना म्लेच्छों में कर ली। भारतवर्ष में जब बौद्ध-धर्म की प्रबलता हुई उस समय ब्राह्मण आदि अनेक लोग बौद्ध हो गये तो उनकी भी गणना धर्मद्वेष के कारण ब्राह्मणों ने अपनी स्मृतियों में शूद्रों में कर दी। इतना ही नहीं, किन्तु अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुराष्ट्र, मगध आदि बौद्ध-प्रायः देशों में यात्रा के अतिरिक्त जाने पर पुनः संस्कार करने का विधान तक किया था।

(४) 'मनुस्मृति' में लिखा है—पौंड्रक, चोड़, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पल्हव, चीन, किरात दरद और खश ये सब क्षत्रिय जातियाँ थीं, परन्तु शनैः शनैः क्रियालोप होने से वृषल (विधर्मी, धर्मभ्रष्ट) हो गईं। इस कथन का अभिप्राय यह है कि वैदिक धर्म को छोड़ कर अन्य (बौद्ध आदि) धर्मों के अनुयायी हो जाने के कारण वैदिक धर्म के आचार्यों ने उनकी गणना विधर्मियों (धर्म-भ्रष्टों) में की।

> शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च विशांपते।
> कोलिसर्पा समहिषा दार्वाश्चोलाः सकेरला ॥१८॥
> सर्वे ते क्षत्रियास्तात धर्मस्तेषां निराकृतः।
> वशिष्ट वचनाद्राजन्सगरेण महात्मना ॥१९ अध्या०॥

अर्थात् कोलि, सर्प, महिष, दरद, चोल, केरल व अन्य सब क्षत्रिय जातियाँ थीं परन्तु वे वशिष्ट वचन से राजा सगर के द्वारा धर्म-भ्रष्ट कर दी गईं। यह धर्मद्वेष ही है कि इन जातियों के बौद्ध होने के कारण, उन्हें ऐसा ब्राह्मणों द्वारा माना गया है।

राजपूताना—वैशवंश

वैशवंशी राजघराने का राजा भी राजपूताने में हुआ था। सम्राट हर्षवर्धन इस वंश का महान प्रतापी नरेश था। वह बौद्ध धर्मावलम्बी था। चीनी यात्री हुएनसांग जो इस प्रतापी राजा के साथ था, लिखता है कि हर्षवर्धन ने अपने भाई के शत्रुओं को दंड देने तथा आस पास के सब देशों को अपने अधीन करने के समय तक दाहिने हाथ से भोजन न करने का प्रण किया था। ५००० हाथी, २०,००० सवार और ५०,००० पैदल सेना सहित उसने निरन्तर युद्ध किया और पूर्व से पश्चिम तक अपनी अधीनता स्वीकार न करने वाले सब राजाओं को जीत कर ६ वर्ष में हिन्दुस्तान (नर्मदा से उत्तर के सारे देश) के पाँचों प्रदेशों (पंजाब, सिन्ध मध्य प्रदेश, बंगाल, गुजरात व राजपूताना आदि) को अपने अधीन किया।

वि० सं० ६६४ (ई० सं० ६०७) में हर्षवर्धन का राज्याभिषेक हुआ था। उस समय से उसने अपने नाम का सम्वत् चलाया जो हर्ष या श्री हर्ष सम्वत् नाम से प्रसिद्ध हुआ और अनुमानतः ३०० वर्ष तक चलकर अस्त हो गया। राजपूताने में हर्ष सम्वत् वाले शिलालेख मिले हैं।

भरतपुर राज्य के कोट नामक गाँव से मिले हुए एक कुटिलाक्षरवाले शिलालेख में जो इस समय भरतपुर की राजकीय लाइब्रेरी (पुस्तकालय) में रखा हुआ है सम्वत् ४८ दिया है। लिपि के आधार पर सम्वत् भी हर्ष सम्वत् ही हो सकता है। (राज० म्यूजियम, अजमेर की ई० स० १९१६–१७ की रिपोर्ट पृ० २, लेख संख्या १)

इसी प्रकार तसई गाँव (अलवर) के शिवालय के प्रशस्ति के नीचे का अंश तथा उदयपुर के विक्टोरिया हाल के म्यूजियम में राजा धवलप्पदेव के शिलालेख के अध्ययन से भी हर्ष सम्वत् का पता चलता है।

कहा जाता है, हर्ष-वर्द्धन पहले शिव का भक्त था परन्तु बौद्धधर्म की तरफ श्रद्धा अधिक होने के कारण बाद में वह बौद्ध हो गया।

"राजपूताने में बौद्धधर्म के अध्ययन को और भी पूरा करने के लिए जो दो एक लेख श्री अगरचन्द्र भँवरलाल नाहटा—बीकानेर ने 'धर्मदूत' के गताङ्कों में "राजपूताने में बौद्ध वस्तुयें" शीर्षक से दिये हैं, पढ़ना उपादेय है। उन्होंने राजपूताने के बीकानेर, चुरु, पिलानी तथा जोधपुर आदि में जो कतिपय बौद्ध ग्रन्थों की प्रतियाँ, बौद्ध मूर्तियाँ, पट्ट एवं मंजूषिकायें अवलोकन की हैं, उनका उल्लेख किया है, देखो, वही अङ्क ९ व १०, वर्ष ९, १९४५.

उपसंहार

हमने ऊपर जो विशद उद्धरण व विवेचन अनेकानेक इतिहासकारों तथा ग्रन्थों से दिये हैं—उनका महत् कारण यही है ताकि पाठकगण उस राजपूताने के विषय में जिसका कि इतिहास, धर्म, संकृति व पुरातत्त्व आज लुप्तप्राय सा है—की कुछ झलक देखी जा सके और आगे भी इस विषय में खोज-बीन होती रहे। इतिहास के शोधक इस ओर ध्यान देंगे—

इसीलिए हमने सर्वप्रथम वर्तमान राजपूताना, जिस प्रकार पूर्व समय में विभिन्न प्रान्तों में बँटा हुआ था, उसका सप्रमाण विश्लेषण दिया है; तत्पश्चात् उन उन प्रान्तों में बौद्ध-धर्म की क्या अवस्था रही, यह बतलाया गया है। इसके लिए हमें मुख्यतः चीनी यात्री हुएनसांग आदि का ही आधार प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार समय-समय पर जिन बौद्ध-वंशों और नरेशों का साम्राज्य राजपूताना पर हुआ है, उसका भी अवलोकन किया है।

भारत में बौद्ध-धर्म लोप होने का जो कारण था वही लगभग राजपूताने के लिए भी लागू है—इसके विशेष कारण यथास्थल दिये हुए हैं।

अब हम थोड़ा प्रकाश अजमेर-समीप 'पुष्कर' क्षेत्र है, उस पर भी डालेंगे। यह स्थान हिन्दुओं का पवित्रतम तीर्थ माना जाता है और इसीलिए 'तीर्थराज' तथा 'तीर्थ-गुरु' कहलाता है। प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ला एकादशी से पूर्णिमातक पुष्कर में एक विशाल पर्व-स्नान का मेला लगता है, जिसमें दूर-दूर के स्थानों व आस-पास की बस्तियों के हजारों यात्री— विशेष कर देहातों के स्त्री-पुरुष जमा होते हैं।

यह स्थान अजमेर से ७ मील की दूरी पर उत्तर पश्चिम में सुन्दर और हरी-भरी पहाड़ियों के बीच बसा एक पुराने ढंग का छोटा कस्बा है। अजमेर और पुष्कर के बीच भी एक पहाड़ी है। पहाड़ी पर सुन्दर पक्की सड़क है जो सर्पाकार घूमती हुई पहाड़ी पर चढ़ती है और उसी तरह परले पार उतर जाती है। यात्रा का दृश्य बड़ा मनोहर और नयनाभिराम है। सुन्दर जंगलों, पहाड़ियों व मयूरोंवाला यह देश पुष्कर अपनी तीर्थ गुरुता के अलावा भी देखने लायक स्थान है। इसके दक्षिण में यज्ञ पर्वत (नाग पहाड़) २९०६ फीट की ऊँचाई का है। अजमेर को राह से पुष्कर पहुँचने से पहले जो पहाड़ी है उसे 'अडूम्बा-धडूम्बा' का पर्वत कहते हैं और इसकी ऊँचाई २३४४ फीट है। यह पर्वत अन्दर से खोखला बतलाते हैं। पर्वत के पास से सड़क पर गुजरनेवाली सवारियाँ जोर से कोई आवाज करती हैं तो पहाड़ से उसका प्रत्युत्तर आता है। पुष्कर के एक ओर रत्नगिरि पर्वत २३८८ फीट की ऊँचाई का है। एक ओर 'काली माता की डूँगरी १९५४ फीट की ऊँचाई वाली है। इस तरह सब तरफ से पहाड़ियों से घिरा हुआ पुष्कर बहुत रमणीक स्थान है।

घाटों की भरमार

पुष्कर में एक 'छोटी बस्ती' कहलाती है। इन दोनों बस्तियों के निवासियों का आपस में कटुता व द्वेषभाव बहुत समय से चला आता है, जो समय-समय पर भीषण संघर्ष का रूप धारण कर लेता है। इस फिरकेबाजी को मिटाने के लिए सरकार की ओर से भी बहुत प्रयत्न हुए पर कोई विशेष सफलता नहीं मिली । पुष्कर झील के तीन तरफ बने पक्के घाट पर मन्दिर हैं। घाटों में—पूर्व की ओर जयपुर, किशनगढ़ तथा ग्वालियर के घाट, सूर्य, चन्द्र, शिव तथा वंशी घाट तथा पश्चिम में ब्रह्मघाट, परशुराम घाट, करनी घाट, व चौड़ी पैड़ी हैं तथा उत्तर में बाराह, नृसिंह, विश्राम, बद्री, गणगौर, राम, जनाना, गऊ (गाँधी) भरतपुर, यज्ञ बूदी व गुजराती घाट हैं तथा दक्षिण में कोटा, स्वरूप, जोधपुर, सप्तऋषि एवं रूपवीर्य घाट विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्राचीन मन्दिरों में ब्रह्मा जी, बाराह जी, बहानाथ जी का मन्दिर तथा नव निर्मितों में रमा, वैकुण्ठनाथ का, रंग जी का, महादेव का तथा नृसिंह जी का मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है। ब्रह्मा जी का मन्दिर सारे भारत में केवल यही है।

इसके अलावा पुष्कर के समीप ही 'पंच कुण्ड' तथा कुछ दूरी पर 'बड़ा पुष्कर, मध्य पुष्कर व कनिष्ठ पुष्कर आदि स्थान हैं तथा पापमोचनी अगस्त्य ऋषि का स्थान व वैजनाथ आदि सुन्दर प्राकृतिक स्थान हैं। इन स्थानों में जो बरसात (सितम्बर) के मौसम में मेले भरते हैं, इन अन्य पुष्करों में सरला में कई बार मंगला-चतुर्थी के दिन हजारों की संख्या में यात्री नहाते हैं।

इसके अलावा जिस तरह पुष्कर में मन्दिर व घाटों की बहुतायत है उसी तरह अनेक धर्मशालायें भी हैं। कस्बे के प्रारम्भ में सूर्य धर्मशाला (सूरजमल बसन्ती राम अजमेर वालों की) तथा श्री कृष्ण धर्मशाला (बालूराम लोदूराम ब्यावर वालों की) हाल ही में बहुत सुन्दर बनी है।

पुष्कर में एक जैन मन्दिर भी बहुत सुन्दर बना है तथा बौद्ध धर्म से भी इसका कुछ सम्बन्ध पाया जाता है। (देखो, नवभारत टाइम्स दिल्ली २५ नवम्बर १९५०, पृ० ६) परन्तु इसमें लेखक ने यह नहीं बताया है कि बौद्ध धर्म का इस मन्दिर से क्या सम्बन्ध पाया जाता है।

आपने देखा राजपूताना ही नहीं, सारे भारत में "पुष्कर" का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है, वहाँ सारी ही धर्मप्रिय जातियों के मंदिर तथा विश्राम-वास (धर्मशालायें) हैं। क्योंकि प्रत्येक समाज के असंख्य स्त्री-पुरुष हर वर्ष मेले में जाते हैं—तो वे अपने उन स्थानों पर ठहरते व खाते-पीते हैं।

इधर कोलिय समाज के हजारों भाई-बहिन वहाँ पहुँचते हैं, परन्तु अभी तक इनका वहाँ कोई ऐसा स्थान नहीं जिस पर कि ये लोग ठहरते रहें। इस कमी को मानते हुए और उधर पुष्कर के भावी महत्व को और भी देखते हुए अजमेरस्थ कोली-समाज ने श्री कोली-राजपूत हितकारिणी सभा की ट्रस्टीशिप में एक महत्वपूर्ण व सुन्दर स्थान 'पुष्कर हैलोज रोड' पर लिया है जो कि लगभग १½ बीघा मात्र है। सभा का विचार है कि वहाँ, बुद्ध-विद्या-मंदिर एक रेजिडेन्सिएल हाई स्कूल तथा एक बौद्ध-साहित्य-केन्द्र के रूप में बनवाया जाय। आवश्यकतानुसार अधिक जमीन प्राप्त (acquire) की जाय। उनकी हार्दिक इच्छा है कि यह 'बुद्ध-विद्या-मन्दिर' एक अन्तर्राष्ट्रीय पाये पर स्थिर किया जाय जिसमें कि देश-विदेश के विद्वान् यहाँ आकर भगवान् के पुण्य दर्शन व साहित्य का अमर रस पान कर सकें। पुष्कर में आने वाली हजारों हिन्दू जनता भी भगवान् बुद्ध व उनके दर्शनों को आने वाले देश विदेशों के महान् यात्रियों के दर्शन के लिए प्रतिवर्ष लालायित रहे। यदि ऐसा होता है, तो राजपूताना भर भगवान् बुद्ध के अमर-सन्देश से पुनः चेतना प्राप्त कर लेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

जैसा कि ऊपर वर्णित है—यहाँ की छोटी बस्तीवाले पडों में सदैव तीव्र फसाद रहता है—उस फसाद की शिकार स्थानीय कोलि-संस्था भी हो चुकी है। इस जमीन पर प्रारम्भ में ही केस चला और वह कोई तीन-साढ़े-तीन वर्ष में निर्णीत हुआ। तब कहीं स्थान की रजिस्ट्री प्राप्त हुई। अब पुनः इसी जमीन के अंशों पर वहाँ के यही लोग अपना अधिकार जता रहे हैं, यहाँ तक कि उस पर जबरदस्ती निर्माण भी करने को तैयार हैं। यहाँ की म्यूनिसपेल्टी जो कि अभी-अभी बनी है, उसमें भी ऐसे ही लोगों का बहुमत है, सम्भव है, ऐसे लोग कमेटी को प्रारम्भ से ही बदनामी की ओर ले जायँ।

दूसरे स्थानीय कोलिय जनता एक शांतिप्रिय श्रमिक वर्ग है, वह इतनी धनी नहीं कि इतने बड़े कार्य को शीघ्र पूरा करा सके तथापि उसने वहाँ एक 'जलकूप' और कुछ अंश में चौहद्दी का प्रयास किया है परन्तु वह इन लोगों की दखलन्दाजी के कारण अधूरी पड़ी है।

दिनांक ५ मई १९४७ ई० को बुद्ध-विद्या-मन्दिर, पुष्कर, की पवित्र वसुन्धरा का उद्घाटन संस्कार, त्रिपिटकाचार्य भिक्षुवर धर्मरक्षित जी द्वारा सम्पन्न हुआ था तथा उसका शिलान्यास संस्कार जो कि समाज-शिरोमणि भाऊ साहब राजाराम जी राऊत, बम्बई द्वारा आलेखित है, उनकी दैवात् अनुपस्थिति के कारण भिक्षुवर के कर-कमलों द्वारा ही सम्पन्न हुआ था।

अतः बौद्ध-जगत् के समस्त दानी-मानी महानुभाव व राष्ट्रों से हमारा अनुरोध है कि वे पुष्कर जैसे महान् स्थान की महत्ता को समझते हुए राजस्थानी जनता के इस बौद्ध-केन्द्र को अपने दानानुदान से सुपल्लिवित करें और जिस प्रकार बनारस काशी से ७ मील आगे चलकर हम बौद्ध तीर्थ पावन सारनाथ में पहुँचते हैं, उसी प्रकार अजमेर से ७ मील चलकर इस सुन्दर स्थान पर भी भगवान् तथागत का शांतिनाद गुँजा दें।

अन्यथा, क्या बौद्ध-जगत् कोलिय जनता की कड़ी कमाई से हस्तगत इस जमीन के हिस्से को पुनः उन्हीं लोभी, दम्भी व धर्म-पाखण्डी पोपों के हाथों में जाने देगा जिनके कि निर्मम चंगुल से जनता को बचाने के लिए यह स्थान खरीदा गया ताकि सन्तप्त व तमाच्छन्न जनता के लिए एक पुष्कल प्रकाश-स्तम्भ का काम दे।

सर्वधर्म प्रकाश-स्तम्भ

अजमेर में जहाँ मुस्लिम जनता का सबसे बड़ा तीर्थ स्थान (१) ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह है जिसके मेले पर लाखों मुस्लिम देश-विदेश से आते हैं, (२) हिन्दुओं का पवित्रतम् तीर्थ 'पुष्करराज' है, जिसका महत्त्व आप पढ़ चुके हैं, (३) आर्य-समाज का जहाँ सुदृढ़ गढ़ है और ऋषि दयानन्द की निर्वाणस्थली है, (४) जैनियों के कई मन्दिर व सेठ मूलचन्द जी सोनी का सुप्रसिद्ध मन्दिर है, (५) पारसी व ईसाई धर्मियों के बड़े-बड़े गिर्जे व पूजास्थान हैं—लगभग सभी के उच्च-स्तरीय शिक्षणालय हैं—वहाँ भगवान् बुद्ध के नाम पर एक भी स्थान न हो—यह कितनी बड़ी 'टीस' है।

यदि बौद्धधर्म का कोई 'पावन-प्रकाश-स्तम्भ' जैसा कि 'बुद्ध-विद्या-मंदिर' के रूप में सोचा गया है, अपनी पूर्ण आभा के साथ बनता है तो मुझे अटल विश्वास है उपरोक्त सभी मत उससे अपना सत्य-पथ ग्रहण करेंगे। देखें, कब यह मधुर स्वप्न पूरा होता है?

धर्मचक्र

अनागारिका अनुला

साँझ की बेला थी। सूर्य भगवान् अपनी रश्मियाँ लपेट अस्ताचल की ओर जा चुके थे। पृथ्वी पर अन्धकार की छाया दृष्टिगोचर होने लगी थी। चारों ओर सन्नाटा था। खण्डहरों के अन्दर उस टूटे-फूटे मन्दिर में चिराग जलने लगा था। टन···टन···घण्टे का शब्द हुआ जो पूजा का आह्वान था। उपासिका अनमनी सी अपने कमरे में बैठी बीनू की याद में व्याकुल हो रही थी—"आह बीनू! तुम्हारी याद मैं यहाँ भी न भूल सकी। आई थी वैराग्य लेने किन्तु इस वीरान में तो मेरा मन तुम्हारे लिये और भी व्यग्र हो उठा है। मैं जितना तुम्हें भूलना चाहती हूँ तुम उतने ही अधिक मुझमें एक रूप होते जाते हो···" कि सहसा घण्टे का शब्द उसके कान में पड़ा। कुछ चौंकती हुई सी, भारी हृदय लिये वह उठ खड़ी हुई। एक अँगड़ाई ली और भगवान् की पूजा के लिये तैयार हो मन्दिर की ओर चल पड़ी।

श्रद्धा से युक्त उपासिका ने मन्दिर में प्रवेश किया। सुगन्धित पुष्प भगवान् को भेंट चढ़ाए। धूप-दीप जलाकर भगवान् की पूजा की। पंचशील ग्रहण किया और नित्य की भाँति उसी आसन पर बैठ समाधि की भावना में लग गई। किन्तु आज उसका मन समाधि में नहीं लग रहा था। उसकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बह रही थी और प्रभु के सम्मुख अपने हृदय के उद्‌गार फफक-फफक कर खोल रही थी।

अमावस की काली रात थी। मूर्ति के सम्मुख जो मोमबत्तियाँ जलाई गई थीं बुझ चुकी थीं। कोने का चिराग बुझने को था कि पीले वस्त्रों में लिपटे मन्दिर के बूढ़े बाबा ने वहाँ आकर बत्ती को थोड़ा ऊँचा किया और उस टिमटिमाते प्रकाश में उपासिका को भगवान् के सम्मुख ऐसी अवस्था में बैठा पाकर खड़े के खड़े रह गये। बाबा उसकी मानसिक स्थिति को भाँप गये और कहा—"तुम अभी तक यहाँ हो उपासिके! अँधेरी रात है। चिराग भी टिमटिमा रहा है। समय अधिक हो गया है। अब जाओ, जाकर विश्राम करो।"

उपासिका ने डबडबाई आँखों से बाबा की ओर देखा और भर्राई आवाज में इतना ही कहा कि "हाँ बाबा! अभी जाती हूँ।"

बाबा ने उसकी व्याकुल दृष्टि को निहारा और दयार्द्र हो आशीर्वाद देते हुए कहा—उपासिके! जो व्यक्ति सुख और दुःख की परिभाषा को भली प्रकार नहीं समझता उसे दुःख अनुभव होता है और आन्तरिक पीड़ा से कराह उठता है। आओ! इस खिड़की के पास आओ! वह

उस धर्मचक्र को देख उपासिका ने ऐसा कुछ सुख अनुभव किया कि कुछ क्षणों के लिये वह खो सी गई। उसे ऐसा लगा जैसे पीछे से कोई उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कह रहा है—"बड़े भाग्य से इस धर्मचक्र के दर्शन होते हैं उपासिके! इसे समझने का प्रयत्न करो। सुख मिलेगा।"

मन्त्रमुग्ध उपासिका ने उत्सुक हो पूछा—बाबा! यह धर्मचक्र क्या है? इसमें हरा, पीला, और सफेद क्रमशः ये जलते हुए गोले क्या हैं?
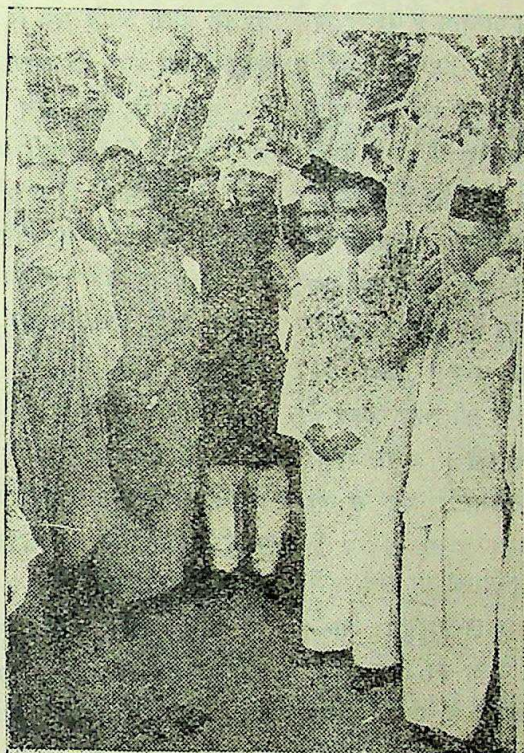
सारनाथ में अस्थियों के जुलूस का एक दृश्य; श्री जी०सी० लाल अस्थि-मंजूषा को सिर पर लिये चल रहे हैं।

देखो! यहाँ से कुछ ही दूरी पर एक बहुत बड़ा घूमता हुआ चक्र दिखाई दे रहा है। उस चक्र में चार रंग के—लाल, हरा, पीला और सफेद—चार गोले प्रकाशित हो रहे हैं। यह चक्र धर्मचक्र है उपासिके! जिसे भगवान् बुद्ध ने चलाया था और जिसकी छत्रछाया के नीचे आकर असंख्य प्राणियों ने शान्ति-लाभ किया था। तुम भी इसका अनुसरण करो, तुम्हारे सब दुःख स्वयं ही झड़ जायँगे और हृदय को सच्ची शान्ति मिलेगी।

हाँ उपासिके! अभी मैंने बताया न कि यही है वह धर्मचक्र जिसे भगवान् बुद्ध ने चलाया था। इसके अन्दर ये चार जलते हुए गोले चार आर्य-सत्य हैं जिनमें तथागत के उपदेशों का सार भरा है। जो व्यक्ति इन्हें समझ कर अपने अन्दर धारण कर लेता है उसे फिर इधर उधर भटकने की आवश्यकता नहीं रहती। वह शान्त-चित्त, स्थिर-बुद्धि हो सदा प्रसन्न रहता है।

(१) वह जलता हुआ लाल गोला जो तुम देख

रही हो, अपने प्रकाश से हमें सदा सावधान करता है कि दुःख आर्य सत्य है। अभिप्राय यह कि पैदा होना दुःख है, मरना दुःख है, बूढ़ा होना दुःख है, प्रिय का वियोग दुःख है, अप्रिय का संयोग दुःख है, इच्छाओं की पूर्ति न होना दुःख है—थोड़े शब्दों में पाँच उपादानस्कन्ध ही दुःख हैं। पाँच उपादान स्कन्ध क्या है? रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान ये पाँच उपादानस्कन्ध हैं।

उपसिके ! सभी संस्कार अनित्य हैं। अतः सभी संस्कार दुःख हैं—रूप अनित्य है, वेदना अनित्य है, संज्ञा अनित्य है, विज्ञान अनित्य है और जो अनित्य है वह दुःख है इसलिए इसे यथार्थ रूप से जान लो कि जो दुःख है वह अनात्म है—न वह मेरा है, न मैं वह हूँ। यदि अनात्म वस्तुओं को अपना जान कर प्राणी शोक करने लगे, दुःख मानने लगे तो फिर उसके दुःख का कहीं अन्त नहीं। ऐसी अनित्य वस्तुओं की चकाचौंध में अपने को भूल कर वह अपने आस-पास ऐसा एक जाल सा बुन लेता है जिसे वह सुख करके मानता है किन्तु अन्त में होश आने पर उसे पीड़ा होती है कि ओह ! जिसे वह सुख समझे था वह उसे मकड़ी के जाले की तरह जकड़े है और उसमें से निकलना कठिन हो रहा है। अतः सभी संस्कारों से जो व्यक्ति वैराग्य वृत्ति रखता है वह दुःखों से मुक्त रहता है।

(२) अब देखो वह हरे रंग का गोला जो सदा हमें इस बात की चेतावनी देता है कि दुःख-समुदय आर्य-सत्य है। अर्थात् यह जो बार-बार जन्म का कारण है, यह जो लोभ है, मोह है, यह जो तृष्णा है जैसे काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा आदि यह तृष्णा ही दुःख-समुदय का कारण है। यह तृष्णा कैसे पैदा होती है ? संसार में जो काम, लोभ, मोह आदि भाव हैं इन्हीं में तृष्णा पैदा होती है। संसार में वह सब जो प्रियकर हैं उनमें यह तृष्णा अपना घर बनाती है। अतः उपासिके ! तृष्णा से भटकनेवाले प्राणियों का कहीं अन्त नहीं। तृष्णा से ही अविद्या उत्पन्न होती है। तृष्णा में भूले हुए व्यक्ति सदा दुःखी रहते हैं।

(३) वह पीले रंग का गोला जो उस चक्र में प्रज्वलित हो रहा है हमें बार-बार चेतता है कि दुःख-निरोध आर्य-सत्य है। अर्थात् तृष्णा से वैराग्य ले लो, तृष्णा का त्याग, परित्याग कर दो यदि दुःख से मुक्ति चाहते हो।

काम तृष्णा, भव-तृष्णा आदि से जो व्यक्ति मुक्त हो जाता है उसे फिर जन्म ग्रहण करना नहीं होता। क्योंकि प्रकृति का नियम है कि तृष्णा-निरोध से उपादान निरुद्ध हो जाता है। उपादान निरोध से भव-निरुद्ध होता है। भव-निरोध से पैदा होना निरुद्ध होता है। पैदा होना निरुद्ध होने से रोगी होना, बूढ़ा होना, मरना, शोक करना, पीड़ित होना आदि सब निरुद्ध हो जाता है। इस प्रकार दुःख-स्कन्ध स्वयं ही क्षीण हो जाता है।

जो व्यक्ति राग, द्वेष, मोह से पूर्णतया वैराग्य ले लेता है उसे फिर मानसिक दुःख व्यथित नहीं करते। वह शान्त-चित्त, स्थिर-बुद्धि हो सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है और निर्वाण-लाभ करता है। और—

(४) वह सफेद गोला हमें चौथे आर्य-सत्य का ज्ञान कराता है कि दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला मार्ग आर्य-सत्य है।

तथागत कहते हैं कि विषय-वासना का हीन और दुःखमय जीवन और अपने शरीर को व्यर्थ कष्ट देने का अनर्थकर जीवन इन दोनों अतियों को छोड़ मध्यम मार्ग की शरण में आओ जो सुख देनेवाला है और निर्वाण की ओर ले जानेवाला है।

वह मध्यम मार्ग आर्य-अष्टांगिक मार्ग है :—सम्यक् दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् उद्योग, सम्यक्-आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि। यह मार्ग दुःख निरोध की ओर ले जानेवाला है। प्रकाश की ओर ले जानेवाला है। जो प्राणी इस मार्ग का अनुसरण करता है उसके बन्धन की जंजीरें स्वयं ही झनझना कर टूट जाती हैं। वह परम आनन्द का अनुभव करता है और अन्त में निर्वाण को प्राप्त होता है।

धन्य हैं बाबा ! मैं अन्धकार में थी, आपने मुझे प्रकाश दिया—मैं अनित्य और अनात्म वस्तुओं के मोह में व्यथित थी—उन्हें न पाकर दुःखी थी, अशान्त थी किन्तु यह मेरा अज्ञान था। वास्तव में यह सब तृष्णा है, ममता है जिसका अन्त दुःख है। मैं जिसे सुख

समझी थी, सत्य में वह दुःख है। यह धर्मचक्र दिखा आपने मेरे अज्ञान का पर्दा दूर किया। मुझे ज्ञान का प्रकाश दिया।

उपासिका अब शान्त थी। उसकी आँखों के आँसू सूख चुके थे। परम सुख का अनुभव करते हुए वह भगवान् की मूर्त्ति के चरणों से लिपट गई और उन वीरान खण्डहरों में एक बार फिर गूँज उठा—

बुद्धं सरणं गच्छामि,
धम्मं सरणं गच्छामि।
संघं सरणं गच्छामि॥

अगहन पूर्णिमा

सुश्रीकुमारी विद्या

पूर्ण इन्दु कमनीय कान्ति में, लिये शान्ति का मृदु उपहार।
अगहन सित पूनम की राका! करो शील सन्देश प्रसार॥
क्या स्मृति आती अतीत की, प्रिय दर्शी की रानी की?
वैभव, यौवन में त्यागपूर्ण, उस गौरवमयी कहानी की॥
धर्म विजय की पहली यात्रा, भारत का गौरव आख्यान।
देवी-पुत्री सँघमित्रा की, इस चिर अमिट निशानी की॥
विन्ध्या के आँचल में स्थित, ये महान स्तूप विहार।
विदिशा कंज कली की आशा, करें शील सन्देश प्रसार॥
अग्रश्रावकों के अवशेषों का, बनकर अति पावन आवास।
चमका था साँची का गौरव, ले सुन्दर स्वर्णिम इतिहास॥
पर अवशेषोंमयि गई मंजूषा, सात समुद्रों के उस पार।
रह न सकी थी पर मानवता, संस्कृति का था निर्मम हास॥
हिंसा द्वेष स्वार्थ की ज्वाला, का है भीषण हाहाकार।
सुधामयी बन आई पूनम, करने शील सँदेश प्रसार॥
तीस नवम्बर की वह संध्या, साँची अणु अणु थी पुलकित।
विश्व शान्ति के आराधक से, पा मंजूषा थी हर्षित॥
भ्रातृ-भावना जन मानस, ममतामयि थी आमन्त्रित।
अर्चना गीत शुचि सुत्तों की, पावन स्वर लहरी थी मुखरित॥
चन्दा के रथ में आ पूनम! स्वर्णिम युग बनकर साकार।
संसृति को विभोर कर दे फिर, कल्याणी करुणा साकार॥

कुमारदेवी का शिलालेख

अनुवादक—श्री बहादुरचन्द्र छावड़ा, ऊटकमंड

[कुमारदेवी गया जिले के पीठी प्रदेश के सामन्त देवरक्षित की पुत्री थी। उसका विवाह काशी और कन्नौज के राजा मदनचन्द्र के पुत्र गोविन्दचन्द्र से हुआ था। गोविन्दचन्द्र ई० सन् ११४४ में काशी और कन्नौज के सिंहासन पर बैठा था। कुमारदेवी और गोविन्दचन्द्र की जोड़ी अनुपम थी। दोनों सदाचारी, गुणी, धर्मात्मा और दानी थे। दोनों अपने इष्टदेव के परम भक्त थे। रानी तथागत में श्रद्धा रखनेवाली थी, तो राजा भगवान् शंकर में। इन दोनों के गुणों से सम्बन्धित दो शिलालेख प्राप्त हुए हैं। एक श्रावस्ती से और दूसरा सारनाथ से। कुमारदेवी ने इन स्थानों में विहारों का निर्माण कराया था। सारनाथ का शिलालेख बहुत ही महत्त्व का है। वह 'धर्म-चक्र जिन विहार' से प्राप्त हुआ है। यहाँ उसका अविकल हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है—सम्पादक]

ॐ भगवती आर्या वसुधारा को हमारा नमस्कार। वसुधारा जो धर्मामृत बहाकर इस बहुविध प्रपंच में होने वाली घोर दुःख परम्परा को शान्त करती है, तथा जो इस संसार में, अन्तरिक्ष में एवं स्वर्ग में धन, सुवर्ण आदि सम्पत्ति की वर्षा सी करती हुई उक्त तीनों लोकों में होने-वाले जीवों की दरिद्रताओं को दूर भगाती है, तीनों लोकों का पालन करें। १ ला श्लोक।

संसार भर को प्रकाशमान करने वाले देदीप्यमान् दीपक स्वरूप उस कौमुदीकान्त चन्द्रमा की जय हो, जो सुन्दर-सुन्दर चन्द्रकान्त मणियों को तो द्रवित करता ही है साथ ही उत्कंठित प्राणियों के नेत्र-युगलों को भी सजल कर देता है, जो एक ओर कुमुद-लताओं की मुकुलित मुद्रा को तोड़ उन्हें विकसित और प्रफुल्लित करता है तो दूसरी ओर मानवती कामिनियों के मान को छिन्न-भिन्न कर देता है, किंच जो अपनी अमृतमयी किरणों से ❀मुए शंकर द्वारा भस्मीभूत कामदेव को फिर से उज्जीवित कर देता है। २ रा श्लोक।

उसके वंश में, अर्थात् चन्द्रवंश में जिसने ऐसे ऐसे वीर पुरुषों को जन्म दिया है, जिनके पराक्रम के सामने मस्तक झुकाना पड़ता है, जो अपनी विपुल कीर्ति से भासमान है, पवित्रता में जो एक दम सुर-नदी गंगा को भी मात कर रहा है, किंच जो शत्रुपक्षवालों की श्री सम्पत्ति को तहस-नहस कर डालता है एक ऐसे पराक्रमी और जयशाली राजा का जन्म हुआ जो वल्लभराज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह विशाल पीठिका, अर्थात् पीठी का शासक था। दूसरे सभी भूमिपति उसका बड़ा मान करते थे। इस प्रकार उसके प्रताप में उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली गई। ३ रा श्लोक।

उस वल्लभराज से पैदा हुआ वह जगत् में श्रीमान् देवरक्षित नाम से प्रसिद्ध हुआ, जो छिक्कोर वंशरूपी नील कमल के विकास करने के लिए उदीयमान चन्द्रमा था। देवरक्षित था तो पीठीपति, परन्तु उसने अपने राज्य वैभव से गजपति के राज्य वैभव को भी मात कर दिया था। संसार भर में एक देवरक्षित ही ऐसा था जिसने अपने सौन्दर्य से सभी को मोहित कर रखा था। उस वल्लभराज से देवरक्षित क्या पैदा हुआ मानो समुद्र से चन्द्रमा ही पैदा हुआ हो, कान्ति और सुन्दरता में वह सचमुच चन्द्रमा ही था; चन्द्रमा को देखकर जैसे समुद्र उछलता है वैसे ही उसे देखकर वे लोग आनन्द से उल्लसित हो उठते थे। उसकी कीर्ति भी वैसे ही चन्द्रमा के समान स्वच्छ थी जैसे कि उसकी कान्ति और सुन्दरता। वह सुजनता का ही एक अद्वितीय निधान नहीं

❀ प्राकृत में शंकर को 'दग्ध' अर्थात् 'जला' या मुआ कहकर प्रणयपूर्वक गाली सी दी गई है।

था, अपितु उत्तम गुणों की भी एक खान था। गम्भीरता में तो वह मानों साक्षात् समुद्र ही था। धर्मनिष्ठा का वह एक अनुपम कोश था, प्रताप का पुञ्ज था और शस्त्रविद्या की अनन्य निधि था। ४ और ५ वाँ श्लोक।

किंच, वह देवरक्षित दीनजनों के लिए हरेक अभीष्ट फल को देनेवाला साक्षात् कल्पवृक्ष तो था ही, साथ ही मदान्ध शत्रुओं के रूप में जो पर्वत थे उन्हें कुचलने और खण्डित करने में वह एक अप्रतिम वज्र भी था। इधर कामनियों की कामातुरता को शान्त करने में उसकी मंजुलता (आलिंगन आदि द्वारा) जादू भरी जड़ी-बूटी का काम करती थी। अपने ऐसे विविध कारनामों से उसने अन्य सभी राजाओं को विस्मय में डाल रखा था। ६ वाँ श्लोक।

उस देवरक्षित का एक मामा था जिसका नाम था महणदेव, जो अंगदेश का अधिपति था। ढाल, तलवार, तीर और भाला लिये वह महणदेव सारे गौड़ देश में एक अद्वितीय योधा माना जाता था, वह सचमुच क्षत्रियों का सरदार था। अन्य सभी राजा लोग उसका बड़ा आदर करते थे। उसने अपने भानजे देवरक्षित को युद्ध में जीत कर अपने सम्राट श्रीरामपाल के राज्य को सर्वथा निष्कंटक बना उसके वैभव को चार चाँद लगा दिये थे। ७ वाँ श्लोक।

पर्वतराज हिमालय की जैसे पुत्री थी पार्वती, वैसे ही उस महणदेव के एक पुत्री थी, जिसका नाम था शंकरदेवी। स्वयंभू भगवान् शंकर ने जैसे पार्वती से ब्याह किया था उसी प्रकार पीठीपति (देवरक्षित ने) उस शंकरदेवी से ब्याह किया। शंकरदेवी तारादेवी के समान दयावती थीं, एवं दान पुण्य में उसने कल्पलताओं को भी मात कर रखा था। ८ वाँ और ९ वाँ श्लोक।

उस दम्पति के अर्थात् देवरक्षित और शंकरदेवी के एक पुत्री हुई जिसका नाम था कुमारदेवी। वह एक दिव्यांगना के तुल्य थी, ऐसी रूपवती जैसी स्वच्छ शारद चन्द्रमा की सुन्दर फाँक होती है। मानों पाप-सागर में डूबे हुए लोगों का उद्धार करने के निमित्त कृपावश साक्षात् तारिणीदेवी ही अवतार लेकर इस संसार में आयी हों। १० वाँ श्लोक।

उस कुमारदेवी के रूपलावण्य का वर्णन करने में कवि कहता है कि हम-जैसे क्योंकर समर्थ हो सकते हैं। उसे बनाकर स्वयं ब्रह्मा भी अपने रचना कौशल पर अभिमान करने लग पड़ा कि मैंने ऐसी अनुपम सुन्दरी की रचना की है। उसके मुख से सौंदर्य में परास्त होकर चन्द्रमा को तो ऐसी लज्जा आयी कि वह उड़कर आसमान में जा छिपा। तब से केवल रात में ही बाहर निकलता है और तभी से वह विच्छाय और कलंकित भी हो गया है। ११वाँ श्लोक।

वह (कुमारदेवी) अपनी कोमल ललित तनुलता को एक अनुपम छवि से यूँ लिए फिरती थी कि मानों वह कामातुर जनों की लोल दृष्टि रूपी हरनियों को फँसाने वाली चलती-फिरती एक फाँस ही हो। अपनी अभिराम रूपराशि की कमनीय छटा से उसने क्षीरसागर की इठलाती तरंगों की उत्कट तरलता के सौन्दर्य को भी फीका कर दिया है। अपने सौभाग्य के गौरव से उसने और तो और स्वयं पार्वती के सौभाग्य-दर्प को भी चूर कर दिया है। १२वाँ श्लोक।

उस कुमारदेवी का मन अनन्य रूप से धर्मनिष्ठ है। वह सदा सद्गुणों के अर्जन में तत्पर रहती है। उसने पुण्यसंचय का ही व्रत उठा रखा है। दान देकर ही उसे अपार सन्तोष मिलता है। किंच, उसकी चाल हाथी की चाल सी मन्द और मस्त है। उसकी रूपाकृति दर्शकों को नयनानन्द देनेवाली है। वह सदा शास्ता अर्थात् भगवान् बुद्ध के चरणों पर प्रणामाञ्जलि अर्पित करती है। लोग उसकी सदा प्रशंसा करते हैं। उसके स्वभाव में करुणा का भाव यूँ कूट-कूट कर भरा हुआ है कि मानो वह करुणा की मूर्तिमती क्रीडास्थली ही है। शोभा की वह शाश्वत निवास-भूमि ही है। पापों का उसने सर्वनाश कर दिया है। विस्तारशील सद्गुणों की वह साक्षात् अहंता है अर्थात् गुण मानो अहंकारपूर्वक यह घोषित करते हैं कि हम इस कुमार देवी का आश्रय पाकर धन्य हैं। १३वाँ श्लोक।

इधर संसार में विख्यात गहड़वाल नामक राजवंश में चन्द्र नाम का एक राजा हुआ जो सभी राजाओं में इस प्रकार श्रेष्ठ था जैसे तारागणों में चन्द्रमा। उसके

प्रताप से संतप्त हुए शत्रुओं की स्त्रियों को इतना दुःख पहुँचा कि उनके काजल भरे नयनों के नीर की सतत् धाराओं से यमुना नदी का यह काला जल और भी काला हो गया। १४वाँ श्लोक।

उस चन्द्रदेव का पुत्र हुआ राजा मदनचन्द्र जो प्रतापशील राजाओं में सर्वश्रेष्ठ था। उसने पृथ्वी पर एकच्छत्र राज्य किया। अपने भूरि प्रचण्ड तेज से वह अग्नि के समान ज्वलन्त था। अपने राज्य वैभव से उसने और तो और स्वयं इन्द्र के ऐश्वर्य को भी मन्द कर रखा था। १५वाँ श्लोक।

उस मदनचन्द्र से जो पैदा हुआ वह गोविन्द चन्द्र नाम से प्रसिद्ध हुआ और वह मानों साक्षात् विष्णु था जिसे भगवान् शंकर ने यह समझ कर कि विश्व भर की रक्षा करने में यही एक समर्थ है, बनारस की एक दुष्ट मुसलमान सैनिक से रक्षा करने के निमित्त इस संसार में फिर अवतीर्ण होने को कहा था। १६वाँ श्लोक।

इस गोविन्द चन्द्र की दानवीरता का यह प्रभाव हुआ कि अर्थिजनों के लिए कामधेनुएँ अनावश्यक और निष्प्रयोजन हो गयीं। जहाँ पहिले कामधेनुओं के दूध का पूरा भण्डार याचकों के पेट भरने में खप जाता था, यहाँ तक कि उनके अपने बछड़ों को पीने के लिए एक बूँद भी दूध नहीं मिल पाता था, आश्चर्य की बात है कि वहाँ आज वही बछड़े बड़ी स्वछन्दता से जी भर दूध पी-पीकर उत्सव मना रहे हैं, क्योंकि उस राजा (गोविन्द चन्द्र) के दिये दानों से वे सभी याचक लोग ऐसे परितृप्त हो गए हैं कि उन्हें अब कामधेनुओं के दूध की आवश्यकता ही नहीं रही। १७वाँ श्लोक।

उधर अपने शत्रुओं के नगरों को उसने ऐसे तहस-नहस कर दिया है कि वे अब सुनसान जंगल बन गए हैं। उनके शत्रुभूत राजाओं की राजधानियों में बिखरी पड़ी मोतियों की मालाओं को शिकारी लोग यह समझ कर नहीं उठाते कि वे हिरनों के पकड़ने के लिए कदाचित् फंदे बिछाये हुए हैं। किंच, जहाँ कहीं सोने के बड़े-बड़े कर्णकुण्डल गिरे पड़े हैं, उन्हें वे व्याध लोग साँप समझ कर भयभीत हो यों काँप रहे हैं कि उनके हाथों में पकड़ी पुष्पमालायें डोल रही हैं और उन कुण्डलों को वे सीटियों द्वारा झट से हटा रहे हैं। १८वाँ श्लोक।

उसी सिलसिले में उसके शत्रुओं के महलों की यह दशा हो गयी कि उन पर लम्बी-लम्बी घास उगने लग गयी। सूर्य का रथ मन्थरगति हो गया क्योंकि उसके घोड़ों को उस लम्बी-लम्बी लहलहाती हुई हरी-हरी घास को खाने का लालच आ गया जो उसके गोविन्द चन्द्र शत्रुभूत राजाओं की राजधानियों में के सूने महलों की छतों पर उग रही थीं। साथ ही चन्द्रमा भी धीमा पड़ गया, क्योंकि उसे भी अपने हिरण को सम्भालना पड़ रहा था जो उसी घास को खाने के लिए लपक रहा था। १९ वाँ श्लोक।

कैसे आनन्द की बात है कि उक्त त्रिभुवन प्रसिद्ध कुमारदेवी का ब्याह उस राजा गोविन्द चन्द्र से हुआ। इन दोनों को जोड़ी लक्ष्मी और विष्णु की जोड़ी-सी थी। उस राजा के सुन्दर रमणियों से भरे रनिवास में कुमारदेवी ताराओं में चन्द्रलेखा के समान थीं। २० वाँ श्लोक।

तारिणी के रूप में बसुधारा की जो मूर्ति है उससे मण्डित, एवं नवखण्डमयी इस भूमि का हार स्वरूप, यह विहार उसी कुमारदेवी ने बनवाया है, जिस विहार की अद्भुत तथा सर्वोत्तम रचना चातुरी को देख-देखकर देवता भी चकित रह गए तथा देवताओं के साथ उनका वह प्रसिद्ध स्थपित विश्वकर्मा भी चकित रह गया। २१ वाँ श्लोक।

उक्त विहार के खर्चे के लिए कुमारदेवी ने जम्बुकी नाम की एक तहसील पूरी की पूरी भगवती तारिणी के नाम लगा दी। वह जो सभी तहसीलों में सर्वश्रेष्ठ जम्बुकी नामक तहसील है उसे धर्म-चक्र की आकृतिवाली भगवान् बुद्ध की शासन मुद्रा से अंकित एक ताम्रशासन द्वारा यथाविधि उस कुमारदेवी ने उस तारिणी के प्रति समर्पित कर दिया। इस प्रकार दान में दी गयी यह जम्बुकी जब तक चन्द्र और सूर्य इस विश्व में विद्यमान् हैं तब तक विराजमान रहे। २२ वाँ श्लोक।

उस कुमारदेवी ने अशोक द्वारा स्थापित भगवान् बुद्ध की मूर्ति की पुनः प्रतिष्ठा की और उसके नाम का एक पृथक् विहार भी बनवाया। धर्माशोक सम्राट, अर्थात धर्मात्मा सम्राट अशोक के समय में धर्म चक्र प्रवर्त्तक भगवान् बुद्ध की प्रतिमा को जिस विधि-विधान और

समारोह से प्रतिष्ठापित किया गया था उसे फिर से और भी अधिक चमत्कारक विधि-विधान और समारोह से प्रतिष्ठापित किया गया। किंच, उस कुमारदेवी ने बड़े प्रयत्न से उस महास्थविर भगवान् बुद्ध के निमित्त वह विहार भी बनवाया, उसी में उनकी प्रतिमा को प्रतिष्ठापित किया। सो यह विहार भी जब तक चन्द्र-सूर्य हैं तब तक बना रहे। २३ वाँ श्लोक।

उस कुमार देवी की संसार में इस पुण्यमयी कीर्ति का जो लोग पालन करेंगे उनके प्रति वह कुमारदेवी बड़ी श्रद्धा से प्रणामांजलि समर्पित करती है। हे बोधिसत्वो! तुम सब इस बात के साक्षी हो। तद्विपरीत यदि कोई मूढ़ पुरुष उस कुमारदेवी के इस यश का विनाश करेगा तो उस पापी का सभी दिक्पाल क्रोध-पूर्वक निग्रह करें। २४ वाँ श्लोक।

उस कुमारदेवी की ललित पद पद्यमयी इस मनोज्ञ प्रशस्ति की रचना आठ पृथक्-पृथक् भाषाओं में कविता करने में प्रवीण कुन्द नामक सफल-मनोरथ कविवर ने की है। यह कवि वंगनरेश का स्नेह-भाजन था। काव्य-रूपी देदीप्यमान रत्नों के उत्पादन में वह मूर्तिमान रोहण पर्वत तो था ही, साथ ही उसकी ख्याति इस बात में भी थी कि वह परमतावलम्बियों को मुँहतोड़ जवाब देनेवाला था। शास्त्रार्थ में प्रतिवादी रूप हाथियों के झुण्ड को तितर-बितर करनेवाला एकमात्र सिंह था। २५ वाँ श्लोक।

इस प्रशस्ति को वामन नाम के कारीगर ने इस नीलमणि के समान सुन्दर शिलापट्ट पर खोदा। २६ वाँ श्लोक।

बौद्धयोगी के पत्र—६

ध्यानों की प्राप्ति

प्रिय जिज्ञासु,

यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि तुमने 'पृथ्वी-कसिण की यौगिक क्रियाओं' को पढ़कर बड़ा लाभ उठाया और आगे की क्रियाओं को जानने के लिये धैर्य-पूर्वक मेरे पत्र की प्रतीक्षा करने का अभ्यास किया। मैंने सोचा था कि वर्षावास के पश्चात् भी कुछ दिनों तक और श्रावस्ती में रहूँ, किन्तु सारनाथ के भिक्षु-संघ ने मूलगन्धकुटी विहार के २२ वें वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिये बाध्य किया। अतः मैं यहाँ चला आया और सोचा था कि सम्भवतः तुम भी उत्सव देखने आओगे, किन्तु तुमने तो घर छोड़ना सीखा नहीं। क्या यह सत्य है न? यदि तुम आये होते तो ध्यान-भावना की सारी विधियाँ तुम्हें बतला देता और अपने सामने अभ्यास भी करा देता, किन्तु तुमने तो योगिराज से पत्र लिखने के लिये वचन ले लिया है। प्राचीन काल में कोई भी योगी इस प्रकार लिखकर पत्र द्वारा किसी को यौगिक क्रियाओं या भावना को नहीं बतलाता था। मैं भी जो कुछ लिख भेजता हूँ बहुजन का हित-सुख देखते हुए ही। आशा है तुम इन पत्रों को बहुजन हिताय-सुखाय ही समझ कर स्वयं पढ़ लेने के पश्चात् अपने मित्रों को भी पढ़ने के लिये दे दिया करोगे।

तुमने अपने पत्र में समाधि की चर्चा की है। समाधि दो प्रकार की होती है; उपचार समाधि और अर्पणा समाधि। दो प्रकार से चित्त एकाग्र होता है उपचार की अवस्था में या अर्पणा की अवस्था में। संक्षेप में, छः अनुस्मृति, मरणानुस्मृति, उपशमानुस्मृति, आहार में प्रतिकूलता का ख्याल और चार धातुओं का व्यवस्थापन— इनके अनुसार प्राप्त चित्त की एकाग्रता और जो अर्पणा समाधि के पूर्व भाग में होती है, उसे उपचार समाधि कहते हैं। जो परिकर्म के अनन्तर एकाग्रता होती है, उसे अर्पणा समाधि कहते हैं।

योगी को कर्मस्थान की भावना करते हुए पहले उपचार समाधि की अवस्था प्राप्त होती है। उस अवस्था में ध्यानांग बलवान नहीं होते हैं। वे अर्पणा की अवस्था में बलवान होते हैं। क्योंकि, उपचार ध्यान की अवस्था में चित्त एक बार कसिण-निमित्त को आलम्बन करता है,

तो एक बार प्रकृति-मन (=भवांग) में उतर जाता है; किन्तु, अर्पणा के उत्पन्न होने पर चित्त प्रकृति-मन को बड़ी देर तक रोक रखता है। उपचार समाधि के साथ प्रतिभाग निमित्त का उत्पन्न होना भी बड़ा कठिन है, इसलिये यदि योगी एक ही आसन पर बैठे उस कसिण-निमित्त को बढ़ाकर अर्पणा को प्राप्त कर सके, तो बहुत अच्छा है, अन्यथा उसे उस निमित्त की रक्षा करनी चाहिए। निमित्त की रक्षा के लिए आवास, गोचर, बात-चीत, व्यक्ति, भोजन, ऋतु और ईर्यापथ—इन सात बातों में से जो विपरीत पड़ें, उन्हें त्याग कर अनुकूल का सेवन करना चाहिए। इस प्रकार लगे रहने से थोड़े ही समय में अर्पणा उत्पन्न हो जाती है।

जिस योगी को ऐसा करने पर भी अर्पणा नहीं उत्पन्न होती है, उसे दस प्रकार की अर्पणा की कुशलता को पूर्ण करना चाहिए। (१) बाल, नख, लोम आदि को साफ कर, वस्त्र आदि को भी साफ कर लेना चाहिए। भीतरी तथा बाहरी पारिशुद्धि आवश्यक है, क्योंकि भीतरी और बाहरी वस्तुओं के स्वच्छ होने पर चित्त-चैतसिकों में ज्ञान भी परिशुद्ध दीपक, बत्ती, तेल के कारण चिराग की परिशुद्ध लौ की भाँति स्वच्छ होता है। स्वच्छ ज्ञान से संस्कारों का विचार करते समय संस्कार भी स्पष्ट होते हैं। कर्मस्थान में जुटने पर कर्मस्थान की भी वृद्धि होती है। (२) इन्द्रियों में समता बनाये रहना चाहिए। श्रद्धा, आदि इन्द्रियों की समता से ही अर्पणा उत्पन्न होती है। (३) पृथ्वी-कसिण से प्राप्त चित्त की एकाग्रता की रक्षा करनी चाहिए और उस प्राप्त एकाग्रता के निमित्त में कुशल होना चाहिए। (४) जब योगी का चित्त शिथिलता के कारण संकुचित हो जाय, तब चित्त को पकड़ कर ऊपर उठाना चाहिए। (५) जब योगी का चित्त अधिक परिश्रम करने के कारण चंचल हो जाय, तब उसे दबाकर शान्त करना चाहिए। (६) जब चित्त में संवेग या खिन्नता उत्पन्न हो, तब बुद्ध, धर्म, संघ के गुणानुस्मरण से उसे प्रसन्न करना चाहिए। (७) जब योगी का चित्त न चंचल और न संकुचित, आलम्बन में समान रूप से लगा हो, तब समान चाल से चलने वाले घोड़े के प्रति सारथी के समान उपेक्षा करनी चाहिए। न उसे दबाना चाहिए, न उठाना चाहिए और न प्रसन्न करना चाहिए। (८) चंचल-चित्त वाले व्यक्ति का साथ नहीं करना चाहिए। (९) एकाग्र-चित्त वाले व्यक्ति का सत्संग करना चाहिए। (१०) समाधि में चित्त को लगाये रहना चाहिए। पुराने योगियों ने इन्हीं बातों को स्पष्ट करने के लिए कहा है :—

एवं हि सम्पादयतो अप्पनाकोसल्लं इमं।
पटिलद्धे निमित्तस्मिं अप्पना सम्पवत्तति॥

ऐसे ही इस अर्पणा की कुशलता को पूर्ण करने वाले को प्राप्त हुए निमित्त में अर्पणा उत्पन्न होती है।

एवम्पि पटिपन्नस्स सचे सा नप्पवत्तति।
तथापि न जहे योगं वायमेथेव पण्डितो॥

यदि ऐसे भी प्रतिपन्न हुए योगी को वह नहीं उत्पन्न होती है, तब भी बुद्धिमान् व्यक्ति प्रयत्न ही करे, योग को न त्यागे।

हित्वा हि सम्मा वायामं विसेसं नाम मानवो।
अधिगच्छे परित्तम्पि ठानमेतं न विज्जति॥

आदमी ठीक प्रयत्न को त्याग कर थोड़ी भी उन्नति कर ले, यह सम्भव नहीं।

चित्तप्पवत्ति आकारं तस्मा सल्लक्खयं बुधो।
समतं विरियस्सेव योजयेथ पुनप्पुनं॥

इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति चित्त-प्रवृत्ति के आकार को भली-भाँति विचार कर समाधि के ही समान वीर्य को भी लगाये।

ईसकम्पि लयं यन्तं पग्गण्हेथेव मानसं।
अच्चारद्धं निसेधेत्वा सममेव पवत्तये॥

थोड़ा-सा भी संकुचित होते हुए मन को पकड़े ही, अत्यधिक वीर्य को रोक कर सम ही करे।

योगी को चाहिए कि वह मन को संकुचित और चंचल होने से छुड़ाकर निमित्त की ओर लगाये रहे। ऐसे निमित्त की ओर मन को करते हुए 'अब अर्पणा की प्राप्ति होगी' सोच, 'पृथ्वी' 'पृथ्वी' कहते हुए पृथ्वी-कसिण को आलम्बन बनाये रहना चाहिए। ऐसा करने से वितर्क, विचार, प्रीति, सुख और चित्त की एकाग्रता से युक्त साधारण चित्तों से बलवान् चित्त उत्पन्न होता है। इसी को परिकर्म, उपचार, अनुलोम और गोत्रभू नाम से पुकारते हैं, क्योंकि इसके उपरान्त ही अर्पणा की प्राप्ति होती है, जो केवल एक चित्त-क्षण ही होती है।

उसके बाद भवांग (= प्रकृति मन) हो जाता है। योगी को चाहिए कि वह भवांग को हटा कर ध्यानों का प्रत्यवेक्षण करने का संकल्प करे और तदुपरान्त ध्यानों का भी प्रत्यवेक्षण करे। भिड़े रहने पर शीघ्र ही योगी कामों और अकुशल धर्मों से अलग होकर वितर्क-विचार सहित विवेक से उत्पन्न प्रीति और सुख-वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त होकर विहरता है। प्रथम ध्यान के प्राप्त होने पर भली प्रकार उसका अभ्यास करके, "यह ध्यान विपक्षी नीवरणों के समीप रहनेवाला है और वितर्क-विचारों के स्थूल होने से दुर्बल अंगवाला है," सोचकर उसमें दोष देख द्वितीय ध्यान को शान्त-भाव से मन में करके प्रथम ध्यान की चाह को त्यागकर द्वितीय ध्यान की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

जब प्रथम ध्यान से उठकर स्मृति और ज्ञान-युक्त रहनेवाले उस योगी को ध्यान के अंगों का प्रत्यवेक्षण करते समय वितर्क-विचार स्थूल रूप से दिखाई देते हैं तथा प्रीति-सुख और चित्त की एकाग्रता शान्त जान पड़ती हैं, तब उसे स्थूल अंगों के प्रहाण और शान्त अंगों की प्राप्ति के लिए उसी निमित्त को "पृथ्वी, पृथ्वी" कह कर बार-बार मन में करते हुए, "अब द्वितीय ध्यान उत्पन्न होगा" जान भवांग को हटाकर उसी पृथ्वी-कसिण को आलम्बन करके वितर्क-विचारों के शान्त हो जाने से भीतरी प्रसाद और चित्त की एकाग्रता से युक्त वितर्क और विचार से रहित समाधि से उत्पन्न प्रीति सुख वाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर योगी विहरता है।

द्वितीय ध्यान का भी भली प्रकार अभ्यास करके, अभ्यस्त द्वितीय ध्यान से उठकर "यह ध्यान विपक्षी वितर्क-विचार का समीपी है और प्रीति के स्थूल होने से दुर्बल अंगों वाला है, "अतः उसमें दोष देखकर तृतीय ध्यान को शान्त-भाव से मन में करके द्वितीय ध्यान की चाह को त्याग, तृतीय की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिए।

जब द्वितीय ध्यान से उठकर स्मृति और ज्ञान-युक्त रहने वाले उस योगी को ध्यान के अंगों का विचार करते समय प्रीति स्थूल और सुख तथा एकाग्रता शान्त जान पड़ती हैं, तब उसे स्थूल अंगों के प्रहाण और शान्त अंगों की प्राप्ति के लिए उसी निमित्त को, "पृथ्वी, पृथ्वी" कह कर बार-बार मन में करते हुए, "अब तृतीय ध्यान उत्पन्न होगा" जान भवांग को हटाकर उसी पृथ्वी-कसिण को आलम्बन करके प्रीति और विराग से उपेक्षक हो, स्मृति और ज्ञान से युक्त हो, काया से सुख को अनुभव करता हुआ विहरता है, जिसको आर्यजन उपेक्षक, स्मृतिमान, सुख-विहारी कहते हैं। योगी इस प्रकार के तृतीय ध्यान को प्राप्त कर विहरता है।

तृतीय ध्यान के भी प्राप्त हो जाने पर ऊपर कहे गये के ही अनुसार अभ्यस्त तृतीय ध्यान से उठकर=यह ध्यान विपक्षी प्रीति का समीपी है और सुख के स्थूल होने से दुर्बल अंगों वाला है" अतः उसमें दोष देखकर चतुर्थ ध्यान को शान्त भाव से मन में करके तृतीय ध्यान की चाह को छोड़कर चतुर्थ की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

जब तृतीय ध्यान से उठकर स्मृति और ज्ञान से युक्त रहने वाले उस योगी को ध्यान के अंगों का विचार करते समय चैतसिक सौमनस्य कहलाने वाला सुख स्थूल और उपेक्षा, वेदना, तथा चित्त की एकाग्रता शान्त जान पड़ती हैं, तब उसे स्थूल अंगों के प्रहाण और शान्त अंगों की प्राप्ति के लिए उसी निमित्त को "पृथ्वी, पृथ्वी" कह कर बार-बार मन में करते हुए "अब चतुर्थ ध्यान उत्पन्न होगा" जान, भवांग को हटा कर उसी पृथ्वी-कसिण को आलम्बन करके सुख और दुःख के प्रहाण से, सौमनस्य और दौर्मनस्य के पूर्व ही अस्त हो जाने से, दुःख-सुख से रहित, उपेक्षा से उत्पन्न स्मृति की परिशुद्धि चतुर्थ ध्यान को प्राप्त होकर योगी विहरता है। इस प्रकार योगी प्रथम द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ ध्यानों को प्राप्त किया हुआ कहा जाता है। वह ध्यानाभ्यस्त योगी जब जिस ध्यान को प्राप्त होकर विहरना चाहता है, शीघ्र उसे प्राप्त करके विहरने लगता है।

पत्र लिखते-लिखते सन्ध्या हो गई। चंक्रमण करने का समय हो गया। सभी सब्रह्मचारी मेरी राह देख रहे हैं। अच्छा, अब पत्र यहीं समाप्त करता हूँ। अगले पत्र में 'शेष कसिणों की भावना-विधि' लिख भेजूँगा। योगिराज के आशीर्वाद।

इसिपतन मिगदाय २४-१२-५३ — तुम्हारा— योगी

उपदेश की आवृत्ति

(दैनिक 'संसार' की सम्पादकीय टिप्पणी)

मूलगन्ध कुटी विहार के बाईसवें वार्षिकोत्सव के अवसर पर भाषण करते हुए उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने भगवान् बुद्ध के उपदेश की ओर जिज्ञासुओं तथा जनता का ध्यान आकृष्ट किया है। आपने कहा है—'बुद्ध भूमि के अधिवासी हम यदि वर्तमान तामस को झकझोर कर एक ही वर्ष के लिए अपने को भगवान् बुद्ध के निकट ले चलें और शक्ति तथा वैभव की मदिरा का परित्याग कर धर्म के प्रति पूर्ण निष्ठा के साथ विश्व को उद्बोधित कर कहें कि अध्यात्म के बिना विज्ञान अर्थहीन है, सत्कर्म के बिना विलास पाप है, शांति के बिना निरर्थक है। भ्रातृत्व के बिना 'एक विश्व' का नारा धोखा है तो क्या होगा? आपके शब्दों में द्वेष को अक्रोध से, घृणा को प्रेम से, हिंसा को अहिंसा से और विरोध को विनय से जीतने की आवश्यकता है। भगवान् बुद्ध के उपदेश की यह आवृत्ति है, उस पावन सन्देश का पुनरुद्घोष है जो ढाई हजार वर्ष पहले सारनाथ से प्रचारित हुआ था। शक्ति केवल वाणी में नहीं थी प्रत्युत उस विभूति में भी जिससे वह उद्गत हुई थी। विशिष्ट अवसरों पर महापुरुषों के उपदेशों की आवृत्ति कर ली जाती है, श्रोता सुन लेते हैं, कुछ धुनी गुन लेते हैं विरले अपनी अपनी गति मति और श्रद्धा के अनुसार शब्द समूहों से कुछ शब्द चुन लेते हैं, यह क्रम समय-समय पर चलता रहता है। शब्द आकाश का गुण माना जाता है, अधिकतर वह महाकाश में विलीन हो जाता है, कर्ण विवरण तो आकाश में भी गूँजता है पर हृदय में स्पन्दन तथा स्थायी अनुभूति उत्पन्न करने में वह उतना सफल नहीं होता जितना उसे होना चाहिये। विश्व के महान् उपदेशकों ने अपनी बात थोड़े में कही है, उसपर अलंकार का बोझ नहीं, आवेश का दबाव नहीं, व्यासत्व की छाप नहीं। जो कुछ कहा गया है मार्मिकतापूर्वक समास रूप से। इस समासता से बहुत बड़ा लाभ है आवृत्ति का। आज व्याख्या की उलझन इतनी अधिक है मूल वाक्यों की आवृत्ति दिनानुदिन नहीं हो पाती। अनेक प्रकार की मतमतान्तरों की भूलभुलैया में मानव की बुद्धि चक्कर काट कर रही है, आभोग बढ़ गया है पर उसकी आधारभूत सूक्ष्मता विलुप्त प्राय है। अध्ययन व्यापक हो पर स्वाध्याय न रहे तो विद्या की भित्ति सुदृढ़ नहीं होती। गौतम बुद्ध के उपदेश की सच्ची आवृत्ति तभी हो सकती है जब उसके श्रोता उसका मनन करें। सारनाथ के उक्त उत्सव में सम्मिलित हुए लोगों को श्री मुंशी का भाषण अवश्यमेव कर्णप्रिय तथा मनोरम लगा होगा पर उनमें से कितने ऐसे हैं जो बाद में सोचेंगे कि गौतम बुद्ध ने विश्व के लिए जो उपदेश किया है वह केवल पुस्तकस्थ या प्रवचनस्थ रहने से उपकारक नहीं हो सकता, आचार द्वारा स्थिर रह सकता है।

श्री मुन्शी की व्याख्यात्मक उक्ति पर हर्ष प्रकट करने वाले अपने तथा समाज के लिए तभी हितकर हो सकते हैं जब अपना आचार अच्छा बनाने का प्रयास करें। सत्कर्म, सद्वाणी, सद्व्यवहार, सत्प्रयत्न और सत्यनिष्ठा आदि की उत्तमता वस्तुतः स्वतः सिद्ध है पर समाज के हितार्थ इनका महत्त्व समझाया जाता है। मानवता का कल्याण अवगुणों के परित्याग तथा गुणों के ग्रहण के बिना हो ही नहीं सकता पर इसमें समाजगत व्यापकता तभी आ सकती है जब श्रद्धा-पक्ष प्रबल हो, उच्छेद और व्यवच्छेद में दिनरात लगी रहनेवाली बुद्धि विवेकपूर्ण परिच्छेद की ओर भी बढ़े। सत्य त्रिकाल बाधित होता है, भगवान् बुद्ध के उपदेश भी ऐसे ही हैं पर मुख्य प्रश्न यही है कि उनका उपादान नहीं किया जाता। दीपक, टार्च आदि से अन्धकार का विनाश होता है इसमें सन्देह नहीं, पर केवल इस ज्ञान से अन्धकार की निवृत्ति नहीं हो सकती कि दीपक अमुक स्थल पर है और ऐसा है। जो व्यक्ति उसका उपयोग करेगा उसी के लिए तमोनिवारण

होगा। दुनिया में उपदेशकों की कमी नहीं है पर अधिकतर उपदेशक भी ऐसे हैं जो स्वतः आचार पर विशेष ध्यान देते। इस सम्बन्ध में बड़ा और स्पष्ट उदाहरण उन विवादनिपुणों की अपीलें हैं जिनके रुष्ट होने पर विश्व युद्धाग्नि में कूदता दिखायी देता है और जो तुष्ट होने का जल्द नाम ही नहीं लेते। न जाने कितनी शान्तिपरक अपीलें होती हैं जो स्वयं शान्ति में बाधक हैं, उनकी अपीलें भी थोथी होने के अलावा और क्या हैं।

मानव दिनोदिन विकास की ओर बढ़ता जा रहा है, सुखके साधन उसने बटोरे हैं और वह बटोरेगा भी, पर स्वार्थ का दुर्ग भी दुर्भेद्य होता जा रहा है। किसी परिवार में सब अपनी अपनी डफली पर अलग-अलग राग अलापने लगें तो व्यक्तियों की व्यवस्था चल सकती है पर समूचे परिवार की नहीं। समाज अथवा और आगे बढ़कर विश्व के हित की कामना तभी पूरी हो सकती है जब उपदेश केवल सुने न जायँ, उनका मनन तथा तदनुसार आचरण भी हो। इसके बिना समय-समय पर की जानेवाली आवृत्तिमात्र का कोई मूल्य नहीं। भौतिक विकास आवश्यक है पर उस पर आध्यात्मिक नियमन भी होना चाहिये। भारत के अतीत-उत्कर्ष का इतिहास साक्षी है, पर विश्वविदित है कि भारत का उत्कर्ष किसी के अपकर्ष का कारण नहीं हुआ। भौतिक विकास की धुन ने कई राष्ट्रों को आगे बढ़ाया है इसमें सन्देह नहीं, पर चिन्ता का कारण यही है कि उनसे दूसरे आतंकित भी हैं। इस स्थिति का अन्त तभी हो सकता है जब केवल स्वार्थ का साम्राज्य न रहे, परार्थ के लिए भी कुछ स्थान रहे। इसके बिना सत्कर्म, सद्वाणी, सद्व्यवहार, सत्प्रयत्न और सत्यनिष्ठा को व्यावहारिक रूप देने में बाधा पड़ेगी।

बौद्ध-जगत्

महाराजकुमार सिक्कम अध्यक्ष निर्वाचित

भारतीय महाबोधि सभा की प्रबन्धकारिणी समिति ने गत ७ अक्तूबर को सर्वसम्मति से महाराजकुमार सिक्कम को अपना अध्यक्ष निर्वाचित किया। आप सिक्कम-नरेश के ज्येष्ठ पुत्र हैं। आपकी सहानुभूति सदा से महाबोधि सभा के साथ रही है। आप समय-समय पर सभा को सहायता भी देते रहे हैं। सिक्कम ही भारत में एकमात्र बौद्ध राज्य है और आप महाबोधि सभा के प्रथम बौद्ध अध्यक्ष हैं।

स्मरण रहे कि महाबोधि सभा के अध्यक्ष का स्थान डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी के देहावसान के पश्चात् रिक्त था, जिसके लिए प्रबन्धकारिणी समिति एक योग्य अध्यक्ष को निर्वाचित करना चाहती थी।

मूलगन्ध कुटी विहार का २२ वाँ वार्षिकोत्सव—२२ नवम्बर को सारनाथ के मूलगन्धकुटी विहार का २२ वाँ वार्षिकोत्सव उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के सभापतित्व में मनाया गया। उक्त अवसर पर श्रीमती लीलावती मुंशी, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के कुलपति आचार्य नरेन्द्रदेव, विजयनगरम् की राजमाता के अतिरिक्त लंका, बर्मा, तिब्बत, थाईलैंड, कम्बोडिया, नेपाल, लद्दाख, पाकिस्तान, स्विडेन, अजमेर आदि से पधारे बहुसंख्यक प्रतिनिधि भी उपस्थित थे।

प्रातःकाल ६॥ बजे विहार में मंगलाचरण तथा ८॥ बजे भगवान् बुद्ध की पवित्र अस्थियों का प्रदर्शन हुआ। ११ बजे बुद्ध-पूजा, ११॥ बजे भिक्षुओं को भोजन-दान दिया गया। २ बजे अस्थियों का शानदार जुलूस निकला, जिसमें देश-विदेश से आये हुए बौद्ध सम्मिलित थे। अजमेर से पधारी कोलिय बौद्धों की पार्टी के भक्ति-गान आदि से जुलूस की शोभा और भी बढ़ गई थी। इस वर्ष श्री नवलसिंह गहलोत एवं श्री राहुल सुमन छावरा के साथ अजमेर से लगभग २०० कोलिय बौद्ध उत्सव में सम्मिलित होने आये थे।

सभा की कार्रवाई ४ बजे आरम्भ हुई। सभा के प्रारम्भ में भिक्षु आर्यवंश नायक स्थविर (लंका) ने पंचशील दिया तथा भिक्षु बुद्ध-रक्षित, शीवली और गुणरत्न ने सूत्रपाठ किया। श्रीमती सावित्री थैन राहुल (अजमेर) ने बुद्ध-गान गाया। तदुपरान्त महाबोधि सभा के मंत्री भिक्षु संघरत्न ने वार्षिक विवरण एवं बाहर से आये हुए सन्देश पढ़कर सुनाये। सन्देश भेजनेवालों में भारत के उपराष्ट्रपति, मद्रास, मध्य-प्रदेश, विहार और बम्बई के राज्यपाल, पेप्सू के राजप्रमुख, नेपाल, लंका और बर्मा के प्रधान मंत्री, स्याम, नेपाल, जापान, और अमेरिका के भारत स्थित राजदूत, लोकसभा के अध्यक्ष श्री मावलणकर, भारत के लंकास्थित राजदूत, स्वास्थ्य-मंत्रिणी राजकुमारी अमृत कुँवर, लन्दन की बुद्धिस्ट सोसाइटी के प्रधान मंत्री प्रमुख थे।

सभा में नागपुर बुद्ध सोसाइटी के मंत्री श्रीकुलकर्णी, लखनऊ विश्वविद्यालय के डाक्टर गुंथर, कोलिय बौद्ध समिति के अध्यक्ष श्री नवलसिंह गहलोत, भिक्षु आनन्द कौसल्यायन, स्याम के सूचना विभाग के डाइरेक्टर तथा पत्रकार श्री पेथान थाई, भिक्षु आर्यवंश नायक थेर (लंका), नेपाली तरुण श्री धुयास्वां के भाषण हुए।

श्री कुलकर्णी ने बौद्धधर्म के प्रचार पर जोर दिया और जातीयता एवं ब्राह्मणशाही को भारत का कलंक बतलाया। डा० गुंथर ने अपने दार्शनिक भाषण में बौद्धधर्म के दर्शन-पक्ष की उत्कृष्टता पर प्रकाश डाला और कहा कि यही कारण है कि आज पाश्चात्य देशवासी अधिकतर बौद्धधर्म की ओर झुकते जा रहे हैं। श्री नवलसिंह गहलोत ने कहा कि कतिपय भिक्षुओं ने अजमेर में जाकर जो थोड़ा-बहुत धर्म-प्रचार किया, वह क्रमशः विकसित ही होता जा रहा

है। हम अपने भूले हुए इतिहास को जानते जा रहे हैं और बड़ी लगन एवं श्रद्धा से धर्म-प्रचार कर रहे हैं। यदि अजमेर के कोलिय बौद्धों को थोड़ी भी सहायता प्राप्त हो तो अल्प समय में ही सारे भारतवर्ष में आसानी से बौद्ध-धर्म का प्रचार हो सकेगा।

भिक्षु आनन्द कौसल्यायन ने बताया कि लंका और भारत के बीच राजनीतिक और आर्थिक मतभेद भले ही हो किन्तु लंकावासी भारतीयों पर बड़ी श्रद्धा रखते हैं। अभी स्याम के श्री पेथान थाई ने अपने भाषण में यह नहीं कहा कि मैं कहीं विदेश में आया हूँ बल्कि यह कहा है कि मातृभूमि भारत के दर्शन के लिये आया हूँ। आपने भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं के अध्ययन और मनन पर जोर देते हुए कहा कि केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि मौजूदा समस्याओं को सुलझाने के लिये भी यह आवश्यक है।

बुद्धधर्म एकता का प्रतीक है--सभापतिपद से भाषण करते हुए राज्यपाल श्री मुंशी ने कहा कि 'पश्चिम और पाश्चात्य प्रणाली के बच्चे जहाँ कहीं भी गये वहाँ वे मानव जाति के साथ निष्फल रहे।' उसने—पश्चिम ने—एक लुटेरे साम्राज्यवाद और आत्महीन भौतिकवाद को जन्म देकर बुद्ध भगवान् के उपदेशों के ८ सिद्धान्तों के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया। श्री मुंशी ने कहा कि भगवान् के उपदेशों के ८ सिद्धान्तों के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया।

श्री मुंशी ने कहा कि भगवान् बुद्ध द्वारा दिये गये उपदेशों के २५०० वर्ष बाद की दशा देखकर हम यह कह सकते हैं कि संसार उनके उपदेशों के मुकाबले में कहाँ खड़ा है। यदि हमें इतिहास का कुछ भी ज्ञान है तो हम यही कहेंगे कि संसार बुद्ध के ८ आवश्यक उपदेशों से बहुत दूर है।

आप ने कहा कि २५०० वर्षों के बाद आज हम संसार में देख रहे हैं कि महान् राजनीतिक संयुक्त दल भय और घृणा के साथ एक दूसरे के मुकाबले में खड़े हैं। उनके पास महान् सैनिक शक्ति है, जीवन को सैनिक नियन्त्रण में जकड़ दिया है, मनुष्यों को गुलाम बना दिया है और पारस्परिक नाश के लिए उन्हें तैयार किया जा रहा है।

आपने कहा कि विश्वास और घनिष्ठ सम्पर्क के सम्बन्ध भंग हो रहे हैं, और हमारे सामने बड़े-बड़े कारपोरेशन, राष्ट्रीय व्यापार और वाणिज्य-मण्डल और अन्तरराष्ट्रीय संघटन हैं जिन सब का आधार यही भय है कि कहीं लाभ न खो दें। मनुष्यों के श्रम से बड़े-बड़े लाभ कमाने के उपाय ढूँढ़े जाते हैं। विभिन्न पेशों के संघ, राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन और मजदूरों के बड़े-बड़े अन्तरराष्ट्रीय संघटन हैं, जो धमकाने, अपनी शर्तें लिखाने और नाश करने में लगे हैं।

श्रीमुंशी ने विद्यार्थियों और अध्यापकों के सम्बन्ध में कहा कि यह सम्बन्ध प्रेम का नहीं है जो उच्चआदर्शों के लिए हो। हमारे विद्यार्थियों के संघटन घृणा से भरे हैं, वे अनुशासन की उपेक्षा करते हैं और सरस्वती-मन्दिर में विष फैलाते हैं। अध्यापकों का संघ भी उचित रूप से काम नहीं कर रहा है।

आपने कहा कि संसार के उन्नतिशील पुरुषों ने ठीक काम करना, ठीक भाषण देना और ठीक विचार करना छोड़ दिया। हम संघटन करते हैं और नये-नये नारे निकालते हैं, किस लिए? केवल शक्ति या धन प्राप्त करने के लिए और मनुष्य की स्वतन्त्रता पर एक छाया छोड़ देते हैं, और भय खाते हैं। यह भय ही हमें सरकारी दलों, संघटित दलों, और संघटित दर्शनकारियों के प्रति आत्म-समर्पण करने के लिए मजबूर करता है।

आपने कहा कि जीवन के सभी क्षेत्रों में अधिकारी शक्तियाँ भयभीत व्यक्तियों से पूर्ण भक्ति चाहती हैं, और वे यह भी चाहती हैं कि हम उसी में विश्वास करें जिसमें उनका विश्वास है। संसार की वर्तमान दशा में हमारा सामंजस्य उस आध्यात्मिक नियम से बहुत दूर है जिसे भगवान् बुद्ध मानते थे। इसका फल यह हुआ कि हम परिपक्व नहीं होने पाते, नैतिक संघर्षों का निर्णय नहीं होता और आत्माभिव्यक्ति असम्भव हो जाती है।

आपने कहा कि इस परिस्थिति में पड़कर हम हिंसा के निकट पहुँच गये हैं। यह हिंसा ही पाश्चात्य प्रणाली

की असफलता और देन है, जिसमें आध्यात्मिक नियम की उपेक्षा की गयी है।

श्री मुंशी ने कहा कि जब मैंने सारनाथ के पवित्र स्थान में आने का विचार किया तो मुझे अनेक प्रकार के विचार आये। आगे क्या होगा, परिणामों का अनुमान कौन करेगा, और हम सफल होंगे या नहीं। मान लीजिये, हम उन जंजीरों को तोड़ दें जो हमें घसीट रही हैं। शक्ति और सफलता की लालच हम त्याग दें और जनता के सामने यह घोषणा कर दें कि बिना अध्यात्म के निरर्थक हैं, बिना ठीक काम किये सुख उठाना पाप है, शक्ति बिना शांति के व्यर्थ है और बिना भ्रातृ-प्रेम के 'एक संसार' का विचार धोखा है।

श्री मुंशी ने कहा कि मैं यह नहीं मानता कि भगवान् बुद्ध की स्मृति भारत से लुप्त हो चुकी है और हमें उस स्मृति को पुनः जागृत करने की आवश्यकता है। बौद्धधर्म भारत में है। बौद्धधर्म अन्य राष्ट्रों एवं भारत की एकता का प्रतीक है।

प्रस्ताव

अन्त में भिक्षु धर्म-रक्षित ने निम्नलिखित चार प्रस्तावों को एक साथ ही पढ़कर सुनाया, जो राज्यपाल द्वारा समर्थन किये जाने पर सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। ये प्रस्ताव क्रमशः डा० एच० वी० गुन्थर, प्राध्यापक, लखनऊ विश्वविद्यालय; भिक्षु धर्म-रक्षित, सम्पादक 'धर्मदूत'; श्री राहुल सुमन छावरा, मंत्री, कोलिय बुद्धिष्ट एसोसिएशन, अजमेर; और श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी, मंत्री, बुद्ध सोसाइटी, नागपुर की ओर से रखे गये थे।

(१) "यह सभा उत्तर प्रदेशीय सरकार से अनुरोध करती है कि वह पालि और तिब्बती साहित्य और संस्कृत बौद्ध-दर्शन के अध्ययनार्थ सारनाथ में एक ऐसे महाविद्यालय की स्थापना करे, जिससे भारत तथा बाह्य देशों से अध्ययनार्थ आनेवाले बहुसंख्यक छात्रों एवं जिज्ञासुओं को सुविधा हो, क्योंकि उत्तर प्रदेश बौद्ध-संस्कृति का एक महान् केन्द्र और तीर्थ रहा है।"

(२) "यह अधिवेशन उत्तर प्रदेशीय सरकार के शिक्षा विभाग के अधिकारियों का ध्यान अपने इस प्रस्ताव की ओर दिलाता है कि देश के समक्ष आज भारतीय संस्कृति के विस्तार का प्रश्न उपस्थित है, इसकी पूर्ति के लिये पालि के उदार साहित्य का विस्तार होना चाहिए। यह तभी सम्भव होगा जब कि सरकार अपनी शिक्षा में इसे उच्चतम स्थान प्रदान करे। इस दिशा में पहला प्रयत्न बनारस गवर्नमेंट संस्कृत कालेज-परीक्षा में पालि-प्रवेश से किया जाय। संस्कृत के साथ पालि के सन्निवेश का यह प्रस्ताव विगत अनेक अधिवेशनों के द्वारा किया जा चुका है और वहाँ के अधिकारियों ने इसकी अनिवार्यता भी मानी है, परन्तु आज तक इसका कोई फल नहीं हुआ। आशा है सरकार इस ओर शीघ्र ध्यान देगी।"

(३) "यह सभा उत्तर प्रदेशीय सरकार से अनुरोध करती है कि सारनाथ में स्थायी रूप से रहनेवाले तथा बाह्य देशों से आने वाले भिक्षुओं एवं यात्रियों की सुरक्षा के निमित्त पुलिस-चौकी की व्यवस्था की जाय।"

"साथ ही यह सभा राज्य सरकार से यह भी अनुरोध करती है कि सारनाथ में बिजली की व्यवस्था की जाय तथा पास के चारों ओर फैले तालावों को गहरा कराकर सिंचाई के काम में लाने के योग्य बनाया जाय।"

(४) "यह सभा भारत सरकार को वैशाख-पूर्णिमा के दिन को सार्वजनिक अवकाश का दिन घोषित करने के लिये बधाई देती है तथा इसको कार्यान्वित करने के लिये भारत के समस्त राज्यों से अनुरोध करती है कि उत्तर प्रदेश, बिहार, आसाम तथा भोपाल की तरह अन्य राज्य अपने-अपने राज्यों में वैशाख-पूर्णिमा को सार्वजनिक अवकाश का दिन घोषित करें।"

प्रस्तावों की स्वीकृति के साथ राज्यपाल श्रीमुंशी ने कहा कि जो प्रस्ताव आप लोगों ने रखे हैं, उन पर सरकार जो कर सकेगी, वह अवश्य करेगी।

अन्त में भिक्षु धर्मरक्षित ने सभी आगत प्रतिनिधियों एवं व्यक्तियों को धन्यवाद दिया।

प्रारम्भ में जब राज्यपाल श्रीमुंशी मूलगन्ध कुटी विहार के फाटक पर पहुँचे तब भिक्षु संघरत्न, भिक्षु सद्धातिस्स, भिक्षु शीवली, भिक्षु कित्तिमा आदि ने उनका

स्वागत किया एवं भिक्षु संघरत्न ने बाहर से आये अतिथियों का परिचय कराया। महाबोधि कालेज सारनाथ के छात्रों ने राज्यपाल को गार्ड आफ आनर दिया। तत्पश्चात् आप बुद्ध मन्दिर में गये और वहाँ प्रार्थना कर पुष्प चढ़ाया। मन्दिर से राज्यपाल बुद्ध-अस्थियों को लेकर सभा-मण्डप में आये।

बिरहा सम्मेलन—२२ नवम्बर को सभा समाप्त होते ही उसी पाण्डाल में बिरहा-सम्मेलन आरम्भ हुआ, जिसमें आसपास के गाँवों के लगभग ३००० व्यक्ति सम्मिलित हुए थे। सभी बिरहा-गायकों ने भगवान् बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित बिरहा गाये। बिरहा-सम्मेलन की अध्यक्षता भिक्षु संघरत्न ने किया और सभी गायकों को महाबोधि सभा की ओर से पुरस्कार वितरण किया। बिरहा-सम्मेलन बड़ा ही सफल रहा।

'सिकन्दर' का सफल अभिनय—बिरहा-सम्मेलन समाप्त होने पर उसी पाण्डाल में १० बजे रात्रि से २ बजे रात्रि तक महाबोधि कालेज तथा महाबोधि जे० टी० सी० ट्रेनिंग कालेज के छात्रों एवं छात्राध्यापकों द्वारा 'सिकन्दर' नामक नाटक का सफल अभिनय हुआ।

सारनाथ में कठिनोत्सव—२१ नवम्बर को प्रातः काल बड़ी धूमधाम के साथ कठिनोत्सव मनाया गया। लंका, बर्मा, तिब्बत और चटगाँव के आये हुए सभी भिक्षु और गृहस्थ मूलगन्ध कुटी विहार में एकत्र हुए। गृहस्थों ने पंचशील और अष्टशील ग्रहण किया। तत्पश्चात् लंका की उपासिका श्रीमती के० बी० धम्मावती ने भिक्षु-संघ को कठिन-चीवर दान किया। भिक्षु-संघ ने उसे ग्रहण कर विधिवत् कम्बोडिया संघराज के शिष्य भिक्षु फलाज्ञान को प्रदान किया।

यह उत्सव प्रतिवर्ष वर्षावास के पश्चात् किया जाता है। वर्षाकाल में जो भिक्षु अच्छी तरह वर्षाकालीन नियमों का पालन करता है और जिसे संघ अनुमोदन करता है, उसे ही कठिन चीवर प्रदान किया जाता है। चूँकि यह चीवर किसी एक को ही प्राप्त होता है और इसे प्राप्त करने के लिए कठिन नियमों का पालन करना पड़ता है, इसीलिए इसे कठिन-चीवर कहा जाता है।

कठिनोत्सव के उपलक्ष्य में दूसरे दिन दोपहर में उपासिका धम्मावती द्वारा सभी भिक्षुओं को सांघिक दान दिया गया।

अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन—२३ नवम्बर को प्रातः ९ बजे से साढ़े ग्यारह बजे तक सारनाथ के मूलगन्ध कुटी विहार में पूर्वी पाकिस्तान के बुद्धिस्ट असोसिएशन के सभापति महास्थविर श्री अग्रियालंकार की अध्यक्षता में अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में लंका, बर्मा, चीन, कम्बोडिया, स्याम, अण्डमान, नेपाल, तिब्बत लद्दाख, स्वीडेन, भूटान, पाकिस्तान, आस्ट्रिया तथा भारत के विभिन्न प्रदेशों से आये हुए बौद्ध भिक्षु, उपासक-उपासिका सम्मिलित हुए थे।

सम्मेलन में नागपुर बुद्धिस्ट असोसिएशन के मन्त्री श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी, श्री केशवराव पाटिल, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, डाक्टर एच० वी० गुन्थर, श्री कोलिन सोइसा, श्री राहुल सुमन छाबरा, भिक्षु प्रज्ञानन्द, भिक्षु अश्वघोष, श्री पथोन थाई, भिक्षु धर्मतिलक, श्री बेगनर, लामा अंगरूप और भिक्षु संघरत्न के भाषण हुए।

सम्मेलन के कार्यवाहक भिक्षु धर्मरक्षित ने प्रारम्भ में सभी अतिथियों का स्वागत किया और सम्मेलन के महत्त्व पर प्रकाश डाला। अन्त में भिक्षु संघरत्न ने इस अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन की ओर से नागपुर बुद्धिस्ट असोसिएशन के मन्त्री एवं अजमेर कोलिय बुद्धिष्ट असोसिएशन के मन्त्री को एक-एक बुद्धमूर्ति के साथ कुछ धार्मिक ग्रन्थ उपहारस्वरूप प्रदान किये।

सम्मेलन के समाप्त होने पर इस सम्मेलन में सम्मिलित सभी बौद्धों का तीन देशों के आये हुए व्यक्तियों ने चल-चित्र लिया जिनका प्रदर्शन सभी बौद्ध देशों में किया जायगा।

इस सम्मेलन में तीन प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए—

पहले प्रस्ताव द्वारा भारत सरकार से माँग की गयी कि अजमेर राज्यान्तर्गत रेलवे वर्कशाप में काम करनेवाले कोलिय बौद्धों को वैशाख-पूर्णिमा के दिन सार्वजनिक अवकाश देने की घोषणा की जाय।

दूसरे प्रस्ताव द्वारा कोलिय बौद्धों ने महाबोधि सभा

से सहायता की माँग की तथा अस्थियों का एक अंश अजमेर के लिए प्रदान करने का निवेदन किया।

तीसरे प्रस्ताव द्वारा इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन ने भारत का ध्यान पालि ग्रंथों के नागरी अक्षरों में प्रकाशन की माँग की ओर निवेदन किया कि सरकार अति शीघ्र त्रिपिटिक बुद्धवचन को प्रकाशित करने की व्यवस्था करे।

महाबोधि कालेज का वार्षिकोत्सव

२३ नवम्बर को सायंकाल ४ बजे लंका के प्रसिद्ध विद्वान् श्री कोलिन सोइसा की अध्यक्षता में महाबोधि कालेज, सारनाथ का वार्षिकोत्सव मनाया गया। प्रारम्भ में जे० टी० सी० ट्रेनिंग कालेज के छात्राध्यापकों ने सभापति को सलामी दी। तत्पश्चात् प्राइमरी स्कूल के बालकों ने विभिन्न प्रकार के व्यायामों का प्रदर्शन किया। कालेज के छात्रों ने हिन्दी तथा अंग्रेजी के बहुत ही अच्छे अभिनय किये। निकायों का चुनाव नामक अभिनय बहुत ही सामयिक एवं हास्यप्रद रहा। प्रिंसिपल के वार्षिक विवरण पढ़ने के बाद पुरस्कार वितरण हुआ। तत्पश्चात् सभापति का सारगर्भित भाषण हुआ। उन्होंने छात्रों को अनुशासन, शिक्षा एवं स्कूल-सम्बन्धी बहुत-सी बातों का वर्णन करते हुए आचरण-सुधार की ओर ध्यान देने पर जोर दिया। प्रिंसिपल श्री बालेश्वरप्रसाद के कार्यों की आपने प्रशंसा की जिन्होंने अपने सहयोगियों तथा बालकों के सहयोग से मूलगन्ध कुटी विहार तथा स्कूल के वार्षिकोत्सव को सफल बनाया है।

अन्त में कालेज के सभी छात्रों को कालेज के व्यवस्थापक भिक्षु संघरत्न द्वारा मिष्टान्न वितरित किया गया और कालेज ५ दिनों के लिए बन्द हो गया।

धर्म-परीक्षा—प्रतिवर्ष मूलगन्ध कुटी विहार तथा महाबोधि कालेज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर सारनाथ में बौद्धधर्म की परीक्षा हुआ करती है, जिसमें महाबोधि कालेज के छात्र सम्मिलित होते हैं। परीक्षा के लिए तीन ग्रुप होते हैं निम्न, मध्यम और उत्तम। तीनों ग्रुपों में अलग-अलग प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय आनेवाले ९ छात्रों को पुरस्कार दिये जाते हैं। इस वर्ष निम्न ग्रुप में क्रमशः लामा निरबू, मुनीन्द्र विकाश बरुआ और कुंजविहारी; मध्यम ग्रुप में रामलगन तिवारी, रामदेव मौर्य और रामप्रसाद शर्मा; उत्तम ग्रुप में जित्तू प्रसाद, विश्वनाथ मिश्र और बृजनाथ प्रसाद पुरस्कार पाये।

कालिम्पोंग में धर्मपाल-जयन्ती—गत १९ सितम्बर को महाबोधि सभा कालिम्पोंग के तत्वावधान में बड़ी धूम-धाम से अनागारिक धर्मपाल जी की जन्म-जयन्ती टाऊनहाल में मनाई गई। बुद्ध-कीर्तन के साथ सभा आरम्भ हुई। भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भिक्षु संघरक्षित और श्री एस० एन० राय के भाषण हुए। सब वक्ताओं ने स्वर्गीय धर्मपाल जी के जीवन पर प्रकाश डाला और अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। श्री दावात्सेरिंग भोटिया के धन्यवाद प्रदान के बाद सभा समाप्त हुई। कालिम्पोंग में अनागारिक धर्मपाल जी का जन्म-दिन पहली बार मनाया गया। नगर की जनता ने इसमें बड़ी ही दिलचस्पी से भाग लिया।

भारतीय बौद्ध संघ का वार्षिक अधिवेशन—२४ नवम्बर को सारनाथ स्थित बर्मी बौद्ध विहार में भिक्षु ऊ कित्तिमा के सभापतित्व में भारतीय बौद्ध-संघ का वार्षिकोत्सव मनाया गया। मंत्री द्वारा वार्षिक विवरण पढ़े जाने पर नये वर्ष के लिए निम्नलिखित व्यक्तियों की कार्य-कारिणी समिति का निर्वाचन हुआ:—सभापति—भदन्त ऊ चन्द्रमणि महास्थविर, उपसभापति—भदन्त ऊ महेन्द्र स्थविर, प्रधान मंत्री—ऊ चन्दिमा, संयुक्त मंत्री—ऊ अग्गसमाधि, कोषाध्यक्ष—भिक्षु ऊ कित्तिमा, सदस्य—भिक्षु संघरत्न, भिक्षु धर्म-रक्षित, भिक्षु ऊ जयन्त, भिक्षु ऊ पञ्ञावंस।

आय-व्यय की स्वीकृति के पश्चात् तीन प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। पहले प्रस्ताव द्वारा उत्तर-प्रदेशीय सरकार से यह माँग की गई कि श्रावस्ती में बलरामपुर-बहराइच-रोड से जेतवन तक जाने के लिए पक्की सड़क बनवाई जाय। दूसरे प्रस्ताव द्वारा वैशाख-पूर्णिमा के दिन को सभी राज्यों में सार्वजनिक अवकाश का दिन घोषित करने की माँग की गई। और तीसरे प्रस्ताव द्वारा केन्द्रिय सरकार से यह माँग की गई कि पालि-ग्रन्थों को नागरी लिपि में प्रकाशित करने का प्रबन्ध किया जाय।

अजमेर में रविवासरीय अधिवेशन—अजमेर में प्रत्येक रविवार को कोलिय बौद्ध समिति के तत्वावधान में श्री एस० के० नाथूसिंह तँवर की अध्यक्षता में रविवासरीय अधिवेशन होता है, जिसमें त्रिशरण-पंचशील ग्रहण करने के पश्चात् बुद्धकीर्तन होता है। तत्पश्चात् विद्वानों के बौद्धधर्म पर भाषण होते हैं। इस अधिवेशन का अजमेर के बौद्ध समाज पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ रहा है।

संरक्षक-पद की स्वीकृति—भारतस्थित बर्मी राजदूत श्री ऊ चिन ने कोलिय बौद्ध समिति के संरक्षकपद को स्वीकार कर लिया है। आशा की जाती है कि इससे समिति को उचित प्रोत्साहन मिलेगा। कोलिय बौद्ध समिति के मंत्री श्री राहुल सुमन छावरा के निमंत्रण को स्वीकार कर आपने आगामी वैशाख-पूर्णिमा को अजमेर जाने के लिए वचन भी दे दिया है।

कुलकर्णी जी के भाषण—सारनाथ से वापस जाते समय प्रसिद्ध धर्मप्रचारक श्री अनन्त रामचन्द्र कुलकर्णी ने ग्वालियर के थियॉसाफिकल लॉज में २९ नवम्बर को बौद्धधर्म पर भाषण किया। तदुपरान्त ४ दिसम्बर को होशंगाबाद के टाऊनहाल में मैत्री-भावना पर बोलते हुए बौद्धधर्म के मूलतत्वों पर प्रकाश डाला। आपके साथ आपकी धर्मपत्नी भी थीं। आपके भाषणों का जनता पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा।

गत २८ अक्तूबर को जबलपुर के 'समता सेवा-दल' के तत्वावधान में सातनलैया चौकी के पास हुई सभा में श्री कुलकर्णी जी का एक मार्मिक भाषण हुआ। 'धर्मदूत' सम्पादक को वहाँ से अनेक पत्र इस संवाद के प्राप्त हुए हैं, प्रायः सब में 'बौद्ध भिक्षु कुलकर्णी का भाषण' लिखा हुआ है। वहाँ पर कुलकर्णी जी ने अपने भाषण में कहा था—"भगवान् बुद्ध हिन्दू-धर्म-भावना के अनुसार ९ वें अवतार हैं। उन्होंने जो शान्ति, प्रेम, और अहिंसा का मधुर सन्देश इस अशान्त, दुःखी मानव को दिया है, वही विश्व-कल्याण की अमोघ औषधि है। भारत के महान् रोग जातीयता, साम्प्रदायिकता, छूआछूत आदि को दूर करने के लिए बौद्धधर्म एक महान् अस्त्र है। इसी के अनुसरण से हम अपने भारत देश को गौरव के उच्चतम स्थान तक पहुँचा सकते हैं।'

इस सभा में श्री एम० आर० चौधरी, श्री श्रीकृष्णचन्द्र शेन्द्रे, वकील, श्री वंजारी, श्री अवड़े और श्रीहरिहर व्यास के भी भाषण हुए। अन्त में सेवादल के सहमंत्री श्री भागवत गोटेकर द्वारा आभार-प्रदर्शन के साथ सभा समाप्त हुई।

हिन्दू विश्वविद्यालय में बौद्ध बन्धुत्व—गत मास में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बौद्ध बन्धुत्व की एक सभा पालि-प्राध्यापक श्री पद्मनाभ जैन के सभापतित्व में सम्पन्न हुई। सभा में भिक्षु संघरत्न, मंत्री, महाबोधि सभा भी उपस्थित थे। अमेरिका के सेल् विश्वविद्यालय के प्रो० अजर्टन का "बौद्ध साहित्य की भाषायें" विषय पर सारगर्भित भाषण हुआ। भिक्षु संघरत्न, भिक्षु सद्धातिस्स आदि ने परित्रपाठ करके उपस्थित लोगों को आशीर्वाद दिया। अन्त में नये वर्ष के लिए 'बौद्ध बन्धुत्व' के मन्त्री का निर्वाचन हुआ। सर्वसम्मति से लंका के तरुण छात्र श्री तिलकवंश रतनायक मंत्री निर्वाचित हुए। सभापति के भाषणोपरान्त सभा समाप्त हुई।

बुद्धगया मन्दिर का नव-प्रबन्ध—पितृ-पक्ष मेला के अवसर पर सहस्रों हिन्दू यात्रियों ने बुद्ध गया मन्दिर का दर्शन किया। पहले बुद्धगया के महन्त ने पंचपाण्डवों की मूर्तियों को पैसा कमाने का साधन बना रखा था। किन्तु अब नयी प्रबन्ध समिति ने सब बदल दिया। अब यात्री बिना किसी रुकावट या अड़चन के मन्दिर में जाकर पूजा कर सकते हैं। उक्त मेले के अवसर पर जो भी यात्री मन्दिर में पधारे, सबने नव-प्रबन्ध की प्रशंसा की। भिक्षु सोमानन्द नायक महथेर तथा श्री० एम० पी० बरुआ द्वारा यात्रियों को बड़ी सुविधा प्राप्त हुई। आप लोगों ने उन्हें सब दिखलाया तथा बतलाया।

भगवान बुद्ध के जीवन पर चित्र-पट—विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि अमेरिका की एक फिल्म कम्पनी भगवान् बुद्ध के जीवन पर एक चित्र-पट तैयार करने जा रही है। यह भी कहा जाता है कि यह चित्र एक बौद्ध विद्वान् की देख-रेख में तैयार होगा, ताकि बौद्ध दृष्टिकोण से कोई भी विरुद्ध बात उसमें न आने पाये। इस चित्र में बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् कोई भी अभिनेता भगवान् बुद्ध का अभिनय नहीं करेगा। क्योंकि यही सबसे बड़ी विरो-

घात्मक बात थी। किन्तु क्या इसी से बौद्ध-जगत् प्रसन्न हो जायेगा। जब बुद्ध-चित्र तैयार होगा, तो उसमें तमाम बौद्ध विरोधी बातें आयेंगी और सिद्धान्तों का अपवाद होगा। हम समझते हैं सारा बौद्ध संसार इसका विरोध करेगा। स्मरण रहे कुछ वर्ष पूर्व बम्बई की एक फिल्म कम्पनी ने ऐसा ही प्रयत्न किया था, किन्तु बौद्ध जगत् के विरोध के समक्ष उसका सारा कार्यक्रम समाप्त हो गया! उत्तम हो कि अपने धन आदि की बरबादी से पूर्व ही उक्त फिल्म कम्पनी तथागत के जीवन पर चित्र-पट तैयार करने के विचार को त्याग दे।

कलकत्ता में प्रवारणोत्सव—गत २२ अक्तूबर को वर्षावास की समाप्ति पर कलकत्ता के धर्मराजिक विहार में, जो भारतीय महाबोधि सभा का प्रधान केन्द्र है, प्रवारणोत्सव मनाया गया। प्रातःकाल मन्दिर में विशेष पूजा की गई तथा बंगाल प्रान्तीय बुद्धिष्ट असोसियेशन की ओर से भिक्षुओं को भोजन-दान दिया गया। सन्ध्या समय भिक्षुसंघ ने परित्रपाठ किया और भिक्षु शीलभद्र ने उपदेश दिया। महाबोधि सभा के प्रधान मंत्री श्री देवप्रिय वलिसिंह तथा श्री जयचन्द्र चौधरी ने इस दिवस के महत्त्व पर प्रकाश डाला। रात्रि में बड़ी देर तक मन्दिर में पूजा होती रही।

वैशाख-पूर्णिमा—इस वर्ष वैशाख-पूर्णिमा १६ मई रविवार को पड़ी है, जिस दिन सम्पूर्ण संसार में बड़ी धूम-धाम के साथ बुद्ध-जयन्ती मनाई जायेगी। इसी दिन वर्मा में छठीं 'धर्म-संगीति' भी आरम्भ होनेवाली है।

अनिचा वत सङ्खारा !

कोलिय बौद्ध सरदार का देहावसान—कोलिय बौद्धों के मुख्य नेता तथा कोलिय बौद्ध समिति के उपाध्यक्ष श्री एम० के० नाथूसिंह तँवर के पिता श्री मोहनसिंह तँवर का देहावसान गत ८ दिसम्बर को प्रातःकाल ८ बजे अजमेर में अपने निवासस्थान पर हो गया! आपके स्वर्गवास से अजमेर के कोलिय बौद्धों को एक बड़ा आघात पहुँचा है।

११ दिसम्बर को सायंकाल ४ बजे कोलिय राजपूत हितकारिणी सभा अजमेर की ओर से एक शोक-सभा उक्त निधन के उपलक्ष में की गई। कोलिय बौद्ध समिति के कार्यवाहक प्रधान श्री नवलसिंह गहलोत ने शोक-प्रकाश करते हुए कहा—"जिस तरह हमारे वंश में भगवान् बुद्ध के समय प्रत्येक परिवार से एक बालक को पूज्य भिक्षु संघ को दान करने की प्रथा थी, उस पुनीत प्रथा को हमारे महान सरदार ने अपने इकलौते पुत्र को कोलिय समाज के हित-सुख के लिए अर्पित कर पूरा किया था, जिसने कभी भी अपने जीवन में अपने पुत्र को जातिकार्य से विमुख न होने देकर सदा समाज-सेवा में ही लगे रहने को प्रोत्साहित किया; जिसने मृत्यु-शय्या पर भी कभी यह न चाहा कि मेरा पुत्र समाज का आवश्यक कार्य छोड़ कर मेरी सेवा में रहे।"

अन्य अनेक वक्ताओं द्वारा शोक-प्रकाशित करने के पश्चात् दो मिनट मौन रह कर दिवंगत सरदार के सुख की प्रार्थना की गई।

हम 'धर्मदूत परिवार' की ओर से परम भाग्यवान सरदार के शोक-सन्तप्त परिवार के प्रति अपनी समवेदना प्रकट करते हैं और दिवंगत सरदार को भिक्षु-संघ की ओर से आशीर्वाद देते हैं कि वे जहाँ कहीं भी रहें, सुख-शान्तिपूर्वक जीवन-यापन करते हुए परम सुख निर्वाण को प्राप्त करें।

श्री सुरेन्द्रनाथ बरगोहेन की अकाल मृत्यु—यह जानकर हमें बड़ा ही खेद हुआ है कि नवयुवक श्री सुरेन्द्रनाथ बरगोहेन की अकाल-मृत्यु हो गई है। आप केन्द्रिय सरकार के डिप्टी मिनिस्टर थे और बौद्धधर्म तथा महाबोधि सभा के परम हितैषी थे। गत मास में आप भारतीय महाबोधि सभा के प्रधान केन्द्रस्थित धर्म-राजिक विहार में आये थे और बड़ी श्रद्धा से बुद्ध-पूजा की थी। उस समय आप पूर्ण स्वस्थ तथा प्रसन्न थे। किन्तु, "जगति के मरणा पमुत्ता" संसार में मृत्यु से कौन छुटकारा पाया है? आपकी मृत्यु से भारतीय महाबोधि सभा को एक भारी क्षति पहुँची है। हम भारतीय महाबोधि सभा की ओर से आपकी शुभ-कामना करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि आप जहाँ भी रहें, सुखी रहें, आपको शान्ति प्राप्त हो।

हिन्दी में बौद्धधर्म की पुस्तकें

प्रकाशक—भिक्षु एम० संघरत्न, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)